सांच सांच सो सांच

प्रवचन-क्रम

1. दे कोई शंख दुहाई..2
2. स्वयं का बोध मुक्ति है...19
3. जीवन एक तिलिस्म है..34
4. बुद्ध का शून्यः मीरा की वीणा...51
5. प्रेम एक इंद्रधनुष है..71
6. विज्ञान और धर्म के बीच सेतु...92
7. जीवन चुनौती है, खतरा है..106
8. आपने आपनूं समझ पहले..126
9. दरवाजा खुला रखना...140 10...समाधि की सुवास .... 152 11..ठहरो, विराम में आओ 168

सांच सांच सो सांच
पहला प्रवचन

दे कोई शंख दुहाई

पहला प्रश्नः ओशो,
आज प्रारंभ होने वाली प्रवचनमाला का शीर्षक आपने चुना हैः सांच सांच
सो सांच।
ओशो, निवेदन है कि दरिया साहब के इस पद को हमें समझाने की अनुकंपा करें--
कंचन कंचन ही सदा, कांच कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच।।

योग मुक्ता, सत्य शाश्वत है, सनातन है, समयातीत है। जो बदलता है वह स्वप्न है। जो नहीं बदलता वही सत्य है। उस अपरिवर्तनीय को पा लेना ही धर्म है। परिवर्तित होते संसार के साथ जो अपने मोह को लगाता है, सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं पाता है। यह अपरिहार्य है। जो बदल रहा है उसे तुम लाख चेष्टा करो तो भी ठहरा न सकोगे। उसका स्वभाव बदलना है। और तुम उसके मोह में पड़ोगे तो चाहोगे कि ठहर जाए, रुक जाए--और वह ठहरने वाला नहीं, रुकने वाला नहीं। वह तो गया, अब गया, अब गया--गया ही हुआ है। सुबह हुई कि सांझ हो गई। सुबह में ही सांझ छिपी है। जन्म हुआ कि मृत्यु हो गई। मृत्यु के दूत किन्हीं भैंसों पर सवार होकर नहीं आते, जन्म पर सवार होकर आते हैं। जन्म के साथ ही मृत्यु प्रवेश कर गई। अब तुम लाख उपाय करो तो भी मृत्यु से बचा नहीं जा सकता है। इस बात को ठीक से पहचान लेना जीवन में क्रांति बन जाती हैः जैसे ही तुम्हें यह बात दिखाई पड़ गई कि जो भी बदल रहा है उसके साथ मोह को बांधना दुख पैदा करने का आयोजन है; उसके साथ अपने को जोड़ना नर्क में पड़ना है। नर्क कहीं और नहीं--यहीं है। स्वर्ग भी कहीं और नहीं--यहीं है। जब भी तुम शाश्वत से अपने को जोड़ लेते हो, स्वर्ग की सुगंध फैल जाती है। और जब भी तुम अशाश्वत से अपने को जोड़ लेते हो, नर्क की अग्नि में सड़ने लगते हो। स्वर्ग और नर्क तुम्हारी दृष्टि की बात है, बस नजर-नजर की बात है। कोई भौगोलिक अवस्थाएं नहीं हैं स्वर्ग और नर्क, मनोवैज्ञानिक तथ्य हैं।
दरिया ठीक कहते हैं--
कंचन कंचन ही सदा, कांच कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच।।
ऐसा हो सकता है कि कभी चमकदार पीतल सूरज की किरणों में सूरज जैसा भासे, स्वर्ण जैसा भासे। मगर वह आभास है। निकट आओगे, आभास टूट जाएगा। दूर रहोगे, आभास बना रहेगा। इस जगत के सत्य को अगर न देखना हो तो दूर रहना। जिनको धन नहीं मिलता उन्हें धन में आशा बनी रहती है; लगता है मिल जाएगा तो सब मिल जाएगा। जिन्हें धन मिला उन्हें सिर्फ निर्धनता मिलती है।
धनी से ज्यादा निर्धन इस पृथ्वी पर कोई और नहीं, क्योंकि धन पाकर उसकी सारी आशाएं निराशाएं हो जाती हैं। कितने सपने बांधे थे! कितनी आकांक्षाओं के जाल बुने थे! कितनी-कितनी मृग-मरीचिकाएं थीं! कितना श्रम किया था! सारा जीवन दांव पर लगा कर यह धन पाया है और ठीकरे हाथ लगते हैं। उन सपनों की कहीं कोई दूर की भी ध्वनि नहीं है। वह जो सोचा था कि जीवन में नृत्य होगा, वे घूंघर बजते ही नहीं। वह जो सोचा था कि गीत उमगेंगे, वे गीत कभी लगते ही नहीं। वह जो गुलाब के फूलों की आशाएं थीं, गुलाब के फूल तो दूर, पत्थर भी हाथ नहीं आते। धनी आदमी जितना निर्धन हो जाता है उतना निर्धन भी निर्धन नहीं होता। सम्राट जितने भिखारी हो जाते हैं, उतने भिखारी भिखारियों में भी नहीं होते। क्योंकि भिखारी के पास कम से कम आशा तो होती है; सम्राट के पास वह आशा भी नहीं रह जाती। वहां तो सिर्फ हताशा है, सिर्फ निराशा है-- विराट निराशा, जिसका न कोई ओर है न कोई छोर है।
इस संसार में चीजें दूर से सुंदर हैं, पास आकर सब विकृत हो जाती हैं। क्योंकि पास आकर यह दिखाई पड़ता हैः कुछ भी ठहरा नहीं है। जवानी बुढ़ापा हो रही है। सौंदर्य कुरूप हो रहा है। जीवन मरण में बदल रहा है। क्या पकड़ते

हो? रेत में घर बनाते हो! पानी पर हस्ताक्षर करते हो! यहां तुम्हारा हस्ताक्षर बन भी नहीं पाएगा और मिट जाएगा। ये रेत के महल, इनमें कोई कभी रहा है? बन भी जाएं तो हवा का कोई भी आवारा झोंका इन्हें गिरा देगा। लेकिन हमारे मन की एक तरकीब हैः एक आशा टूटती है तो दस नई आशाएं खड़ी कर लेता है। कहता है, यह आशा टूट गई तो कोई बात नहीं, और आशाएं हैं। अगर यह असफलता मिली तो कोई बात नहीं, अभी और सफलताएं हैं। और यूं नहीं हार जाते। और यूं नहीं हताश हो जाते। हिम्मत रखो! जूझते रहो! मिलेगा, जरूर मिलेगा! और कोई भी नहीं पूछता कि किसी को कभी मिला है! सदियां-सदियां बीत गईं, किसी ने कहा है धन पाकर कि मुझे मिल गया धन! और किसी ने कहा है साम्राज्य पाकर कि मुझे मिल गया जो मैंने चाहा था--मेरे सपनों का मालिक, मेरी कल्पनाओं का लोक!
निरपवाद रूप से सारी मनुष्य-जाति की यह कथा है, व्यथा है कि किसी को भी यहां कुछ भी नहीं मिला। लेकिन झूठ प्रपंच तो बहुत खड़े कर देता है; पीतल भी सोना मालूम पड़ता है; चमकदार कंकड़ भी हीरे मालूम पड़ते हैं। मगर दरिया कहते हैं लाख मालूम पड़ते रहें--कंचन कंचन ही सदा! सोना तो सोना है। कांच कांच सो कांच। दरिया झूठ सो झूठ है। चाहे सारी दुनिया मानती हो, मगर जो झूठ है सो झूठ है। सत्य और झूठ का निर्णय कोई लोकतांत्रिक ढंग से नहीं होता कि किसके पक्ष में कितने मत हैं।
जार्ज बर्नार्ड शॉ से एक व्यक्ति कह रहा था कि निश्चय ही जीसस के विचार सच होने चाहिए, ईसाइयत सच होनी चाहिए। हालांकि जीसस के विचार और ईसाइयत पर्यायवाची नहीं हैं। कहां जीसस और कहां ईसाइयत! कोई संबंध नहीं, दूर का नाता-रिश्ता भी नहीं। सच पूछो तो दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं। लेकिन आमतौर से लोग ऐसे ही पर्याय बना लेते हैं। वह कहना तो यही चाहता था कि ईसाइयत सच है, लेकिन बात जीसस से शुरू की थी और कहा कि ईसाइयत सच होनी ही चाहिए क्योंकि दुनिया के अधिकतम लोग ईसाई हैं। इतना विराट जनसमूह जब ईसाई है तो निश्चित ही ईसाइयत में कुछ सत्य होना चाहिए। नहीं तो क्यों इतने लोग ईसाई हों? इतने लोग पागल तो नहीं हो सकते।
जार्ज बर्नार्ड शॉ ने बड़ी कीमत की बात कही, लाखों की बात कही। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा, तुम्हारा तर्क ही मेरे लिए काफी प्रमाण है कि जिस बात को इतने लोग मानते हों वह जरूर गलत ही होगी। इतने लोग और सत्य को कभी मान लें, तो यह पृथ्वी स्वर्ग हो जाए।
जीसस को कितने लोगों ने माना? इने-गिने, सौ-पचास। और कितने लोगों ने मारा? उनकी संख्या लाखों, करोड़ों। सुकरात को कितने लोगों ने माना? उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। और कितने लोगों ने निर्णय किया कि जहर देकर इस आदमी को समाप्त कर दो? उनकी संख्या विराट है। अलहिल्लाज मंसूर को या सरमद को, जिन्होंने गर्दन काटी वे बहुसंख्यक थे। सरमद के साथ जाने को कौन तैयार था? कुछ थोड़े-से दीवाने, जो गर्दन कटाने को राजी हों।
सत्य के साथ तो थोड़े-से ही लोग खड़े होते हैं, क्योंकि सत्य के साथ खड़े होने की कीमत चुकानी पड़ती है। पहले तो सत्य यूं सस्ता मिलता नहीं, बाजार में बिकता नहीं, मंदिरों और मस्जिदों में मिलता नहीं। अपने भीतर तलाशना होता है; न बाइबिल में, न कुरान में, न वेद में। अपने भीतर तराशना होता है। और वह खोज बड़ी एकांत है और बड़ी अकेली है और बड़ी दुर्गम है। इस दुनिया में सबसे कठिन जगह है अपने भीतर जाना, क्योंकि न कोई संगी होता, न कोई साथी होता। जैसे-जैसे भीतर जाते हो वैसे-वैसे अकेले होते जाते हो। और एक ऐसी घड़ी आती है जब अकेला होना भी नहीं बचता; जब शून्य ही रह जाता है, तुम भी खो जाते हो। पहले संगी-साथी खोते हैं, फिर विचार खोते हैं, फिर भावनाएं खोती हैं। और एक ऐसा अपूर्व क्षण आता है, जिसको कहो कि मृत्यु जैसा, कि स्वयं की सत्ता भी खो जाती है, अत्ता भी खो जाती है, आत्मा भी खो जाती है। तुम यह भी नहीं कह सकते कि मैं हूं। और जिस घड़ी वहां कोई भी नहीं है, उस घड़ी सत्य का आविर्भाव होता है।
यूं जो अपने को सूली पर चढ़ा दे--इस गहरी सूली पर--अहंकार को ऐसे जो मृत्यु को समर्पित कर दे, यूं भस्मीभूत हो जाने दे ध्यान की अग्नि में और विराट शून्य में लीन हो जाए, उसके जीवन में सत्य का अनुभव होता है। बहुत थोड़े-से लोग इतना साहस कर पाते हैं। भीड़ तो सत्य से बहुत दूर है। सत्य का

निर्णय कोई मतों से नहीं होता, हाथ उठा कर नहीं होता निर्णय कि कितने हाथ तुम्हारे पक्ष में हैं। यह ढंग राजनीति का है। यह ढंग धर्म का नहीं है। और इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः ईसाइयत, हिंदू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, सिक्ख, पारसी, इनके नाम से जो जमातें हैं वे जमातें राजनीति की हैं। धर्म की कहीं कोई जमात होती है? सत्संग होता है, जमात नहीं होती। सदगुरु के पास उठना-बैठना होता है। समाधिस्थ के पास मिटने की तैयारी होती है। जो खुद मिट चुका है उसके साथ जुड़ना शुरुआत है स्वयं के मिटने की। शिष्यत्व होता है, लेकिन कोई जमात नहीं होती। जमात तो झूठ की होती है, और जमात तो मूढ़ों की होती है। मगर मूढ़ों को एक फायदा है कि वे सदा यह कह सकते हैं कि हमारी संख्या है! कितने लोग हमारी बात को मानने वाले हैं! तो जरूर हमारी बात सच होगी।
मैं भी जार्ज बर्नार्ड शॉ की बात से सहमत हूं। सत्य के साथ मुश्किल से कभी कोई खड़ा होता है। सत्य की सार्वलौकिक निंदा होती है और असत्य की सार्वलौकिक पूजा होती है। असत्य को पुरस्कार मिलते हैं; असत्य को सम्मान मिलते हैं; पदवियां, उपाधियां मिलती हैं। सत्य को तो सिवाय सूली के और कभी कुछ नहीं मिला, पत्थरों के और गालियों के कभी कुछ नहीं मिला। सत्य को तो ताज भी पहनाए गए हैं तो कांटों के। सत्य का रास्ता कोई फूलों की सेज नहीं, दुर्गम है। ऐसे भी दुर्गम है, और लोग उसे और दुर्गम बना देते हैं। मगर कुछ भी हो, कंचन फिर भी कंचन है--दुनिया माने न माने, एक भी मानने वाला न हो।
एक जमाना था--कोई ज्यादा दिन पहले नहीं, सिर्फ तीन सौ साल पहले--सारी दुनिया मानती थी कि पृथ्वी चपटी है, गोल नहीं। और जिस एक व्यक्ति ने पृथ्वी को गोल माना, कोलंबस ने, उस पर लोग हंसे। उसको पागल कहा। उसके साथ यात्रा पर जाने को बड़ी मुश्किल से केवल थोड़े-से लोग राजी हुए, केवल नब्बे लोग राजी हुए। बामुश्किल सालों खोज कर वह नब्बे लोगों को राजी कर पाया। और इन नब्बे लोगों के साथ भी उसे रास्ते में हमेशा खतरा रहा। क्योंकि ये नब्बे लोग भी बीच-बीच में डगमगा जाते थे और सोचने लगते थे हम किस पागल के साथ पड़ गए! कोई दूर भी तो किनारा दिखाई पड़ता नहीं। और एक तो ऐसी घड़ी आ गई थी कि उन नब्बे लोगों ने यह तय कर लिया कि हम इस आदमी को उठा कर समुद्र में फेंक दें और वापस लौट जाएं।
जब कोलंबस को यह बात पता चली कि एक साजिश चल रही है, उसके ही शिष्यों में! आखिर अपनी जान गंवानी, इतनी हिम्मत थोड़े-से ही जवां मर्दों की होती है। उन नब्बे आदमियों ने सोचा कि अब मुश्किल हुई, क्योंकि तीन महीने का सामान लेकर चले थे, भोजन, वह चुकने लगा। केवल तीन दिन का सामान और बचा और अभी तक यह जिस किनारे की बात करता था वह आया नहीं। और जमीन गोल है, कुछ सिद्ध हुआ नहीं। क्योंकि कोलंबस का ख्याल था तीन महीने में हम पूरी पृथ्वी का चक्कर ही लगा लेंगे। अगर जमीन गोल है तो जहां से चलेंगे वहीं पहुंच जाएंगे। उसने अपना जो गणित बिठाया था उसमें तीन महीने का भोजन काफी था।
उन नब्बे लोगों ने, मल्लाहों ने, संगी-साथियों ने रात छुप कर एक बैठक
की और कहा कि हम कल ऐसा करें, इस आदमी को उठा कर पानी में फेंकें, यह पागल है और हम वापस लौट चलें। कोलंबस ने छिप कर यह बात सुनी। जब उसने देखा कि नब्बे ही आदमी नदारद हैं, तो कहां गए! देखा तो वे सब नीचे इकट्ठे हैं नाव में और घुस-पुस चर्चा कर रहे हैं। छिप कर उसने यह बात सुनी।
वह पहुंच गया द्वार खोल कर और उसने कहा कि कोई हर्ज नहीं, मैं तुम्हारा प्रयोजन समझा। तुम मेरे दुश्मन नहीं हो, लेकिन तुम अपने प्राणों से बहुत चिंतित हो। मैं राजी हूं, तुम मुझे पानी में फेंक दो, इसके लिए साजिश करने की कोई जरूरत नहीं। तुम कहो तो मैं खुद कूद जाऊं और तुम वापस लौट जाओ। लेकिन मुझे यह बताओ, एक बात का जवाब दे दोः हमारे पास केवल तीन दिन का भोजन बचा है। दो महीना सत्ताइस दिन तुम क्या करोगे? क्योंकि तीन महीने का भोजन लौटने के लिए भी चाहिए। तीन दिन का भोजन है, फिर बाकी समय तुम क्या करोगे? इतनी यात्रा तो हम करके आए, यह तुम्हें पक्की तरह मालूम है। इतनी यात्रा तुम वापस करोगे तो तीन महीने का भोजन तुम्हें चाहिए ही चाहिए। तो एक बात तो पक्की है तुम लौट कर न पहुंच सकोगे। इसलिए पीछे लौटना तो बिल्कुल व्यर्थ है। अब तो तीन दिन और तुम मुझ पागल का साथ दे लो, मैं

तुमसे कहता हूं तीन दिन के भीतर जमीन मिल जाएगी। मेरा गणित गलत नहीं हो सकता। रही बात निर्णय करने की, वह मैं तुम पर छोड़ देता हूं। लौटोगे तो तीन महीने का भोजन चाहिए, मेरे साथ चलोगे तो मैं तीन दिन के भोजन के ऊपर तुम्हें जमीन तक पहुंचा दूंगा।
आखिर उन लोगों ने भी सोचा कि बात तो ठीक है, लौट कर भी जाएंगे तो तीन महीने तो भोजन चाहिए, मर ही जाएंगे। और जो कोलंबस हमें इस यात्रा पर लाया है उसके बिना हम यात्रा भी कर सकेंगे लौट कर, यह भी पक्का नहीं है। इसके ही मार्गदर्शन में यहां तक पहुंचे हैं। अब तो अच्छा है कि तीन दिन और सही। तीन महीने सह लिया, तीन दिन और सही।
और ठीक तीन दिन में जमीन मिल गई। सारी दुनिया मानती थी कि जमीन चपटी है। एक पागल आदमी मानता था कि जमीन गोल है। लेकिन वह एक पागल आदमी सही साबित हुआ, क्योंकि जमीन गोल है! उसके पहले गैलीलियो के साथ यही मुसीबत हुई। सारी दुनिया मानती थी... । अब भी हमारी भाषाओं में शब्द तो नहीं बदले हैं, अब भी हम कहते हैं--सूर्यास्त, सूर्योदय। और शायद कभी नहीं बदलेंगे। लेकिन गैलीलियो ने कहा था कि न कोई सूर्यास्त होता है, न कोई सूर्योदय। धारणा यह थी कि सूरज चक्कर लगाता है पृथ्वी के। और गैलीलियो ने कहा कि पृथ्वी चक्कर लगाती है सूरज के। बात ही बदल दी। सारी दुनिया मानती थी एक बात और गैलीलियो ने लिखी दूसरी ही बात।
महा निंदा हुई। कैथलिक पोप ने उसे रोम बुलाया और कहा, तुम माफी मांग लो। वह बूढ़ा हो चुका था--पचहत्तर साल का हो चुका था। बीमार था, बिस्तर से उसे घसीट कर लाया गया और कहा कि तुम क्षमा मांग लो, अन्यथा मरने के लिए तैयार हो जाओ।
गैलीलियो बड़ा समझदार आदमी रहा होगा। बहुत कम लोगों ने उसकी समझदारी
की प्रशंसा की है। लोग समझते हैं वह कायर था, क्योंकि उसने क्षमा मांग ली। मैं ऐसा नहीं समझता, क्योंकि क्षमा उसने इस ढंग से मांगी कि वह कायरता नहीं बताती। वह उस आदमी की समझदारी बताती है। और वह उस आदमी की इतनी गहरी समझदारी बताती है कि पोप और उनका पूरा का पूरा मंडल जो निर्णायक बना बैठा था, उसकी मूर्खता सिद्ध होती है। गैलीलियो ने कहा कि आप कहें तो अभी क्षमा मांग लूं। मुझे क्या अड़चन है! अरे, मुझे लेना-देना क्या! मैं लिख दूंगा अपनी किताब में कि पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती, सूरज ही चक्कर लगाता है।
पोप प्रसन्न हुआ, उसका मंडल प्रसन्न हुआ। गैलीलियो ने खड़े होकर कहा, लेकिन एक बात ख्याल रहे, मेरे लिखने से कुछ भी न होगा। चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। मैं लिख दूंगा, मुझे लिखने में कोई अड़चन नहीं। मैं क्यों झंझट में पडूं, मुझे क्या लेना-देना, पृथ्वी लगाए चक्कर कि सूरज लगाए चक्कर। मगर इतना मैं कहे देता हूं, मेरे लिखने से कुछ बदलाहट होगी नहीं, बात कुछ बनेगी नहीं। लाख मेरे जैसे गैलीलियो लिखते रहें कि सूरज चक्कर लगाता है, सूरज सुनेगा नहीं। और तुम सूरज को सजा भी नहीं दे सकते। तुम उसे अदालत में भी नहीं ला सकते। मैं तो घुटने टेक कर क्षमा मांगता हूं कि मुझे माफ कर दो। न मालूम किस पागलपन में मैंने यह बात लिख दी। सच्ची बातें कहनी ही नहीं चाहिए। सच्ची बातें कहने का परिणाम बुरा होता है, यह तो मैंने सुना था, आज देख भी लिया। मैं माफी मांगता हूं और मैं लिखता हूं कि सूरज चक्कर लगाता है। मगर फिर भी जाते-जाते मैं कह जाता हूं, ध्यान रखना, मेरी सूरज मानता नहीं, पृथ्वी मेरी मानती नहीं। अरे, तुम्हीं मेरी नहीं मानते तो कोई मेरी क्या मानेगा! मेरे घर के लोग नहीं मानते, मेरी पत्नी नहीं मानती, मेरा बेटा नहीं मानता। कोई मानने वाला नहीं। चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है और लगाती रहेगी।
यह आदमी अदभुत सूझ-बूझ का आदमी रहा होगा। इसने क्या व्यंग्य किया, गहरा व्यंग्य किया! माफी भी मांग ली और उन बुद्धुओं को बुद्धू भी साबित कर दिया। लेकिन आज हम जानते हैं कि गैलीलियो सही था। यह सनातन कथा है कि बहुत बार कांच कंचन होने का दावा करता है। और भीड़ को जंचती है यह बात, क्योंकि कांच सस्ता मिल जाता है, बिना कीमत चुकाए मिल जाता है।
तुम ईश्वर को माने बैठे हो, जानते तो नहीं। इसलिए तुम्हारा जो ईश्वर
है वह कांच का टुकड़ा है, कंचन नहीं। विश्वास कांच के टुकड़े हैं, अनुभव स्वर्ण है।

कंचन कंचन ही सदा, कांच कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है...
चाहे दुनिया मानती रहे, सदियों तक मानती रहे, कुछ भेद नहीं पड़ता।
... झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच।।
कोई उपाय नहीं है सत्य को बदलने का। सत्य तो शाश्वत है, जैसा है बस वैसा है।
लेकिन सत्य को जानने के लिए साहस चाहिए। और सत्य को जानने के लिए असत्य से हमारे लगाव छूटने चाहिए। हम अपनी-अपनी धारणाओं में ऐसे ग्रसित हैं, हम अपनी-अपनी धारणाओं में ऐसे बंधे हैं कि हमें इसकी चिंता ज्यादा है कि हमारी धारणा सत्य सिद्ध होनी चाहिए, हमें सत्य की कोई चिंता नहीं। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे, जो सत्य के साथ खड़े होने को राजी हैं। वे बहुत थोड़े हैं। दूसरे वे, जो सत्य को अपने साथ खड़े करने को राजी हैं; उनकी संख्या बहुत है। और जब तुम सत्य को अपने साथ खड़ा करते हो, वह तुम्हारे तल का हो जाता है। तुम ही असत्य हो अभी, तुम ही अज्ञान से भरे हो अभी, तुम्हारे जीवन में कोई किरण नहीं, कोई सूरज नहीं, कोई जरा-सा दीया भी नहीं जलता। तुम्हारे साथ जो सत्य खड़ा होने को राजी होगा, वह धोखा ही हो सकता है।

इस तरह है कि हर इक पेड़ कोई मंदिर है
कोई उजड़ा हुआ बेनूर पुराना मंदिर
ढूंढता है जो खराबी के बहाने कब से!
चाक हर बाम, हर इक दर का दमे-आखिर है
आस्मां कोई पुरोहित है जो हर बाम तले
जिस्म पर राख मले, माथे पे सिंदूर मले सर-निगूं बैठा है चुपचाप न जाने कब से! इ स तरह है कि पसे-पर्दा कोई साहिर है जिसने आफाक पे डाला किसी सिह्र का दाम? दामने-वक्त से पैवस्त है यूं दामने-शाम! अब कभी शाम बुझेगी न अंधेरा होगा
अब कभी रात ढलेगी न सवेरा होगा
आस्मां आस लिए है कि ये जादू टूटे
चुप की जंजीर कटे, वक्त का दामन टूटे
दे कोई शंख दुहाई, कोई पायल बोले
कोई बुत जागे, कोई सांवली घूंघट खोले!
बहुत देर हो गई है। रात गहरी से गहरी होती चली गई है। सुबह का कुछ पता
ही नहीं चलता।
अब कभी शाम बुझेगी न अंधेरा होगा
अब कभी रात ढलेगी न सवेरा होगा
आस्मां आस लिए है कि ये जादू टूटे
चुप की जंजीर कटे, वक्त का दामन टूटे
दे कोई शंख दुहाई, कोई पायल बोले
कोई बुत जागे, कोई सांवली घूंघट खोले!
जरूरत है कि कोई पर्दे को उठाए। हालांकि जो पर्दे को उठाएगा झंझट में पड़ेगा; हालांकि जो यह घूंघट खोलेगा उसकी सूली निश्चित है। जो इस अंधेरे को तोड़ने की कोशिश करेगा, अंधेरे के दुकानदार, अंधेरे के साथ जिनके न्यस्त स्वार्थ जुड़े हैं, वे उसे मिटा डालने को आतुर हो जाएंगे। लेकिन सत्य के मार्ग पर मिट जाना भी असत्य के मार्ग पर जीने से लाख गुना बेहतर है।
उसी के लिए मैं पुकार दे रहा हूं। संन्यास सत्य के खोजियों की खोज है। मैं चाहता हूं कि तुम हिम्मत करो, शंख फूंको।
दे कोई शंख दुहाई, कोई पायल बोले
बहुत जमाने हो गए, जीवन से नृत्य खो गया है। सत्य के बिना नृत्य हो भी नहीं सकता। जमाने हो गए, कोई शंख नहीं बोला। जीवन के असली मंदिर में कोई अर्चना के थाल नहीं सजे, कोई पूजा नहीं हुई। झूठे मंदिर बन गए हैं, झूठे

चर्च खड़े हैं, झूठी मस्जिदें खड़ी हैं--जिनमें बहुत शोर-शराबा है, बहुत भीड़-भाड़ है। लेकिन सब जगह झूठ की दुकानें हैं।
सत्य तो सदा व्यक्तियों के पास होता है, शास्त्रों के पास नहीं। मैं चाहता हूं कि तुम जगाओ इस सोई हुई बुत को।
कोई बुत जागे...
यूं नहीं जागेगी, अपने से नहीं जागेगी। झकझोरना होगा तो जागेगी। और ध्यान रहे, झकझोरोगे तो गालियां खाओगे। झकझोरोगे तो पत्थर खाओगे। मगर सत्य के मार्ग पर पड़े हुए पत्थर भी, सत्य के मार्ग पर खाए हुए पत्थर भी फूल हो जाते हैं। और असत्य के मार्ग पर अगर फूल भी मिल जाएं तो कागजी फूल होते हैं, किसी काम नहीं आते।
चुप की जंजीर कटे...
बहुत हो गया, कोई चुप की जंजीर को तोड़े! कोई इस साजिश को तोड़े!
... कोई पायल बोलेकोई बुत जागे, कोई सांवली घूंघट खोले!
सत्य तो सत्य है। मगर सत्य को भी अपनी उदघोषणा तो किसी समाधिस्थ व्यक्ति से ही करनी होती है। सत्य तो संगीत है, लेकिन उस संगीत को भी तो कोई पोली बांसुरी चाहिए, जिससे बहे।
मैं तो संन्यास की परिभाषा यही करता हूंः बांस की पोली पोंगरी। जिस दिन तुम अपने अहंकार को छोड़ देते हो, अपने मन को तोड़ देते हो, उस दिन बांस की पोली पोंगरी हो जाते हो। फिर तुम्हारे ऊपर उस अज्ञात सत्य के ओंठ संगीत छेड़ देते हैं; तुम्हारी हृदय-तंत्री अनाहत नाद से भर जाती है।

जिन्होंने हो तुझे देखा, नयन वे और होते हैं!
कि बनते वंदना के छंद, क्षण वे और होते हैं!
जहां गुलजार गुलशन, क्या अजब, सब फूल तेरे हैं,
लगे पर जो गले तेरे, सुमन वे और होते हैं!
नहीं दिखता मुझे जब, सत्य भी मेरे लिए सपना,
कि जो हक में हकीकत के, सपन वे और होते हैं!
अगन जाए न बुझ, बहते रहें आंसू किसी हद तक,
उठाते जो लपट ऊंची, नमन वे और होते हैं!
मरण भी लोक-जीवन के लिए आदर्श,
पर अर्पित--तुझे जिनके सकल जीवन-मरण, वे और होते हैं!
गहन वन, गर्त, खाई देख चलना है मुनासिब पर--
तुझे ही देखते चलते, मगन वे और होते हैं!
उन मगन लोगों को ही मैं पुकार रहा हूं। उनको ही पुकार रहा हूं जो इन अदभुत क्षणों को जी सकें।
जिन्होंने हो तुझे देखा, नयन वे और होते हैं!
उन्हीं नयनों को पुकार रहा हूं--उन्हीं आंखों वालों को! यूं तो सभी आंख वाले हैं, लेकिन आंखें बंद किए बैठे हैं। और अगर उनसे कहो कि आंख खोलो तो नाराज होते हैं। क्योंकि बंद किए आंख जमाने-जमाने बीत गए। वे भूल ही गए कि उनके पास आंखें भी हैं। जैसे पिंजड़ों में बंद कोई पक्षी भूल ही चुका हो कि उसके पंख भी होते हैं। और अगर तुम उसे पिंजड़े से निकाल भी दो, तो ध्यान रखना, वह जी न सकेगा, वह उड़ न सकेगा; उसके पंखों को उड़ने की कला ही भूल गई होगी। ऐसी ही लोगों की आंखें हैं--जंजीरों में बंद, पत्थरों में ढंकी, विश्वासों से आच्छादित, शास्त्रों में दबी। देखते दिखाई पड़ते हैं, मगर कुछ उन्हें दिखाई पड़ता नहीं।
जिन्होंने हो तुझे देखा, नयन वे और होते हैं!
कि बनते वंदना के छंद, क्षण वे और होते हैं!
उन क्षणों को, उन नयनों को पुकार रहा हूं, जो कि वंदना के छंद बन जाएं। जहां गुलजार गुलशन क्या अजब, सब फूल तेरे हैं,
लगे पर जो गले तेरे, सुमन वे और होते हैं!
तुम परमात्मा के गले का हार बन सकते हो। यह प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह सत्य को खोजे और सत्य के गले का हार हो जाए। और जब तक कोई सत्य के गले का हार नहीं होता तब तक तुम्हारे जीवन में हार ही

हार है, विजय नहीं। जिस दिन तुम परमात्मा के गले के हार हो जाते हो, उस दिन हार विजय हो गई। उस दिन तुम्हारा मिटना तुम्हारी जीत हो गई।
नहीं दिखता मुझे जब, सत्य भी मेरे लिए सपना,
कि जो हक में हकीकत के, सपन वे और होते हैं!
अगन जाए न बुझ, बहते रहें आंसू किसी हद तक,
उठाते जो लपट ऊंची, नमन वे और होते हैं!
तुम्हारे जीवन से ऐसी लपट उठनी चाहिए। लेकिन लोग नाराज होते हैं। मैंने किसी को संन्यास देते वक्त कहा कि जरथुस्त्र ने कहा था कि तुम्हारे भीतर की आग को जगाओ, क्योंकि वही आग जीवन है, वही आग परमात्मा है। और जरथुस्त्र को मानने वाले बाहर की आग की पूजा में लगे हैं। भीतर की आग की बात अंधों के हाथ में जाते ही सदा बाहर की आग हो जाती है। अंधों को सत्य कहो, फौरन असत्य हो जाता है।
जरथुस्त्र से मुझे प्रेम है, क्योंकि जरथुस्त्र जैसा कोई व्यक्ति पृथ्वी पर शायद दूसरा नहीं हुआ। बुद्ध में कुछ न कुछ जीवन-निषेध है। महावीर में तो बहुत कुछ जीवन-निषेध है। जीवन का इनकार कहीं न कहीं है। लेकिन जरथुस्त्र में जीवन की परम विधायकता है, जीवन का परिपूर्ण स्वीकार है। जीवन ही ढंग से जीने का नाम धर्म है। इसलिए जरथुस्त्र ने जो काम किया है, वह मेरे काम से बहुत मिलता-जुलता है।
लेकिन मेरे वक्तव्य के कारण पारसियों से मुझे इतनी गालियां मिलनी शुरू हो गईं कि मैं हैरान हुआ। हैरान इसलिए हुआ कि मैंने यह कहा था कि जरथुस्त्र जीवन के प्रति जितने समादर से भरा है उतना कोई दूसरा व्यक्ति नहीं। और जरथुस्त्र ने जीवन को ही परमात्मा की स्थिति पर उठा दिया है-- जीवन ही परमात्मा है। और उसका प्रतीक है तुम्हारे भीतर की अग्नि। विज्ञान भी इससे राजी है कि सारा जीवन अग्नि ही है। अगर सूरज बुझ जाए तो आदमी भी बुझ जाएंगे, पक्षी भी बुझ जाएंगे, फूल भी बुझ जाएंगे, सब बुझ जाएगा। इधर सूरज बुझा कि सब बुझा। यह सूरज की आग है, जो तुम्हें गरमाए हुए है, जो तुम्हें जिलाए हुए है। अग्नि को जीवन का प्रतीक बना लेना बड़ी गहरी खोज थी, बड़ी गहरी सूझ थी। लेकिन मंदिर बनाकर, अग्यारी बनाकर अग्नि की पूजा करते रहना निपट पागलपन है।
बहुत-से पत्र मेरे खिलाफ अखबारों में छपे हैं पारसियों के। सिर्फ एक पारसी महिला का पत्र छोड़ कर, शेष सबने गालियां दी हैं कि मैं उनके धर्म के खिलाफ बोल रहा हूं, मुझे क्या हक है कि मैं जरथुस्त्र के संबंध में बोलूं? मैं तुमसे कहता हूंः मेरे सिवाय किसी को हक नहीं है। पारसी घर में पैदा हो गए, इससे कोई हक मिलता है? जरथुस्त्र को जैसा मैं जानता हूं, जैसा मैं पहचानता हूं, वैसा कोई पारसी घर में पैदा हो जाने से थोड़े ही पहचान लेगा। ये कोई पैदाइश की बातें हैं? कोई जरथुस्त्र को खून और हड्डियों से पहचाना जाता है? मैं हकदार हूं, जरथुस्त्र पर कहूंगा। और जरथुस्त्र को जिन्होंने गलत समझा है उनके संबंध में भी कहूंगा।
सिर्फ एक महिला ने भर पत्र लिखा है कि मेरी बात सच है। और उसने लिखा है
कि मैं जन्मजात पारसी हूं और आप जैसी बात कहने वाले जितने ज्यादा लोग हों उतना मनुष्य-जाति का हित हो सकता है।
लेकिन बाकी लोगों ने एकदम गालियां दी हैं। तो मैंने जो जरथुस्त्र के साथ यह कहा था कि पारसी बुद्धिमान हैं, विचारशील हैं, जीवन को प्रेम करने वाले लोग हैं, निषेधक नहीं हैं--सिर्फ एक महिला ने मेरी बात के अनुकूल उत्तर दिया है। बाकी सब बड़ी चेष्टा में लगे हैं सिद्ध करने को मुझे गलत कि नहीं, पारसी इतने बुद्धिमान नहीं जितना मैंने कहा, कि आप गलत कहते हैं, कि कहां हम बुद्धुओं को आपने बुद्धिमान कह दिया! सारे पत्रों के लिखने वाले इस कोशिश में लगे हैं कि मैंने जो पारसियों के संबंध में कह दिया, वह गलत कह दिया।
बाहर नहीं कोई सत्य है, सत्य भीतर है। उसे परमात्मा कहो, उसे अग्नि कहो, उसे जीवन कहो, उसे निर्वाण कहो--उसे जो भी नाम देना हो दे दो--लेकिन वही है सत्य।
और दरिया कहते हैंः लोग कुछ भी मानते रहें, दरिया झूठ सो झूठ है, सांच
सो सांच!

विश्वासों से मुक्त होना है और अनुभव की तलाश करनी है। सिद्धांतों से मुक्त होना है और स्वानुभूति में उतरना है। चित्त को निर्विचार करना है। ये विचार के चश्मे हैं, जो हर चीज को रंग देते हैं और हमारी देखने की क्षमता ही खो जाती है। जब चित्त निर्विचार होता है तो वह नजर पैदा होती है जो आर-पार देख लेती है। और तब सत्य के सिवाय कुछ भी नहीं बचता है। तब तुम जानते हो कालातीत को, समयातीत को। और जिसने समयातीत को जाना, वह समयातीत हो जाता है। जिसने कालातीत को जाना वह कालातीत हो जाता है। वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। वेद कहते हैंः अमृतस्य पुत्रः! तुम अमृत के पुत्र हो। मगर मृत्यु को तुमने अपना सब कुछ मान रखा है, क्योंकि परिवर्तनशील को पकड़ कर बैठे हो। परिवर्तनशील को छोड़ो और अपने भीतर उसको तलाशो जो कभी नहीं बदलता। तुम्हारे भीतर क्या है जो नहीं बदलता? शरीर तो रोज बदलता है, मन तो प्रतिपल बदलता है। हृदय तो और भी जल्दी बदलता है। ये तीन तुम्हारी पर्तें हैं। और इन तीन के पार तुम्हारा जाग्रत चैतन्य है, तुम्हारा होश है। वह होश कभी नहीं बदलता। तुम जब बच्चे थे, तब भी वही होश था। फिर तुम जवान हुए, तब भी वही होश है। बूढ़े हो जाओगे, तब भी वही होश है। जीते जी भी वही होश है; और काश तुम मरते क्षण भी उस होश को सम्हाले रहो, फिर तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं है। फिर तुम उस सूत्र को पकड़ लिए, जो मिटता ही नहीं।
एक ही चीज शाश्वत है, वह चैतन्य है। वही है सच्चिदानंद। उसकी ही तलाश करनी है। उसकी ही तलाश में सारा जीवन लगा देना है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं एक कवि हूं और राजनीति में भी हूं। मेरा वास्तविक धर्म क्या है, यह मुझे बताएं।

राजेंद्र आग्नेय, कवि हो और राजनीति में हो, यह तो बड़ी उपद्रव की बात है। दोनों एक साथ कैसे हो सकोगे? दो नावों पर सवार। और नावें भी एक दिशा में जाती हुई नहीं; दो विपरीत दिशाओं में जाती हुई। कहां राजनीति और कहां काव्य! राजनीति से ज्यादा काव्य-शून्य कोई जगत है? और राजनीति से शून्य काव्य के अतिरिक्त क्या हो सकता है?
राजनीति है बाहर की दौड़। राजनीति है दूसरे के ऊपर मालकियत। और काव्य
है अपने अंतर में ठहरना और अपने अंतर की स्फुरणा को अभिव्यक्ति देना। राजनीति पर-निर्भर है; काव्य स्व-निर्भर। इनका कहां तालमेल बिठाओगे? और अगर तुम दोनों में हो तो एक ही बात पक्की समझो कि तुम्हारा काव्य झूठा है, राजनीति ही सच्ची होगी।
जब भी कोई आदमी पूछता हो कि मेरे पास एक हीरा है और एक पत्थर, दोनों में से किसको बचाऊं, तो क्या समझेंगे हम? यही समझेंगे कि इसको हीरे की परख नहीं। नहीं तो पत्थर और हीरे में बचाने का सवाल ही कहां उठता है! अगर परख होती तो हीरा बचा ही लिया होता, पत्थर फेंक ही दिया होता।
तुम पूछते हो कि मैं राजनीति में भी हूं और कवि भी... ।
यह तो असंभव है। जब भी कोई व्यर्थ और सार्थक के बीच पूछता है किसको चुनूं, तो जान लेना कि उसे अभी सार्थक दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारी कविता भी वैसी होगी जैसे अटलबिहारी वाजपेयी की कविता। वे भी कविता करते हैं! तुकबंदी, उसको कविता समझते हैं। हैं पहुंचे हुए पुरुष! अटलबिहारी ब्रह्मचारी उनका असली नाम होना चाहिए--अटलबिहारी वाजपेयी के बजाए। तुकबंदी कर लेते हैं। तुक्तक लिख लेते हैं और उसको काव्य समझते हैं। तुकबंदी कोई भी लिख सकता है। तुकबंदी से कुछ भी नहीं होता।
एक प्रसिद्ध राजनेता और कवि एक बार वेश्यालय गए। होंगे तुम जैसे, या होंगे अटलबिहारी ब्रह्मचारी जैसे। वेश्या युवती के पास जाकर वे लंबी- चौड़ी बातें करने लगे, जैसी कि कवियों और राजनीतिज्ञों की आदत होती है। और दोहरी बीमारी--कविता भी आए और राजनीति भी आए। डबल निमोनिया! बोले, प्रिये, मैं तुम्हारे लिए आसमान के तारे तोड़ कर ला सकता हूं। युवती कुछ न बोली, चुप रही। नेता जी फिर बोले, प्रिये, मैं तुमसे सचमुच ही बहुत प्रेम करता हूं। मैं भी किसी मजनूं या फरिहाद से कम नहीं। यदि कहो तो आज ही मैं भी ठेकेदार को एक दूध की नहर तुम्हारे घर तक लाने का ठेका दे दूं, जैसा कि फरिहाद ने किया था। युवती तब भी चुप रही। जब काफी देर तक भी युवती उनकी किसी बात का

प्रत्युत्तर न दी, तो नेता जी बोले, प्रिये, मैं तुम्हारे लिए जान भी दे सकता हूं। तुम जो भी करने को कहो, कर सकता हूं, मगर कुछ तो बोलो!
युवती जो कि अब तक झल्ला चुकी थी, बोली, नेता जी, तारे तोड़ना हों तारे तोड़ो, नहर खुदवाना हो नहर खुदवाओ और जान देना हो तो जान दे दो, मगर जो भी करना हो जल्दी करो, बाहर दूसरे ग्राहक इंतजार कर रहे हैं।
राजेंद्र आग्नेय, ऐसे ही कवि मालूम होते हो।
सुना मैंने, सेठ चंदूलाल मारवाड़ी की बेटी पंजाब घूमने गई थी। और वहां पंजाब के प्रसिद्ध कवि सरदार विचित्तर सिंह के प्रेम में पड़ गई। और अंततः सरदार जी से ही उसने विवाह कर लिया। सरदार जी जब पहली दफा अपनी ससुराल आए तो सास-ससुर, अन्य रिश्तेदारों ने कुंवर साहब कह कर उनका बहुत-बहुत सम्मान किया। जो मिले वही कहे, कुंवर साहब! मगर कुंवर साहब सुनते ही उनको आग लग जाए, आग्नेय हो जाएं! जो भी उन्हें देखता--आइए कुंवर साहब आइए, पधारिए कुंवर जी, या कुंवर जी स्नान के लिए चलिए, भोजन के लिए चलिए कुंवर साहब, आदि-आदि।
एक दिन तो विचित्तर सिंह यह सब सहन करते रहे, मगर दूसरे दिन उनसे न रहा गया। और गुस्से में आकर अपने ससुर चंदूलाल से बोले, बंद करिए यह बकवास। यह क्या कुंवर साहब कुंवर साहब मचा रखा है? मैं सरदार अवश्य हूं, किंतु इतना मूर्ख नहीं हूं कि जितना आपने समझ रखा है। मैं कवि हूं। कु शब्द का उपयोग खराब चीजों के लिए किया जाता है--जैसे कुत्सित, कुकर्म, कुरूप, कुगुरु, कुदेव, कुख्यात। और सु शब्द का प्रयोग अच्छे गुणों के लिए--जैसे सुशब्द, सुंदर, सुशील, सुरम्य, सुभाषित, सुखद इत्यादि। ख्याल रखिए, यदि आपने मुझे अब एक बार भी आगे कुंवर साहब कहा तो मैं आपकी लड़की को तलाक दे दूंगा! चंदूलाल भी हैं तो मारवाड़ी! बोले, अरे सुंअर साहब, आप कैसी बातें कर रहे हैं!
राजेंद्र आग्नेय, भैया राजनीति ही करो। काव्य कठिन पड़ेगा। काव्य के जगत में उतरना हो--और मुझसे अगर पूछते हो--तो काव्य में उतरने का एक ही उपाय है, वह ध्यान है। नहीं तो तुकबंदी ही रहेगी। सुंदर से सुंदर तुकबंदी भी आखिर तुकबंदी है। अगर सच में काव्य में उतरना है तो पहले तो शांत बनो, मौन बनो। इतने मौन बनो कि तुम्हारे भीतर से परमात्मा बोल सके। इतने चुप हो जाओ कि तुम्हारी अपनी कोई वाणी ही न बचे, कि उसका झरना तुमसे बह सके। तब काव्य पैदा होता है। तब सच्चा काव्य पैदा होता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो,
महाकवि रवींद्रनाथ ने अपने मुक्ति-बोध को एक सुंदर गीत में बांधा है-- वैराग्यसाधने मुक्ति, से आमार नय।
असंख्य बंधन मांझे महानंदमय
लभिब मुक्तिर स्वाद! एइ वसुधार
मृत्तिकार पात्रखानि भरि बारंबार
तोमार अमृत ढालि दिबे अविरत
नानावर्णगंधमय। प्रदीपेर मतो समस्त संसार मोर लक्ष वर्तिकाय ज्वालाये तुलिबे आलो तोमारि शिखाय तोमार मंदिर मांझे।।
इंद्रियेर द्वार
रूद्ध करि योगासन, से नहे आमार।
ये किछु आनंद आछे दृश्ये गंधे गाने
तोमार आनंद रबे तार मांझखाने।।
मोह मोर मुक्ति उठिबे ज्वलिया,
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया।।
वैराग्य साधने से जो मुक्ति आती है वह मेरी मुक्ति नहीं है। मैं तो असंख्य बंधनों के बीच ही अति आनंदपूर्ण मुक्ति का स्वाद लूंगा। इस पृथ्वी का मृत्तिका पात्र ही बार-बार भर कर निरंतर तुम्हारे अनेक वर्ण और गंध से युक्त अमृत को उंडेलेगा। दीपक के समान समस्त संसार मेरी लाख-लाख बत्तियों में तुम्हारी ही शिखा में जला कर तुम्हारे ही मंदिर में प्रकाश करेगा।

इंद्रियों के द्वार को रुद्ध करने वाला जो योगासन है वह मेरा मार्ग नहीं है। दृश्य, गंध और गान में जो कुछ भी आनंद है उसी के भीतर तुम्हारा आनंद रहेगा। मोह मेरी मुक्ति के रूप में जल उठेगा। प्रेम मेरी भक्ति के रूप में फला हुआ रहेगा।
ओशो, महाकवि के इस उदगार पर कुछ कहने की कृपा करें।

निखिलानंद, रवींद्रनाथ ने बहुत बार प्यारे वचनों को अभिव्यक्ति दी है--ऐसे वचनों को जो उन्हें ऋषियों के बहुत निकट ले आते हैं; ऐसे वचन जिनमें उपनिषदों का रस है; ऐसे वचन जो कि कैसे वे बांध पाए यह चमत्कार है।
क्योंकि ध्यान उन्होंने कभी साधा नहीं, समाधि उन्होंने कभी जानी नहीं। लेकिन अति संवेदनशील व्यक्ति थे। उनकी अति संवेदनशीलता उन्हें बहुत सत्य के निकट ले आई।
मगर एक बात ख्याल रहे, सत्य के कितने ही निकट आ जाओ, लेकिन जब तक सत्यमय ही नहीं हो जाते तब तक निकटता भी दूरी है। बिल्कुल सत्य के पास भी बैठ जाओ, सत्य तुममें झलकने भी लगे, झिलमिलाने भी लगे, जैसे दर्पण में कोई तस्वीर बने, मगर दर्पण की तस्वीर दर्पण की तस्वीर है। वह झील में बना चांद चांद नहीं है; बिल्कुल चांद जैसा है। और कभी जब झील शांत होती है तो बहुत चांद जैसा होता है। और कभी-कभी तो यूं हो सकता है कि चांद से भी सुंदर लगे। रवींद्रनाथ जैसे व्यक्ति को समझना जरा दुरूह है। दुरूह इसलिए कि वे झील के चांद हैं। कभी-कभी तो असली चांद से भी ज्यादा सुंदर मालूम हो सकते हैं, क्योंकि झील का सौंदर्य भी सम्मिलित हो जाता है। झील गहराई भी दे देती है और झील एक तिलिस्म भी दे देती है--एक जादू! लेकिन झील का चांद बिल्कुल चांद जैसा लग कर भी चांद नहीं है, केवल प्रतिच्छाया है।
काश रवींद्रनाथ ध्यान में भी उतरे होते तो इतनी भी दूरी न रह जाती! यह करीब होने की दूरी भी न रह जाती। यह करीब-करीब सत्य होना भी फासला है। और फासला एक पारदर्शी दीवार का हो तो भी फासला है। तुम एक पक्षी के लिए कांच का पिंजड़ा बना सकते हो--ऐसा पिंजड़ा कि उस पिंजड़े का कांच इतना पारदर्शी हो कि पक्षी को पता भी न चले कि मेरे और आकाश के बीच में कोई दीवार है। इतना शुद्ध कांच हो सकता है, स्फटिक हो सकता है, कि पक्षी को यूं लगे कि अब चाहूं तो अभी उड़ जाऊं। ये सारे चांद, ये सारे तारे, यह सारा आकाश खुला तो है, कहीं कोई सींकचे तो नहीं, कहीं कोई मेरे पैरों पर बंधन तो नहीं, कहीं कोई दीवार तो नहीं। मगर जब भी उड़ेगा तभी पाएगा कि दीवार है। पारदर्शी है। तड़फड़ा कर गिर पड़ेगा वहीं।
रवींद्रनाथ और सत्य के बीच एक पारदर्शी दीवार रह गई--बस एक पारदर्शी दीवार। लेकिन उन्होंने देख लिया पारदर्शी दीवार के पार जो चांद-तारों का लोक है, उसकी झलक उनमें है। इन वचनों से मैं राजी हो सकता हूं, बस थोड़ी-सी शर्त मुझे रखनी पड़ेगी। पूरा-पूरा राजी नहीं हो सकता, बेशर्त राजी नहीं हो सकता। ये वचन प्यारे हैं। और शायद ही कोई कवि इतने करीब आया है ऋषि के जितने रवींद्रनाथ। इस सदी में दो व्यक्ति रवींद्रनाथ और खलील जिब्रान बहुत निकट आए हैं। और एक तीसरा व्यक्ति माइकल नेमी भी करीब-करीब इतने ही निकट आ गया। इन तीन व्यक्तियों को छोड़ कर इस सदी में किसी कवि ने ऐसी ऊंचाई नहीं ली। लेकिन ऋषि न हो पाए, ध्यान की कमी रह गई। जो कहा वह प्यारा है। वैराग्यसाधने मुक्ति, से आमार नय।
"वैराग्य साधने से जो मुक्ति आती है वह मेरी मुक्ति नहीं।"
अब मैं तुम्हें फर्क बताऊं, कहां मेरा उनका फर्क हो जाएगा। अगर उन्होंने ध्यान भी साधा होता तो वे कहते वैराग्य साधने से मुक्ति आती ही नहीं। अभी वे इतना तो मान रहे हैं कि वैराग्य साधने से जो मुक्ति आती है वह मेरी नहीं है। वह मेरी नहीं है, यह तो सत्य है। मगर वैराग्य साधने से भी मुक्ति आती है, यह भ्रांति उनकी नहीं टूटी। इतना वे स्वीकार करते हैं कि वैराग्य साधने से भी आती है, आई है, आती रही है; उसका इनकार नहीं है। यह जरूर वे कह रहे हैं कि वह मेरा मार्ग नहीं। मगर मार्ग वह है, इसका अस्वीकार नहीं है। बस उतनी ही बात मेरे और उनके बीच खलल हो जाती है। नहीं तो मैं बिल्कुल राजी हो जाऊं।

वैराग्य मेरा मार्ग भी नहीं है, मगर इसलिए मेरा मार्ग नहीं है कि वैराग्य साधने से मुक्ति आती ही नहीं। अगर आती हो तो मेरा मार्ग न हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? किसी का मार्ग हो सकता है। मगर वैराग्य साधने से मुक्ति आती ही नहीं, क्योंकि वैराग्य राग का उलटा हो जाना है--राग का शीर्षासन है। राग मिटता नहीं, केवल दमित हो जाता है। सड़ा सकते हो अपने को, गला सकते हो अपने को। शरीर को सुखा सकते हो। हड्डियों का पंजर रह जाए तो जरूर लगेगा कि राग समाप्त हो गया। लेकिन समाप्त नहीं हुआ, फिर भोजन करो, फिर ठीक से शरीर को जीवन-ऊर्जा दो, सारा राग वापस लौट आएगा।
वे जो हिमालय की गुफाओं में बैठे हैं, फिर उन्हें लौटा लाओ बाजार में। तुम चकित होओगे जान कर कि वे तुमसे ज्यादा बाजारू सिद्ध होंगे। क्योंकि तीस साल से अगर उन्होंने दमन किया है तो तीस साल के रोग इकट्ठे हो गए हैं। वे तीस साल के रोग बाजार में आकर एकदम से फूट पड़ेंगे। उनके पापों का घड़ा तुमसे कहीं ज्यादा भरा है। तुम्हारा तो रोज-रोज खाली हो जाता है; उनका भरता ही रहा है, तीस साल से इकट्ठा है। उनकी मवाद तो बहुत इकट्ठी हो गई है। यह बात तो प्यारी है--
वैराग्यसाधने मुक्ति, से आमार नय।
रवींद्रनाथ कहते हैं, "वह मेरा मार्ग नहीं।" इससे तो मैं राजी हूं, वह मेरा भी मार्ग नहीं। मगर मैं इतना और कहना चाहता हूं, वह मार्ग ही नहीं है। उन्होंने कहा, "मैं तो असंख्य बंधनों के बीच ही अति आनंदपूर्ण मुक्ति
का स्वाद लूंगा।"
लेकिन लोगे कैसे? ले तो न सके। रवींद्रनाथ चिंताओं में जीए, परेशानियों में जीए, अशांतियों में जीए। सत्कार सुख देता था, अपमान दुख देता था। किसी से प्रेम हो गया था; उससे मिलना सुख, उससे न मिलना दुख। जीओगे कैसे आनंद से?
कहते तो हो, "मैं तो असंख्य बंधनों के बीच ही अति आनंदपूर्ण मुक्ति का स्वाद लूंगा।"
तुम लेना चाहते हो, मगर लोगे कैसे? ध्यान के बिना वह तो संभव नहीं। लिया जा सकता है। मैं भी कहता हूं, लिया जा सकता है। कोई जरूरत कहीं भागने की नहीं है। सारे बंधनों के बीच में भी कोई मुक्त हो सकता है; वही तो मेरा संन्यास है। संसार के बीच में भी कोई अछूता रह सकता है। यह संसार की कालिख की कोठरी, यह काजल की कोठरी; इससे गुजरा भी जा सकता है और वस्त्र बिल्कुल ही स्वच्छ रह सकते हैं, कहीं धब्बा भी न लगे, दाग भी न लगे। कबीर ने कहा नः खूब जतन से ओढ़ी रे कबीरा, ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया! इतने जतन से! मगर वह जतन रवींद्रनाथ के पास नहीं है। उसी जतन का नाम ध्यान है। वह यत्न, वह साधना, वह रवींद्रनाथ के पास नहीं है। रवींद्रनाथ कभी किसी सदगुरु के पास नहीं बैठे, किसी सत्संग में नहीं बैठे। रवींद्रनाथ ने जो भी कहा है, संवेदनशील है, मगर सत्यानुभव नहीं। बहुत करीब आ गया, लेकिन फिर भी बस करीब ही अटका रह गया। आ-आ कर भी अटका रह गया। जैसे कोई सीढ़ियों से चढ़ा और आखिरी सोपान पर बैठ गया, लेकिन छत पर न पहुंचा सो न पहुंचा।
"मैं तो असंख्य बंधनों के बीच ही अति आनंदपूर्ण मुक्ति का स्वाद लूंगा।"
बात तो प्यारी है, जरूर लो। मगर लोगे कैसे? उसकी विधि कहां?
असंख्य बंधन मांझे महानंदमय
लभिब मुक्तिर स्वाद! एइ वसुधार
मृत्तिकार पात्रखानि भरि बारंबार
तोमार अमृत ढालि दिबे अविरत
नानावर्णगंधमय। प्रदीपेर मतो
समस्त संसार मोर लक्ष वर्तिकाय
ज्वालाये तुलिबे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मंदिर मांझे।।
"इस पृथ्वी का मृत्तिका पात्र ही बार-बार भर कर निरंतर तुम्हारे अनेक वर्ण और गंध से युक्त अमृत को उंडेलेगा।"
बात तो अच्छी है, स्वादिष्ट, सुंदर; मगर कैसे कर सकोगे यह? इस मिट्टी
के पात्र में अमृत भरोगे कहां से? इस मिट्टी के पात्र में अमृत को भर कर

परमात्मा के चरणों पर चढ़ाने की आकांक्षा शुभ है, मगर शुभ आकांक्षाओं से ही तो नर्क का रास्ता पटा पड़ा है। सिर्फ आकांक्षा से कुछ नहीं होता। आकांक्षा को आकार कैसे दोगे? उसकी कीमिया कहां है?
रवींद्रनाथ ने कहीं ध्यान और समाधि की तो कोई बात की नहीं। अमृत कहां
से लाओगे? मिट्टी का पात्र तो ठीक है, सबके पास है, मगर अमृत कहां से लाओगे? ध्यान के बिना कभी कोई अमृत को पा सका है? अमृत तुम्हारे भीतर है, मगर खोजोगे कैसे? खोजने की विधि ही तो ध्यान है।
इसलिए इस कविता में--इस प्यारी कविता में--अगर तुम ध्यान जोड़ दो, इसकी पृष्ठभूमि में अगर तुम समाधि को खड़ा कर दो, तो मैं इससे पूरा-पूरा राजी हूं। मगर अगर समाधि की पृष्ठभूमि न हो तो ये सुंदर वचन हैं, प्यारे वचन हैं--मगर अर्थहीन, निष्प्राण।
कहते हैं, "दीपक के समान समस्त संसार मेरी लाख-लाख बत्तियों में तुम्हारी ही शिखा में जला कर तुम्हारे ही मंदिर में प्रकाश करेगा।" लेकिन वह मंदिर कहां? अभी उस परम शिखा से पहचान कहां? कह तो रहे हो, लेकिन यह उड़ान है कविता की। और कभी-कभी कवि बहुत ऊंची उड़ान ले लेता है। लेकिन यह उड़ान सिर्फ कल्पना की है, यह सत्य का अनुभव नहीं। और कल्पना कल्पना है--सांच सांच सो सांच।
इंद्रियेर द्वार
रूद्ध करि योगासन, से नहे आमार।
"इंद्रियों के द्वार को रुद्ध करने वाला जो योगासन है वह मेरा मार्ग नहीं।"
फिर वही बात--मेरा मार्ग नहीं है। लेकिन योगासन से भी मिलता है, उससे
भी लोगों ने पाया है--इसका इनकार नहीं है। मैं तुमसे कहता हूं, लाख तुम योगासन करो, नहीं पाओगे। हां, कुछ और पाओगे। स्वास्थ्य पाओगे। कम बीमार होओगे। ज्यादा लंबे जीओगे। मगर ज्यादा लंबे जीकर भी क्या करोगे? जीओगे तो यही जीवन, यही गलत जीवन। यह तो कम ही जीना अच्छा है। इसको लंबा जीकर और गलतियां बढ़ाओगे। स्वस्थ रहोगे माना, मगर स्वस्थ रह कर करोगे क्या? और शराब पीओगे। और जुआ खेलोगे। और वेश्यागमन करोगे। और करोगे क्या?
योगासन तुम्हें स्वास्थ्य दे सकता है, लंबी आयु दे सकता है, इसमें कोई
दो मत नहीं हैं। क्योंकि सुंदर व्यायाम है; मगर व्यायाम शरीर के पार नहीं जाता। शरीर को मोड़ो-मरोड़ो, ऐसा झुकाओ, वैसा झुकाओ। स्वभावतः शरीर लोचपूर्ण रहेगा, ज्यादा दिन तक युवा रहेगा। मगर युवा होने का करोगे क्या? कुछ न कुछ गलत ही तो करोगे। ठीक करने की दृष्टि कहां से आ जाएगी? क्या तुम सोचते हो योगासन करने से सम्यक दृष्टि का जन्म होगा? वह संभव नहीं है।
और भारत योगासन के नाम पर खूब भटक गया है, खूब भरमाया हुआ है। कोई नाक
पर एक अंगुली लगाए हुए सांसें ले रहा है, कोई सिर के बल खड़ा हुआ है। कोई यह बंध साध रहा है, कोई वह बंध साध रहा है, और जिंदगी उनकी इसी में बीत रही है-- बंधों के साधने में। और मुक्ति कब साधोगे? ये बंध ही बंध साधते रहोगे! यह देह तो चली जाएगी। फिर चाहे योगासन से पुष्ट हुई हो, चाहे दंड-बैठक से पुष्ट हुई हो और चाहे पाश्चात्य ढंग के व्यायाम से पुष्ट हुई हो, यह देह तो चली जाएगी। इस देह के साथ सब योगासन भी चला जाएगा। कुछ साधो जो मौत के पार तुम्हारे साथ चलेगा!
तो रवींद्रनाथ यह बात तो ठीक कहते हैं कि इंद्रियों के द्वार को रुद्ध करने वाला जो योगासन है वह मेरा मार्ग नहीं है। मगर क्या वह मार्ग है? इतना साहस नहीं जुटा पाते कहने का। वह दुर्दम्य साहस नहीं है। इसलिए रवींद्रनाथ को भारत में कोई अप्रतिष्ठा नहीं मिली, सम्मान ही सम्मान मिला। मैं भी यही कह रहा हूं, लेकिन एक शर्त है मेरी कि जो गलत है उसको गलत भी कह रहा हूं। मेरे सामने यह बात बहुत साफ है कि जब तक गलत को गलत न कहा जाए, सही को बताया ही नहीं जा सकता।
मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं क्यों किसी की आलोचना करता हूं?
मुझे कुछ लेना-देना नहीं। मुझे कुछ रस नहीं किसी की आलोचना में। लेकिन जब तक गलत को गलत न कहा जाए, सही को उभार कर बताया नहीं जा सकता। असार को असार न कहा जाए, सार को पहचाना नहीं जा सकता। रात के अंधेरे में ही तारे उभर कर प्रकट होते हैं। काले तख्तों पर ही सफेद खड़िया से लिखते हैं, तब

दिखाई पड़ता है। तो पहले मैं गलत को कहना चाहता हूं, ताकि काला तख्ता बने।
तब फिर सफेद खड़िया से उस पर अक्षर उभारे जा सकते हैं।
लेकिन रवींद्रनाथ ने गलत को कभी गलत नहीं कहा। कह भी नहीं सकते थे।
उसका कोई अनुभव भी नहीं था। यह कवि की उड़ान है। कभी-कभी तीर लग जाता है। लग गया तो तीर, नहीं लगा तो तुक्का। सौ कविताओं में एक कविता कभी-कभी सत्य के करीब पहुंच जाती है।
कहते हैं, "दृश्य, गंध और गान में जो कुछ भी आनंद है उसी के भीतर तुम्हारा आनंद रहेगा।"
मगर उसके पार भी बहुत है!
इंद्रियेर द्वार
रूद्ध करि योगासन, से नहे आमार।
ये किछु आनंद आछे दृश्ये गंधे गाने
तोमार आनंद रबे तार मांझखाने।
माना कि दृश्य में भी आनंद है और गंध में भी और गान में भी, मगर ये कुछ
भी नहीं हैं उस आनंद के मुकाबले जो अदृश्य में है। जो गंध शून्य में है, यह कुछ भी नहीं है उसके आगे। जहां सब शब्द खो जाते हैं, जहां गीत विलीन हो जाते हैं, जहां वीणा की झंकार भी नहीं उठती, जहां सन्नाटा पूर्ण है, जहां शून्य समग्र है--उसके सामने ये सब गंध, ये सब गीत, ये सब नृत्य, सब फीके पड़ जाते हैं। और जिसने उसे जाना है उसके गीत में भी वह होता है। जिसने उसे जाना है, गीत की तो क्या कहो, उसके उठने-बैठने में भी वह होता है। जिसने उसे जाना है, उसकी पलक भी झपकती है तो वह होता है; उसकी आंख में वह होता है। वह जादू उसे घेरे ही रहता है।
रवींद्रनाथ को उसका तो पता नहीं। अदृश्य को तो देखा नहीं तो दृश्य में क्या मजा मिलेगा? जब तक फूल में तुम्हें फूल की आत्मा न दिखाई पड़ जाए, तब तक तुम ज्यादा से ज्यादा फूल के रंगों की चर्चा कर सकते हो, गंधों की चर्चा कर सकते हो। लेकिन परमात्मा भी फूल में मौजूद है, भगवत्ता भी मौजूद है, उसकी चर्चा नहीं कर सकते। हां, यूं कल्पना चाहो तो कर सकते हो। लेकिन कल्पना तो आरोपण है, प्रक्षेपण है।
"मोह मेरी मुक्ति के रूप में जल उठेगा।"
मगर तुम्हारी मुक्ति आएगी कहां से? वह अग्नि कहां से लाओगे जिसमें मोह भभक उठे और जल उठे? उस अग्नि की तो कमी ही रह गई। इसलिए रवींद्रनाथ मरते समय भी आनंदित नहीं मरे, दुखी थे, विषादपूर्ण थे। विषाद था यही कि जो मुझे गाना था, गा नहीं पाया। जो मुझे कहना था, कह नहीं पाया। यह बात तो वही है, अगर सच पूछो तो कुछ भेद नहीं।
एंड्रू कारनेगी मरते वक्त दुखी था, क्योंकि जितना कमाना चाहता था, नहीं कमा पाया। दस अरब रुपया छोड़ कर मरा, लेकिन उसके इरादे सौ अरब रुपए कमाने के थे। नब्बे अरब की कमी भारी कमी है, कोई थोड़ी कमी नहीं। हार ही हो गई समझो--दस अरब। अरे, दस कौड़ी के बराबर हो गए। कहां नब्बे अरब और कहां दस अरब! अभी नौ गुना और होना था। एंड्रू कारनेगी पर तुम हंसोगे, क्योंकि वह कहता है कि मैं पूरा जो कमाना चाहता था, नहीं कमा पाया।
रवींद्रनाथ ने छह हजार गीत लिखे, दुनिया में किसी कवि ने इतने गीत नहीं लिखे। पश्चिम में शैली को महाकवि कहा जाता है, क्योंकि उसने दो हजार गीत लिखे। पश्चिम में उससे ज्यादा गीत किसी ने भी नहीं लिखे। रवींद्रनाथ ने उसको तीन दफे पछाड़ दिया, छह हजार गीत लिखे। और शैली के दो हजार गीत सभी संगीत में छंदबद्ध नहीं हो सकते। रवींद्रनाथ के छह हजार गीत ही संगीत के मात्रा-छंद के अनुकूल हैं, वे सब संगीत में बंध सकते हैं। इसलिए रवींद्र-संगीत एक अलग ही विधा हो गई। उनके गीत सब संगीत में बंध सकते हैं। तो बंगाल में रवींद्र-संगीत एक अलग आयाम ही बन गया।
लेकिन रवींद्रनाथ छह हजार गीत, अदभुत गीत लिख कर भी मरते तो विषाद में
ही हैं। वह विषाद एंड्रू कारनेगी से बहुत भिन्न नहीं है, वही का वही है। हालांकि रवींद्रनाथ की बात पर तुम न हंसोगे। एंड्रू कारनेगी की बात तुम्हारी समझ में आती है कि क्या करोगे, सौ अरब रुपए भी होते तो क्या करते, दस अरब में क्या कर लिया?

एंड्रू कारनेगी चपरासी की तरह जीया और चपरासी की तरह मरा। सच तो यह है
कि चपरासी भी दफ्तर में बाद में पहुंचते थे, एंड्रू कारनेगी उनके एक घंटे पहले पहुंच जाता था। एंड्रू कारनेगी के दफ्तर का यह हिसाब था कि दफ्तर खुले दस बजे तो एंड्रू कारनेगी नौ बजे। दस बजे चपरासी पहुंचें, ग्यारह बजे क्लर्क पहुंचें, बारह बजे मैनेजर पहुंचें, एक बजे डायरेक्टर पहुंचें; तीन बजे डायरेक्टर नदारद, चार बजे मैनेजर नदारद, पांच बजे क्लर्क नदारद, फिर चपरासी नदारद--और एंड्रू कारनेगी सात बजे तक बैठा है। यह तो चपरासी से भी बदतर हालत हो गई। और जब दस अरब में यह हालत हो गई तो सौ अरब में क्या हालत होती, जरा सोचो! फिर तो रात को भी घर लौटने वगैरह का सवाल नहीं था। यह कहा जाता है एंड्रू कारनेगी को फुर्सत नहीं मिलती थी पत्नी से बात करने की, बच्चों से बात करने की। फुर्सत कहां से मिले?
रवींद्रनाथ पर तुम न हंसोगे, लेकिन बात वही की वही है। वही अहंकार की दौड़। सूक्ष्म हो गई, बहुत बारीक हो गई, बड़ी नाजुक हो गई, मगर विषाद है मन में कि मैंने जो गीत गाए, पर्याप्त नहीं, और गाने थे। जो गाना था, अभी गा नहीं पाया। कहते हुए मरे कि अभी तो मैं साज ही बिठा पाया था, अभी गीत शुरू ही कहां हुआ था, और तूने मुझे उठा लिया!
आनंद से कैसे जीओगे? तुम्हारा मोह कैसे मुक्ति के रूप में जल उठेगा?
यह मोह तो अभी भी बना है! गीत से बंधा हुआ है मोह--और-और गीत, और-और गीत! कहानियां लिखीं, नाटक लिखे, उपन्यास लिखे--और-और! और की दौड़ संसार है। वही मोह है। कहते तो हो कि मेरा मोह मेरी मुक्ति के रूप में जल उठेगा, मगर ध्यान की अग्नि हो तो जरूर मोह जल उठता है। मोह छोड़ना नहीं पड़ता, यूं जल उठता है जैसे मंदिर में धूप जलती है। सुगंधित हो उठता है।
कहते हैं, "मेरा प्रेम मेरी भक्ति के रूप में फला हुआ रहेगा।"
बातें तो प्यारी, बस बातें ही लेकिन। भीतर कुछ भी नहीं है। जिस प्रेम में रवींद्रनाथ जीए, वह वही प्रेम है--आसक्ति, मोह, ईर्ष्या, वैमनस्य--वही प्रेम। वही--थोड़ा सुसंस्कृत, थोड़ा निखरा हुआ, थोड़ा चमकता हुआ--मगर वही।
उसमें कुछ भेद नहीं है। भेद हो भी नहीं सकता। तुम पत्थर को कितना ही निखारो और कितना ही साफ करो, रहेगा तो पत्थर ही।
कंचन कंचन ही सदा, कांच कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच।।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
दूसरा प्रवचन

स्वयं का बोध मुक्ति है

पहला प्रश्नः ओशो,
आद्य शंकराचार्य की एक प्रश्नोत्तरी इस प्रकार है--
कस्याऽस्ति नाशे मनसो हि मोक्षः
क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
शल्यं परं किम निजमूर्खतेव
के के हयुपास्या गुरुदेववृद्धाः।।
किसके नाश में मोक्ष है? मन के नाश में ही। किसमें सर्वथा भय नहीं है? मोक्ष में। सबसे बड़ा कांटा कौन है? अपनी मूर्खता ही। कौन-कौन उपासना के योग्य हैं? गुरु, देवता और वृद्ध।
ओशो, इन प्रश्नों पर आप क्या कहते हैं?

अभयानंद, यह सूत्र प्यारा है--सोचने योग्य। ध्याने योग्य।
कस्याऽस्ति नाशे मनसो हि मोक्षः।
"किसके नाश में मोक्ष है? मन के नाश में ही।"
मन ही बंधन है। और बंधन भी ऐसा, जो केवल हमारी प्रतीति में है। नाश करने को वस्तुतः कुछ भी नहीं है, सिर्फ आंख खोल कर देखने की बात है और मन नष्ट हो जाता है। आंख बंद है तो मन है; आंख खुली कि मन गया।
यूं है जैसे सांझ के धुंधलके में राह पर पड़ी रस्सी को देख कर तुम सांप समझ बैठे; फिर लगे भागने; फिर घबड़ाए बहुत। फिर यूं भी हो सकता है कि फिसल जाए भागने में पैर, तोड़ लो हड्डी-पसली। यूं भी हो सकता है कि इतने घबड़ा जाओ कि हृदय का दौरा पड़ जाए। और वहां कुछ भी न था, बस रस्सी थी। सांप तुम्हारा प्रक्षेपण था। तुमने जरूर देख लिया था; तुम्हारी भ्रांति थी। तुमने रस्सी के ऊपर अपने भय को आच्छादित कर दिया था। सांप था नहीं, फिर भी तुम्हारी हड्डी तो टूट गई, जो थी। और तुम्हारा हृदय तो हानि को पहुंच गया, जो था।
जो नहीं है, उसके भी परिणाम हो सकते हैं। अंधेरा भी नहीं है, मगर उसके
भी परिणाम तो होते हैं। अंधेरे में चलोगे तो दीवारों से टकरा जाओगे; दरवाजे से निकलना आवश्यक तो नहीं; निकल जाओ, संयोग है। ज्यादा संभावना यही है कि दीवारों से टकराओगे। अंधेरे में चलोगे, फर्नीचर से टकरा कर गिर पड़ो, कुछ भी हो सकता है। और अंधेरा नहीं है। अंधेरे की कोई सत्ता नहीं है। अंधेरा केवल प्रकाश का अभाव है। इसीलिए तो दीए के जलाते ही अंधेरा नहीं पाया जाता है। और ऐसे ही बोध के जगते ही मन नहीं पाया जाता है। जैसे कोई ले आए रोशनी तो रस्सी मिलेगी, सांप नहीं। फिर क्या पूछोगे, सांप कहां गया? फिर तो प्रश्न भी व्यर्थ हो जाएगा। था ही नहीं, तो जाएगा कैसे?
इसलिए एक बात ख्याल रखनाः मन के नाश का ऐसा अर्थ मत ले लेना कि मन है
और उसका नाश करना है। क्योंकि जो है उसका तो नाश हो ही नहीं सकता। थोड़ी तुम्हें असुविधा होगी, जो मैं कह रहा हूं उसे समझने में। इसलिए ठीक-ठीक उसे दोहरा दूंः जो है उसका नाश नहीं है; और जो नहीं है, बस केवल उसका नाश है। एक छोटे-से रेत के कण को भी मिटा न सकोगे। विज्ञान की सारी सामर्थ्य भी, जो पूरी मनुष्य-जाति को नष्ट कर सकती है, जो इस तरह की सात सौ पृथ्वियों को जीवन से विहीन कर सकती है--आज इतने उदजन बम, एटम बम इकट्ठे हो गए हैं-- लेकिन विज्ञान भी एक छोटे-से रेत के कण को मिटा नहीं सकता। जो है, उसे मिटाने का कोई उपाय ही नहीं है। वह रहेगा। रूप बदल सकता है, आकृति बदल सकती है; रहेगा--नए रूपों में, नई आकृतियों में। और जो नहीं है, केवल वही मिटाया जा सकता है।
इसलिए मैं अपने संन्यासियों से कहता हूंः मैं तुमसे वही छीन लूंगा जो तुम्हारे पास नहीं है और तुम्हें वही दे दूंगा जो तुम्हारे पास है ही। न मुझे कुछ छीनना है; न मुझे कुछ देना है। जो है उसका तुम्हें होश आ जाए और जो नहीं है उसकी तुम्हारी भ्रांति टूट जाए।

मन आभास मात्र हैः रस्सी में देखा गया सांप। जरा-सी रोशनी ध्यान की--
और मन नहीं पाया जाता है।
शंकराचार्य का यह सूत्र ठीक हैः कस्याऽस्ति नाशे मनसो हि मोक्षः।
मोक्ष क्या है? किसमें मोक्ष है? कहां मोक्ष है? छोड़ दो धारणाएं कि कहीं दूर सात आसमानों के पार मोक्ष है। मोक्ष तुम्हारे भीतर है। मन की भ्रांति में उलझे हो, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता। सांप में अटक गए, इसलिए रस्सी दिखाई नहीं पड़ती। जैसे ही मन की भ्रांति से जगे--और मन सच में एक तंद्रा है, एक मूर्च्छा है--जैसे ही मन का ऊहापोह गया, मन के विचारों का तांता टूटा, ये मन के रास्ते पर दौड़ते हुए सपने, स्मृतियां, कल्पनाएं, वासनाएं, एष्णाएं, तृष्णाएं, ये ठहरीं, एक क्षण को भी ठहर जाएं तो तत्क्षण तुम्हें यह दिखाई पड़ जाएगा कि मैं कौन हूं। मन के ठहरते ही स्वयं का बोध है। और स्वयं का बोध ही मुक्ति है।
मोक्ष से फिर कहीं भूल न कर लेना। मोक्ष शब्द में ऐसा लगता है जैसे कुछ भौगोलिक है, कहीं। मैं पसंद करता हूं मुक्ति बजाय मोक्ष के। क्योंकि मुक्ति में आंतरिकता है। मोक्ष में हमने मुक्ति को बाह्य रूप दे दिया। जो भेद मैं भगवत्ता और भगवान में करता हूं, जो भेद मैं धर्म और धार्मिकता में करता हूं, वही भेद मैं मुक्ति और मोक्ष में करता हूं। मेरा जोर मुक्ति पर है, मोक्ष पर नहीं। मोक्ष में खतरा है। उस शब्द में ऐसा इशारा मालूम होता है--कहीं और, किसी और समय में, किसी और लोक में।
और अगर कहीं और है मोक्ष तो मन फिर मिटेगा नहीं। धन को छोड़ देगा, पद को छोड़ देगा, फिर मोक्ष की आकांक्षा से भर जाएगा। और आकांक्षाएं सब एक जैसी हैं। हर आकांक्षा मन को जिलाए रखने के लिए काफी है, मन को बनाए रखने के लिए काफी है। हर आकांक्षा मन का पोषण है। आकांक्षा मन की जड़ है। तुमने कुछ भी चाहा तो मन बना रहेगा। और तुमने चाहा ही नहीं, तुमने चाह को ही जाने दिया, कि मन गया। मन यानी चाह। मन यानी एष्णा, तृष्णा, महत्वाकांक्षा।
इसलिए ख्याल रहे, तुम्हारे साधु हैं, संत हैं, महात्मा हैं, अगर तुम उन्हें गौर से जांचोगे, परखोगे, तो पाओगे उनके जीवन में कोई क्रांति नहीं घटी है। हां, आकांक्षा के विषय बदल गए, लेकिन आकांक्षा पूर्ववत है। कणमात्र भी भेद नहीं पड़ा है। वे वहीं के वहीं खड़े हैं। धन चाहते थे, अब धर्म चाहते हैं। पद चाहते थे, अब परमात्मा चाहते हैं। संसार चाहते थे, अब कैवल्य चाहते हैं। और सारी आकांक्षाओं से अपने मन को सिकोड़ लिया और सारी आकांक्षाओं को एक ही आकांक्षा पर आरोपित कर दिया है।
ख्याल रहे, जब आकांक्षाएं बहुत बंटी होती हैं तो मन कमजोर होता है, क्योंकि विभाजित होता है। धन भी चाहिए, पद भी चाहिए, प्रतिष्ठा भी चाहिए, यह भी चाहिए, वह भी चाहिए, हजार चीजें चाहिए, तो मन बंटा होता है, कटा होता है, खंड-खंड होता है। खंड-खंड होता है तो उसकी शक्ति भी कम होती है। लेकिन जिसने अपनी सारी आकांक्षाओं को एक ही बिंदु पर केंद्रित कर दिया--मोक्ष चाहिए! पद की आकांक्षा को भी लगा दिया वहीं, धन की आकांक्षा को भी लगा दिया वहीं, प्रतिष्ठा की आकांक्षा को भी लगा दिया वहीं, सारे तीर एक ही दिशा में चलने लगे--उसका मन और भी मजबूत हो जाता है।
इसलिए मेरा अनुभव यह है कि सांसारिक लोगों के पास कमजोर मन होता है और तुम्हारे तथाकथित आध्यात्मिक लोगों के पास बहुत मजबूत मन होता है। उनके बंधन कम न हुए। तुम्हारे बंधन पतले धागों जैसे हैं; उनके बंधन मोटे रस्से हो गए, सब धागों से बुन कर बन गए, सब धागों ने एक ही रस्सा बना दिया। तुम्हारी जंजीरें क्षीण हैं, क्योंकि बहुत हैं। आसानी से तोड़ी जा सकती हैं। उनकी जंजीर को तोड़ना बहुत मुश्किल है। उनकी महाजंजीर हो गई है। सब जंजीरों को ढाल लिया उन्होंने एक जंजीर में।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः साधु मत बनना, महात्मा मत बनना, संत मत बनना। भागना मत संसार को छोड़ कर, क्योंकि अगर भागोगे संसार को छोड़ कर तो आगे कुछ लक्ष्य रखना पड़ेगा। भागोगे किसके लिए? भागना केवल नकारात्मक नहीं हो सकता। भागने में विधायकता होगी। सामने कोई गंतव्य चाहिए, तब कोई भाग सकता है। तुम जब भागते हो तो किसी चीज से नहीं भागते, किसी चीज के लिए भागते हो। और तुम जिस चीज के लिए भाग रहे हो संसार छोड़ कर,

वह और भी कठिन है, वह और भी मुश्किल है। मन मजबूत हो जाएगा। मन जितना था, उससे कहीं ज्यादा सबल हो जाएगा।
इसलिए तुम्हारे महात्माओं में जितना अहंकार होगा उतना सांसारिकों में नहीं होता। सांसारिक आदमी तो बेचारा कहता है, हम दीन-हीन, संसार के बंधनों में पड़े! महात्मा की अकड़ ही और! लात मार दी है धन पर, पद पर, प्रतिष्ठा पर! अरे, मोक्ष के लिए सब कुछ छोड़ दिया! मगर मोक्ष के लिए। तो यह मोक्ष अब आखिरी फांसी बनी।
ऐसे मन नहीं जाता। यह मन के जाने का ढंग नहीं है। मन के जाने का तो एक
ही ढंग है और वह हैः जाग कर मन के स्वरूप को समझ लेना। मन का स्वरूप क्या है? मन का स्वरूप हैः और मिले, और मिले, और मिले! मन का स्वरूप यही हैः जितना है काफी नहीं, जो है काफी नहीं, जहां हूं वह ठीक जगह नहीं, जैसा हूं वह ठीक होना नहीं। कहीं और होना है, कुछ और होना है, कुछ और पाना है--बस यही मन का स्वरूप है। और की दौड़ मन का दूसरा नाम। जिस क्षण तुमने जाना कि जहां हूं, जैसा हूं, जो हूं, मस्त हूं, आनंदित हूं, न कहीं जाना है, न कुछ होना है, न कुछ पाना है--उसी बोध के क्षण में वह ज्योति तुम्हारे भीतर जगमगा उठती है जिसमें मन नहीं पाया जाता; वह दीया जल उठता है जिसमें मन का अंधेरा खो जाता है।
लेकिन शंकराचार्य का सूत्र सुंदर हैः "किसके नाश में मोक्ष है? मन के नाश में ही।"
पर सावधान तुम्हें कर देना चाहता हूं कि मोक्ष पाने के लिए मन का नाश करना मत सोचने लगना, नहीं तो चूक गए; बात आई-आई हाथ में और निकल गई। शंकराचार्य यह नहीं कह रहे हैं कि मन का नाश करो तो मोक्ष पा लोगे। वे यह कह रहे हैं कि मन का नाश जहां हो जाता है वहां जो बचता है वही मोक्ष है। मोक्ष तुम्हारे भीतर है, मन के पर्दे उसके ऊपर पड़े हैं। मन के पर्दे हटा दिए, मोक्ष प्रकट हो गया। मोक्ष तुम्हारी नग्नता है, तुम्हारा स्वरूप है, तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारी निजता है। और मन? मन है तुम्हारा भटकाव; अपने से च्युत हो जाना, अपने केंद्र से कहीं और चले जाना। मन है समय--अतीत, भविष्य। और मोक्ष है वर्तमान--अभी और यहीं। इस क्षण के पार देखना ही नहीं; न पीछे, न आगे। इस क्षण में ही ठहर जाओ और तुम्हें मोक्ष मिल गया, क्योंकि इस क्षण में ठहर जाना ही मोक्ष है।
और उन्होंने कहाः क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
"किसमें सर्वथा भय नहीं है?" अभयानंद ने फिर अनुवाद किया है, "मोक्ष में।" मैं कहना चाहूंगा, शंकराचार्य का शब्द बिल्कुल साफ है। क्यों उसका तुमने मोक्ष में अनुवाद कर दिया? हमारा मन कितनी जल्दी गलतियों में उतर जाता है!
क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
विमुक्तौ! उसको तुम कैसे मोक्ष कह रहे हो? विमुक्तता में! विमुक्ति में! तुम्हारे विमुक्त होने में ही भय का नाश है। तुमने उसको भी तत्क्षण मोक्ष कर दिया। हम भीतर की बात को बड़ी जल्दी बाहर की बना देते हैं। हम भीतर टिकने ही नहीं देते, जल्दी बाहर की बना देते हैं। क्योंकि बाहर बनाते से ही फिर हमारे लिए गंतव्य मिल जाता है, लक्ष्य मिल जाता है--अब पाकर रहेंगे। अहंकार के लिए नए आयोजन हो जाते हैं--तो अब विमुक्ति पानी है, मोक्ष पाना है। मगर बाहर का कुछ कर लिया। बात सदा भीतर की है; तुम सुनते हो और तुम्हारे सुनने में ही तत्क्षण भूल हो जाती है, रूपांतरण हो जाता है। अभयानंद ने अनुवाद किया है, "किसमें सर्वथा भय नहीं है? मोक्ष में।"
इसका मतलब हुआ कि जब मोक्ष पहुंचेंगे तब भय मिटेगा।
कल ही मुझे पत्र मिला है अमरीका से। हरे कृष्ण आंदोलन के प्रधान ने धमकी दी है--धार्मिक धमकी है, जैसा कि धार्मिक लोग सदा से देते रहे, कुछ नई नहीं--धमकी दी है कि अगर आपने हरे कृष्ण आंदोलन के खिलाफ कुछ भी कहा तो आप गोलोक में कभी नहीं पहुंच सकेंगे। और आपको सातवें नर्क में पड़ना पड़ेगा। गोलोक जाना किसको है? कोई सांड हो तो गोलोक जाना चाहे। गोलोक किसको जाना है? अजीब लोग हैं! पहले पूछ भी तो लेना चाहिए कि मुझे गोलोक जाना भी है या नहीं। क्या-क्या लोक बना रखे हैं। महात्मा गांधी बकरी-लोक में गए होंगे, क्योंकि वे बकरी का ही दूध पीते रहे जिंदगी भर; गोलोक में तो उनको

कौन घुसने देगा! और भैंस का दूध सम्हल कर पीना! मगर गोलोक में तुम करोगे क्या और गोलोक में तुम होओगे क्या?
इससे मैं चौंका बहुत। चौंका इसलिए कि बेचारे भक्ति वेदांत प्रभुपाद
चल बसे, गोलोक में सांड हो गए होंगे।
एक आदमी मरा। उसकी पत्नी एक ज्ञानी के पास गई, जिसके संबंध में यह खबर
थी कि वह प्रेतात्माओं से संबंध जोड़ लेता है। उसकी पत्नी ने कहा, बस एक बार मुझे मेरे पति से बात करवा दो। इतना मुझे भरोसा आ जाए कि वे ठीक जगह पहुंच गए, तो मेरा दुख हलका हो जाए। उस प्रेतात्मविद ने जंतर-मंतर पढ़े, कुछ धूप-दीप जलाए, लोभान चढ़ाया, हिला-डुला, कुछ अल्ल-बल्ल बका, आंखें ऊपर चढ़ाईं--और फिर एकदम आवाज बदल कर बोला कि मैं आ गया। पत्नी ने पूछा कि आप कैसे हैं? उसने कहा, बहुत मजे में हूं, बहुत आनंद में हूं। चारों तरफ हरियाली ही हरियाली है, घास ही घास उगा है, फूल खिल रहे हैं, गउएं चर रही हैं।
तो पत्नी ने कहा, अरे! यह घास और गउएं, इनकी बात पीछे करना, पहले स्वर्ग
के संबंध में और कुछ तो बताओ।
उसने कहा, अरे यह पास में ही जो गाय खड़ी है, ऐसी सुंदर, हेमामालिनी को मात दे रही है। पत्नी बोली कि तुम भ्रष्ट तो नहीं हो गए, तुम्हारा दिमाग कैसा हो गया? अरे स्वर्ग में पहुंच कर और कहां की बातें कर रहे हो!
पति ने कहा, कौन कहता है कि मैं स्वर्ग में आया? अरे मैं यहीं पूना में
एक सांड हो गया हूं। और क्या प्यारी गऊमाता खड़ी है! लार टपकी जा रही है मेरी! और तू कहां की स्वर्ग की बातें कर रही है! स्वर्ग जाए भाड़ में, मैं चला गऊमाता के पीछे।
गोलोक में जाना किसको है? गोलोक छोड़ कर और कहीं भी मैं जाने को तैयार हूं। गोलोक में करना क्या है? सातवें नर्क में भेजने की मुझे धमकी दी है। मुझे कोई अड़चन नहीं है। सातवां हो कि चौदहवां हो, कोई भी नर्क हो, मैं जाने को राजी हूं। क्योंकि मैं जहां हूं, जैसा हूं, वहीं आनंदित हूं, तो वहीं आनंदित होंगे। सातवें नर्क में क्या बिगड़ जाएगा? मेरा कुछ बिगड़ने वाला नहीं। वहीं संन्यासियों को इकट्ठा कर लेंगे, वहीं सत्संग जमेगा। और ऐसे भी जब मुझे सातवें नर्क जाना पड़ेगा तो मेरे संन्यासी भी वहीं जाएंगे, और कहां जाएंगे! वहीं फिर बसा लेंगे।
ये जो पार की कल्पनाएं हैं--गोलोक, बैकुंठ, स्वर्ग, मोक्ष--सब पागलपन है। न तो कहीं कोई स्वर्ग है, न कहीं कोई नर्क। जब तुम अपने में नहीं हो तो नर्क में हो और जब तुम अपने में हो तो स्वर्ग में हो। ये धमकियां किन्हीं और पागलों को देना। जो अपने में है, वह अपना स्वर्ग अपने साथ लिए चलता है। और जो अपने में नहीं है वह कहीं भी पहुंच जाए, नर्क में ही रहेगा; वह अपना नर्क अपने साथ लिए चलता है।
अभयानंद, शंकर ठीक कहते हैं, "किसमें सर्वथा भय नहीं है?" मोक्ष अनुवाद न करो। "विमुक्ति में।" और विमुक्ति का अर्थ हुआः मन से मुक्ति।
विमुक्ति का अर्थ हुआः समाधि, ध्यान की परम अवस्था।
शल्यं परं किम निजमूर्खतेव।
और सबसे बड़ा कांटा कौन है? सबसे बड़ा अवरोध क्या है? शल्य क्या है, रुकावट क्या है?
"अपनी मूढ़ता ही।"
और तो किसकी मूर्खता तुम्हें बाधा देगी! अपनी मूढ़ता ही। क्या है हमारी मूढ़ता? हमारी सबसे बड़ी मूढ़ता यही है कि हम अज्ञानी हैं और अपने को ज्ञानी समझे बैठे हैं। पता कुछ भी नहीं है और शास्त्रों को अपने चारों तरफ लपेट लिया है, शास्त्रों के वस्त्र बना लिए हैं, राम-नाम की चदरिया ओढ़े बैठे हैं। भीतर राम-रस बहता नहीं, भीतर कुछ राम का अनुभव नहीं, भीतर तो काम ही काम भरा हुआ है, लेकिन बाहर राम-नाम की चदरिया ओढ़े हुए हैं, वेद पढ़ रहे हैं, कुरान पढ़ रहे हैं, बाइबिल पढ़ रहे हैं, गुरुग्रंथ साहब पढ़ रहे हैं। लेकिन पढ़ने वाला कहां है? किस अवस्था में है? मूर्च्छित है या होश में है? एक बात ख्याल रहे, अगर मूर्च्छा में हो तो वेद भी पढ़ोगे तो क्या खाक पढ़ोगे! तुम्हारा वेद भी कोकशास्त्र हो जाएगा, और कुछ भी नहीं। तुम कुरान भी पढ़ोगे तो कचरा कर दोगे, तुम ही तो पढ़ोगे न! तुम ही तो अर्थ निकालोगे! कुरान में तो शब्द होंगे, अर्थ कौन देगा? उन शब्दों को भाव-भंगिमा कौन

देगा? उन शब्दों को रूप-रंग कौन देगा? तुम्हारे भीतर जाते-जाते वे तुम्हारे रंग में रंग जाएंगे; तुम जैसे ही मूर्च्छित हो जाएंगे।
लेकिन अगर तुम होश में हो, अगर तुम ध्यान में हो, अगर तुम शांत हो, मौन हो, तो फिर वेद को पढ़ने की जरूरत नहीं, क्योंकि तुम्हारे भीतर के वेदों का द्वार खुल गया। फिर कुरान दोहराने की जरूरत नहीं; तुम्हारे भीतर खुद ही आयतें उतरने लगीं। तुम्हारे भीतर वही होने लगा जो मोहम्मद के भीतर हुआ था। फिर क्या तुम उधार और बासे में अटकोगे!
मूढ़ता क्या है? मूढ़ता एक ही है। हम सब अज्ञानी पैदा होते हैं। अज्ञान में कोई खतरा नहीं है। अज्ञानी हम सभी पैदा होते हैं। खतरा तब शुरू होता है जब हम अज्ञान को उधार ज्ञान से ढांक लेते हैं। उधार ज्ञान से ढंका हुआ अज्ञान--यह मूर्खता है। मूर्खता का दूसरा नाम पांडित्य, तोतापन।
कितने तोते हैं! कोई इमाम है, कोई अयातुल्ला है, कोई पोप है। कितने पुरोहित, कितने पंडित, कितने शास्त्री! और ये सब दोहरा रहे हैं--यंत्रवत, मशीन की तरह। इन्हें कुछ भी पता नहीं कि ये क्या दोहरा रहे हैं। इन्हें यह भी पता नहीं कि ये क्यों दोहरा रहे हैं। इन्हें यह भी पता नहीं कि इनके भीतर ही शास्त्रों का शास्त्र पड़ा हुआ है, जिसे इन्होंने अभी खोला भी नहीं, जिस पर सदियों की गर्त जम गई है। इनके भीतर वह दर्पण है, जिसमें सत्य की छवि बने। मगर वह दर्पण ऐसा धूल में दब गया है कि इन्हें उसका कुछ पता ही नहीं। और धूल इनके ज्ञान की है। इनके शास्त्रों का कचरा ही इनके दर्पण को ढांक लिया है। आच्छादित हो गए हैं ये।
अज्ञान में खतरा नहीं है। अज्ञान तो निर्दोषता है। हर बच्चा अज्ञानी पैदा होता है। लेकिन उसका दर्पण साफ होता है। बच्चा मूर्ख नहीं होता। मूर्ख होने के लिए तो यूनिवर्सिटी जाना पड़ता है। मूर्ख होने के लिए तो कम से कम पीएचड़ी., डी.लिट. होना ही चाहिए। मूर्ख होने के लिए उपाधियां चाहिए। उपाधि शब्द बड़ा प्यारा है, कम से कम हमारी भाषा में तो बड़ा प्यारा है। उपाधि का एक अर्थ बीमारी भी होता है और उपाधि का एक अर्थ सम्मानित डिग्री भी होता है। बीमारियां ही हैं, लेकिन अपनी बीमारियों को लोग लगाए फिरते हैं। आदमी को बंदरों जैसी पूंछ नहीं है, तो बेचारा अपनी उपाधियों की पूंछ लगा लेता है; एम.ए., पीएचड़ी., डी.लिट, यह पूंछ बन जाती है उसकी। इससे उसकी पूछ होने लगती है। पूंछ बढ़ जाती है तो पूछ होने लगती है। जितनी लंबी पूंछ... देखा न हनुमान जी अपनी पूंछ को बड़ा करते गए, बड़ा करते गए, मतलब यह कि वे होते गए पंडित, होते गए पंडित। अपनी पूंछ का ही उन्होंने सिंहासन बना लिया, उस पर बैठ गए। सभी यही कर रहे हैंः पूंछ को बड़ी करते जा रहे हैं। मूढ़ता, तुम्हारा तथाकथित जो शास्त्रीय ज्ञान है, उसका ही नाम है। इससे तुम्हारा अज्ञान तो मिटता नहीं, सिर्फ अज्ञान ढंक जाता है। काश तुम अपने अज्ञान को पहचान लो तो मिटाना बहुत आसान है। मगर ढांक लो तो फिर तो पहचानना ही मुश्किल हो गया। जैसे किसी को घाव हो जाए, वह उसको ढांक ले, गुलाब का फूल उसके ऊपर चिपका ले। फिर तो घाव का इलाज कौन करेगा? भीतर मवाद इकट्ठी होती रहेगी, ऊपर फूल सुगंध देता रहेगा। बस ऐसी ही अवस्था है। शल्यं परं किम निजमूर्खतेव।
एक ही शल्य है। एक ही कांटा है कि तुमने अपने अज्ञान को ढांक लिया। उघाड़ो। अज्ञान को पहचानो। अज्ञान को पहचानने से ही ज्ञान की वर्षा होनी शुरू होती है। जिसने अज्ञान को पहचाना, उस पहचानने में ही वह ज्ञानी हो गया। जिसने अपने अज्ञान को गौर से देखा, उस गौर से देखने में ही वह अज्ञान से अलग हो गया। देखने वाला हमेशा दृश्य से अलग हो जाता है, दृश्य से मुक्त हो जाता है।
और तीसरी बात शंकराचार्य ने कहीः के के हयुपास्या गुरुदेववृद्धाः। "कौन-कौन उपासना के योग्य हैं? गुरु, देवता और वृद्ध।"
अभयानंद, शंकराचार्य का वचन तो बहुत प्यारा है, मगर उसके जो अर्थ लोगों ने किए हैं, बड़े ही नासमझी से भरे हुए हैं। गुरु कौन? जो ज्ञान दे। और ज्ञान दिया नहीं जा सकता। सत्य दिया नहीं जा सकता। मगर लोगों का अर्थ यही है कि गुरु वह जो तुम्हें कुछ सिखाए--वेद सिखाए, कुरान सिखाए, बाइबिल सिखाए, सिद्धांत सिखाए--वही गुरु। जो तुम्हें सिखावन दे, वह गुरु। और देवता कौन? इंद्र और वे सारे लोग जो खूब पुण्य अर्जन करके--धर्मशालाएं बना

कर, प्याऊएं खुलवा कर, मंदिर खड़े करवा कर--स्वर्ग पहुंच गए हैं, वे सब देवता। यहां उन्होंने धर्मशाला खुलवाई, अब वहां गुलछर्रे कर रहे हैं। अरे धर्मशाला खुलवाओगे तो गुलछर्रे तो होने ही वाले हैं फिर। नहीं तो कोई धर्मशाला ही किस लिए खुलवाए! यहां झाड़ लगवाए, वहां कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। कल्पवृक्ष के नीचे क्या बैठे हैं, मजा कर रहे हैं। जो चाहिए, यहां चाहा और वहां चीज मौजूद हुई। दुनिया में तो ऐसा हैः चाहो आज, वर्षों मेहनत करो, घुटो-पिटो, भारी भीड़-भड़क्का है, सौ-सौ जूते खाओ तब कहीं तमाशा देख पाओ! पहले खुद तमाशा बनो। और जब तक तमाशा देखने की हालत आए, तब तक तुम्हारी हालत देखने योग्य न रह जाए। लेकिन कल्पवृक्ष के नीचे तत्क्षण घटना घटती है। तो देवता कौन हैं? जैसे जुगलकिशोर बिड़ला। कितने बिड़ला मंदिर बनवाए!
वे देवता हो गए। कहते हैं उनका स्वर्ग के द्वार पर स्वागत किया गया, खूब शहनाई बजी, खूब देवी-देवताओं ने घंटाल पीटे, खूब भजन-कीर्तन हुआ। थोड़े तो जुगलकिशोर बिड़ला भी हैरान हुए। मेरे परिचित थे। परिचित थे सो उनके संबंध में सच्ची-सच्ची बात ही कहे देता हूं। थोड़ा संकोच भी हुआ; सोचा तो था कि स्वर्ग मिलेगा, मगर ऐसा स्वागत-समारंभ भी होगा, रेड कार्पेट वाला स्वागत, एकदम लाल मखमली दरी बिछा कर स्वर्ग के द्वार पर, फूलों की मालाएं--फूल जो कभी कुम्हलाते नहीं; अप्सराएं, उर्वशी, मेनका फूलों के हार लिए। जुगलकिशोर जरा चौंके। मंदिर तो उन्होंने बनवाए थे; स्वर्ग जाएंगे, यह भी आश्वासन था। मुझसे पूछा भी था उन्होंने कि मैंने इतने मंदिर बनवाए, इतना पुण्य किया, इतना दान किया, इतने ट्रस्ट, इस सबका क्या लाभ होगा? मन में कहीं संकोच तो रहा ही होगा, तभी आदमी पूछता है। कहीं भय भी रहा होगा कि कहीं यूं ही तो हाथ से सब पैसा बेकार नहीं जा रहा, कि इधर भी गए और उधर भी गए, न रहे घर के न घाट के, हो गए धोबी के गधे।
मैं तो हंस कर टाल गया था, क्योंकि सच्ची बात कहूं तो बूढ़े आदमी, मरने
के करीब, अब नाहक इनको क्या दुख देना! मरण-शय्या पर ही पड़े हैं। सच बात इनसे अब क्या कहो, बहुत देर हो गई। और झूठ तो मैं कह सकता नहीं, चाहे कोई मरण-शय्या पर ही पड़ा हो। सो मैं तो हंस कर टाल गया था। मगर जब उन्होंने देखा, तो पूछा उन्होंने द्वारपाल से, क्या इसी तरह सभी का स्वागत होता है? उन्होंने कहा कि नहीं, आपका स्वागत इसलिए हो रहा है कि आपने एंबेसेडर कार बनवाई। जुगलकिशोर और चौंके कि हद हो गई, मंदिर बनवाए, धर्मशालाएं खुलवाईं, यज्ञ-हवन करवाए, उनके कारण स्वर्ग नहीं मिल रहा है; एंबेसेडर कार बनवाई, उसके कारण स्वर्ग मिल रहा है! उन्होंने कहा, मैं कुछ समझा नहीं।
उन्होंने कहा, समझे नहीं, आप समझो। आपकी कार के कारण जितने लोगों को राम का स्मरण आया, और किसी के कारण नहीं आया। जो भीतर बैठते हैं, वे राम-राम कहते रहते हैं। जो उसको सड़क से निकलते देखते हैं, वे एकदम राम-राम कह कर बगल में हट जाते हैं। क्या गजब की चीज आपने बनवाई, जिसमें हर चीज बजती है, सिवाय हार्न को छोड़कर! मीलों तक एकदम राम-राम जप जाता है। जहां से निकल जाती है एंबेसेडर कार, दूर-दूर तक सन्नाटा हो जाता है। एकदम लोग ध्यानस्थ हो जाते हैं। उसी के कारण आपका स्वागत हो रहा है।
अब बैठे होंगे कल्पवृक्ष के नीचे, हालांकि करेंगे क्या कल्पवृक्ष के नीचे! यही सोच रहे होंगे कि अब यहां कैसे एंबेसेडर कार का कारखाना खोलें। खुल जाएगा एकदम कारखाना। यहां सोचा कि वहां खुला।
यहां वृक्ष लगवाओ, वहां कल्पवृक्ष मिलेंगे। शास्त्र कहते हैंः यहां
एक रुपया दान दो, वहां करोड़ गुना पाओ। देखा, लाटरी बहुत पुरानी चीज है! यह कोई नई बात नहीं। भारतीय सरकारों को नाहक गालियां मत दो कि ये लाटरी खिलाना सिखाती हैं लोगों को। ये तो शास्त्रीय हैं बातें। ये तो धार्मिक हैं। यह तो महात्मा पहले से ही खिलाते रहे। और कम से कम यहां लाटरी है तो यहीं पैसा मिलता है; वह लाटरी तो ऐसी है कि पता नहीं आगे मिले कि न मिले, यह रुपया भी गया। मगर पंडित-पुरोहित धंधा ही अदृश्य का करते हैं; नगद रुपया लेते हैं और उधार आश्वासन देते हैं। वह मिलेगा मरने के बाद। चिट्ठियां लिख देते हैं। हुंडियां लिखी जाती हैं। हुंडी लिखी जाती है और मुर्दे के साथ रख दी जाती है कि दिखा देना, भंजा लेना।
तो देवता वे हैं जो पुण्य करके धर्मशालाएं वगैरह बना कर स्वर्ग में पहुंच गए हैं। यह तुम्हारी धारणा है। फिर स्वभावतः वहां भी वही राजनीति

चलेगी, क्योंकि एक पहुंच गया स्वर्ग में, इंद्र हो गया, तो वह दूसरे महात्मा को इंद्र नहीं होने देता। क्योंकि अब दूसरा महात्मा तैयारी कर रहा है, तो इंद्रासन डोलता रहता है। इंद्रासन डोलता ही रहता है, शास्त्रों में जब देखो तब ज्यादा काम यही होता है कि इंद्रासन डोल रहा है। कोई बेचारा ऋषि-मुनि... बस भेज दी अप्सराएं। और ऋषि-मुनि एकदम अप्सराओं के कारण भ्रष्ट हो जाते हैं, देर नहीं लगती।
सिर्फ मेरे संन्यासियों को कोई अप्सराएं भ्रष्ट नहीं कर सकतीं, क्योंकि वे अप्सराओं को पहले ही भ्रष्ट कर चुके हैं। अब क्या अप्सराएं उनको भ्रष्ट करेंगी! अगर मेरे संन्यासी के पास उर्वशी वगैरह आए, तो वह कहेगाः बाई, जा, आगे बढ़। किसी पुराने ढंग के ऋषि-मुनि को खोज। मेरे संन्यासी से तो इंद्र की छाती कंपती होगी कि अगर ये संन्यासी यहां आ गए तो इन पर कोई पुराने दांव-पेंच चलेंगे नहीं। पुराने दांव-पेंच चल जाते थे बेचारे ऋषि-मुनियों पर, भूखे बैठे हैं, दबाए बैठे हैं वासना को, पत्नियों को छोड़ आए हैं, तो वही-वही उबल रहा है भीतर। और यहीं आ गई इसी बीच उर्वशी, अब करें भी तो क्या करें! अब एकदम से भ्रष्ट न हों तो और क्या करें! तो योग-भ्रष्ट होते थे। देवताओं का धंधा यह कि दूसरों को भ्रष्ट करें। यह भी खूब देवता हुए।
ऐसा अर्थ मत करना, नहीं तो शंकराचार्य का पूरा पद व्यर्थ हो जाएगा। और वृद्ध से ऐसा अर्थ मत करना कि जिनकी उम्र ज्यादा है। वृद्ध से उम्र का कोई लेना-देना नहीं। नहीं तो बूढ़े गधे बहुत हैं। एक से एक पहुंचे हुए गधे हैं। उम्र ही उनकी बस एकमात्र काफी प्रमाण है कि वे जो कहते हैं सो ठीक कहते हैं।
उम्र से कुछ भी नहीं होता। अनुभव ही प्रौढ़ता लाता है। और अगर उम्र से
ही शंकराचार्य का मतलब हो, तो खुद शंकराचार्य को कोई सम्मान नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वे तो तैंतीस साल में चल ही बसे। बूढ़े तो हुए ही नहीं, तैंतीस साल में ही तो खातमा हो गया। तो उनका अर्थ वृद्ध से उम्र नहीं है, प्रौढ़ता है, अनुभव की परिपक्वता है।
और उपासना से भी अर्थ तुम पूजा का मत लेना, नहीं तो सब खराब कर दोगे। मेरा अर्थ समझने की कोशिश करो।
"कौन-कौन उपासना के योग्य हैं?"
उपासना शब्द बहुत सीधा है। वे कौन-कौन हैं, जिनके पास बैठने के योग्य हो। उपासना का अर्थ होता हैः पास बैठना, उप-आसन। जैसे तुम मेरे पास बैठे हो, यह उपासना है। पास किसके बैठा जा सकता है? पूजा का कोई सवाल नहीं है। पूजा तो मूढ़ करते हैं, लोभी करते हैं, किसी लोभ के कारण करते हैं।
उपासना का अर्थ है सत्संग। सत्संग के कौन योग्य है? किसके पास बैठें?
वह कौन है जिसके पास बैठने से क्रांति हो जाएगी? जले हुए दीए के पास अगर बुझा हुआ दीया बिठा सको, तो एक निकटता का क्षण है, एक फासला है, जिस फासले की सीमा को पार करते ही बुझा दीया भी जला हुआ दीया हो जाता है।
तुमने हजारों बार जले दीए से बुझे दीए जलाए हैं, हर दीपावली को जलाते हो। वही प्रक्रिया उपासना की है। किसी जले हुए दीए के पास बैठो, और पास से पास आते जाओ। ऐसे पास आ जाओ कि तुम्हारा बुझा दीया भी जल उठे। अर्थ है इसका सत्संग।

उनको देखा है... ।
उनको इक बार फिर से देखा है।
यूं तो देखा है पहले भी उन्हें, आज जानो-जिगर से देखा है।
खुद को देखा है उनकी आंखों से, उनको उनकी नजर से देखा है।
जहां खो जाते हैं राहो-मंजिल, उनको उस रहगुजर से देखा है।
इधर से देखी है सीढ़ियों पर धूप चांदनी को उधर से देखा है।
उनमें देखा है इक शब्दों का सनम, एक चुप्पी को मुखर देखा है।
एक खुशबू जो इस जहां की नहीं, उनका गुल उस खुशबू से तर देखा है।
सम्हाले चलते हैं वो इक छलकता सागर, ये उनके पांवों-सर से देखा है।
आंखों से पी है उनके रूप की मय, और शायद अधर से देखा है।
आंखें ये जब लगीं होने खाली, तब उन्हें आंख भर के देखा है।

उनको देखा था शहर में इक दिन अब उन्हें उनके घर से देखा है।
चांद को देखा है जमीं से बहुत जमीं को चांद पर से देखा है।
हसीं है वादियों का अंधेरा भी, रोशनी के शिखर से देखा है।
डुबोने वाले हैं अक्सर साहिल ही, ये नजारा लहर से देखा है।
कितने नाजुक हैं हकीकतों के महल, ख्वाब के कांचघर से देखा है।
यूं तो देखा है घड़ी भर को उन्हें, पर लगे उम्र भर से देखा है।
लंबी पहचान भी है कुछ यूं ताजी, ज्यूं प्यार की पहली नजर से देखा है।
जले हैं उस तरफ चिरागों पे चिराग, उनका जलवा जिधर से देखा है।
इश्क में बुझके भी जलने की अदा, इन पतंगों के पर से देखा है।
लफ्जों के दायरे हैं कितने छोटे, ये लफ्जों से गुजर के देखा है।
हम भला देखते उन्हें कैसे? उ नके मेहरो-असर से देखा है।
उनको एक बार फिर से देखा है।
उपासना का अर्थ हैः किसी बुद्ध पुरुष के पास बैठना। और बैठने में ही पीना शुरू हो जाता है। बैठना भर आ जाए--मौन, शून्य, खाली, निर्विचार, निर्विकल्प--और पीना शुरू हो जाता है।

दीवानगी से काम लिया और पी गए
बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।
दैरो-हरम के नाम पे पीना हराम है
हमने तुम्हारा नाम लिया और पी गए।
दीवानगी से काम लिया और पी गए बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।
याद आ गईं किसी की निगाहें झुकी हुई नजरों से इक सलाम लिया और पी गए।
दीवानगी से काम लिया और पी गए
बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।
दुनिया की बेवफाई पे हंस कर उठाया जाम
दुनिया से इंतकाम लिया और पी गए।
दीवानगी से काम लिया और पी गए
बेइख्तियार जाम लिया और पी गए।
बैठो भर, उपासना भर हो जाए कि पीना भी हो जाता है। क्योंकि किसी भी सदगुरु का सत्संग मयकदा है। कोई भी सदगुरु शराब से भरी हुई सुराही है। तुम जाम बनो, तुम पास आओ कि शराब छलकने को राजी है, तुम्हारे जाम को भर देने को राजी है। दूर-दूर नहीं, पास-पास, करीब से करीब, निकट से निकट--उस सामीप्य का नाम है उपासना।
"कौन-कौन उपासना के योग्य हैं?"
के के हयुपास्या गुरुदेववृद्धाः।
गुरु उपासना के योग्य है। गुरु कौन है? वह नहीं जो तुम्हें सत्य दे देता है; वरन वह जो तुम्हें सत्य की प्यास दे देता है; जो तुम्हें तिश्नाकाम बना देता है; जो तुम्हें प्यास से भर देता है। सत्य तो नहीं दिया जा सकता।
सत्य के संबंध में एक बात, एक शाश्वत नियमः सत्य दिया नहीं जा सकता, मगर लिया जा सकता है। जब एक जलते हुए दीए से दूसरे बुझे हुए दीए में ज्योति जाती है, तो क्या तुम सोचते हो जलते हुए दीए का कुछ खो जाता है, कुछ कम हो जाता है?
नहीं, बिल्कुल नहीं। न कुछ खोता, न कुछ कम होता। इसलिए जले हुए दीए ने कुछ भी दिया नहीं, लेकिन बुझे हुए दीए ने कुछ लिया जरूर, बहुत कुछ लिया, सब कुछ लिया। कहां बुझा था, कहां जला हो गया! असल में दीया न कह कर लिया कहना चाहिए, क्योंकि दीया देता तो कुछ भी नहीं, जब भी लेता है तो लेता ही है। मगर हमारी भाषा अजीब तरह के लोग बनाते हैं। चलती हुई चीज को गाड़ी कहते हैं। गाड़ी कहना चाहिए गड़ी हुई चीज को। क्या गजब के लोग हैं, चलती को गाड़ी कहते हैं। कहते हैं--चलती का नाम गाड़ी! अरे तो फिर गाड़ी का नाम क्या? ऐसे ही लिए का नाम दीया रख छोड़ा है।

सदगुरु देता नहीं, लेकिन शिष्य लेता है। यही उपासना का जादू है। गुरु
का कुछ खोता नहीं, शिष्य को सब मिल जाता है। गुरु कौन है? जिसके पास बैठने से मिल जाए। जो दे नहीं और तुम्हें मिल जाए। जिसका कुछ घटे नहीं और तुम्हारा सब भर जाए। जो जितना भरा था उतना ही रहे।
ईशावास्य का प्रसिद्ध वचन हैः वह भी पूर्ण है, यह भी पूर्ण है। पूर्ण
से पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। पूर्ण में पूर्ण को जोड़ भी दें तो भी पूर्ण में कुछ बढ़ती नहीं होती, उतना ही पूर्ण। सदगुरु उस पूर्ण अवस्था को उपलब्ध है, जिससे तुम जितना चाहो ले लो, पीछे फिर भी पूर्ण शेष ही रहेगा।
और देवता कौन है? इस शब्द को भी हम समझने की कोशिश करें। देवता शब्द बनता है दिव से। दिव से ही बनता है दिव्य। दिव से ही बनता है दिवस। दिव से ही बनता है अंग्रेजी का डिवाइन। दिव से ही बनता है अंग्रेजी का डे। और तुम चकित होओगे, दिव से ही बनता है अंग्रेजी का डेविल भी। दिव का अर्थ होता हैः प्रकाश। जो प्रकाशवान है। इसलिए दिवस कहते हैं हम, डे कहते हैं। जो प्रकाशवान है वही दिव्य है। जो ज्योतिर्मय है।
उपनिषद के ऋषियों ने गाया हैः तमसो मा ज्योतिर्गमय। अंधेरे से मुझे ज्योति की तरफ ले चलो। मृत्योर्मा अमृतंगमय। मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो। असतो मा सदगमय। असत्य से मुझे सत्य की ओर ले चलो। मगर सारी बात आ गई है एक ही सूत्र में--तमसो मा ज्योतिर्गमय। मुझे अंधेरे से रोशनी की तरफ ले चलो।
जो भी ज्योतिर्मय है, वह देवता। सच में इसीलिए चांद को भी देवता कहा, सूरज को भी देवता कहा, अग्नि को भी देवता कहा, क्योंकि वे सब ज्योतिर्मय हैं। और इसीलिए गुरु को भी देवता कहा, क्योंकि वह भी ज्योतिर्मय है। और चांद से, सूरज से, अग्नि से ज्यादा ज्योतिर्मय है, क्योंकि चांद एक दिन बुझ जाएगा और सूरज भी एक दिन बुझ जाएगा। कभी नहीं था, कभी नहीं हो जाएगा। एक दिन उसका तेल चुक जाएगा। रोज चुक रहा है। चौबीस घंटे जलेगा तो तेल तो चुकता ही रहेगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि संभवतः चार हजार सालों में सूरज बुझ जाएगा। अगर उसके पहले आदमी ने पृथ्वी से किसी और पृथ्वी पर अपना आवास कर लिया तो ठीक, अन्यथा पृथ्वी बरबाद हो जाएगी, अपने आप बरबाद हो जाएगी। सूरज बुझा कि सब बुझ जाएगा, जीवन समाप्त हो जाएगा।
कुछ आश्चर्य की बात न होगी कि शायद इसीलिए ही एक गहन आकांक्षा आदमी के किसी अचेतन तल से उठी है कि चलो चांद पर चलें, कि चलो मंगल पर चलें, कि चलो दूर चांद-तारों की खोज करें। आज उसका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है, लेकिन अचेतन में कहीं यह प्रतीति भीतर मनुष्य के उठ रही है कि यह पृथ्वी के दिन अब थोड़े ही बचे हैं, इस पृथ्वी को छोड़ना ही पड़ेगा। साफ नहीं है यह सब, धुंधला-धुंधला है; लेकिन प्रकृति और जीवन बड़े धुंधलके में काम करता है। तुमने देखा सेमर में बीज लगते हैं। तो बीज के चारों तरफ सेमर की रुई लपटी रहती है। वह क्यों लपटी रहती है? सेमर बड़ा वृक्ष है। अगर बीज उसमें से गिरें, और वृक्ष के नीचे ही गिरेंगे, तो उनमें से कभी पौधे पैदा न हो सकेंगे। इसलिए सेमर का अचेतन चित्त अपने बीजों के पास रुई को पैदा करता है, ताकि बीज नीचे न गिर सकें। रुई लगी रहेगी तो हवा में उड़ जाएंगे। दूर-दूर निकल जाएंगे। नीचे गिरेंगे तो मर जाएंगे। दूर निकल जाना जरूरी है। कोई सेमर इसलिए अपने बीजों में रुई नहीं चिपकाता कि तुम्हारे तकिए बनें और गद्दे बनें। तुम्हारे तकिए-गद्दों से सेमर को क्या लेना! अपनी संतति को बचाना है, अपने बीजों को बचाना है। मगर सेमर को इसका कुछ पता नहीं, यह सब अचेतन है।
जिन लोगों ने लोगों को सूलियां लगते देखा, उन्होंने एक अजीब बात देखी
कि जब किसी व्यक्ति को सूली लगाई जाती है तो तत्क्षण उसकी जननेंद्रिय से वीर्य निकल भागता है--तत्क्षण, सूली लगते ही! वैज्ञानिक कहते हैं, इसका एक ही कारण है कि वे जो वीर्य-कण हैं, वे घबड़ा उठते हैं कि यह आदमी तो मरा, हम कोई राह खोज लें, कहीं जीवन मिल जाए, हम किसी ठीक गर्भ को पा लें! मिलता नहीं उन्हें कोई गर्भ, यह और बात है। मगर निकल भागते हैं, तेजी से निकल भागते हैं। इधर सूली लग रही है, उधर वीर्य-कण एकदम निकल भागते हैं।

शायद पृथ्वी के दिन लद गए हैं, यह प्रकृति के अचेतन में साफ है। सूरज
के ढलने के दिन करीब आ गए हैं। कोई चार अरब वर्ष से रोशनी दे रहा है, बहुत हो चुका। चुका जा रहा है। जल्दी ही एक दिन बुझ जाएगा। सूरज भी बुझ जाता है और चांद तो बेचारा बिल्कुल उधार है; वह तो सूरज की ही रोशनी लेकर दोहराता रहता है। उसका धंधा तो बिचवइए का है, दलाल का है। वह तो फली भाई जहां काम करते हैं शेयर मार्केट में, वहीं काम करता है। इधर से लेना, उधर देना। उसके पास अपनी कोई रोशनी नहीं है। सूरज की रोशनी ले लेता है और लौटा देता है। जैसे दर्पण पर तुम टार्च से रोशनी डालो तो दर्पण लौटा देता है, ऐसे ही चांद लौटाता है। सूरज बुझेगा तो चांद बुझ जाएगा।
लेकिन सदगुरु की रोशनी कभी नहीं बुझती, क्योंकि वह बिना ईंधन के जलती है। वह अकेली रोशनी है जो बिना ईंधन के जलती है। ईंधन ही नहीं है, इसलिए बुझने का कोई सवाल नहीं। इसलिए सदगुरु को ही देवता कहा है। वह सदगुरु का ही दूसरा नाम है, दिव्यता का ही दूसरा नाम है। और सदगुरु को ही वृद्ध कहा है, उसकी उम्र कुछ भी हो।
शंकराचार्य की उम्र तैंतीस ही वर्ष थी, लेकिन वे वृद्ध थे। जीसस की उम्र तैंतीस ही वर्ष थी, लेकिन वे वृद्ध थे। और मोरारजी देसाई की उम्र पचासी वर्ष है, वे वृद्ध नहीं हैं, अभी बाल-बुद्धि से भरे हुए हैं। बाल-बुद्धि मूढ़ता के लिए अच्छा शब्द है। उम्र इनकी तेरह-चौदह साल से ज्यादा नहीं मानी जा सकती मानसिक रूप से। इससे ज्यादा बुद्धिमत्ता नहीं है। इससे ज्यादा औसत मानसिक उम्र नहीं है।
क्या गजब की बातें करते हैं! ब्रेजनेव आया तो कह दिया कि मुझसे कहा था ब्रेजनेव ने कि पाकिस्तान को खतम करो, इसको सबक सिखाओ।
अब ये गांधीवादी, सत्यवादी। एक हो गया राजा हरिश्चंद्र सत्यवादी, एक हुए मोरारजी देसाई सत्यवादी। दो ही तो सत्यवादी हुए दुनिया में! क्योंकि राजा हरिश्चंद्र ने सपने में देखा था कि किसी ब्राह्मण को दान कर दिया; इन्होंने पता नहीं किस सपने में सुन लिया कि ब्रेजनेव ने इनसे कहा है। सपने में ही सुना होगा।
ब्रेजनेव भी चौंका, सारा रूस चौंका कि यह बात तो कभी कही नहीं गई। मगर
वे जिद पर रहे कि नहीं, कही है। और अब बदल गए, क्योंकि वे कोई प्रमाण तो दे नहीं पाए। अब कहने लगे, ब्रेजनेव ने नहीं कही थी, किसी और ने कही थी। उसका नाम मैं बताना नहीं चाहता।
अब नाम बताएं भी कैसे उसका! पहले तो यह कि ब्रेजनेव ने कही थी, यह कहा;
अब कहने लगे ब्रेजनेव ने नहीं कही थी, किसी और ने कही थी। अब उसका नाम नहीं बताना चाहते, क्योंकि नाम बताएंगे तो फिर सवाल उठेगा कि प्रमाण देना पड़ेगा।
ये बचकानी बातें हैं। अभी रोज कहते फिरते हैं वे जगह-जगह कि आसाम की समस्या का हल मेरे पास है। तो तुम जब प्रधानमंत्री थे तो भाड़ झोंकते रहे? आसाम की समस्या कोई नई समस्या है? तब तुम क्या करते रहे? तब तुम शिवांबुपान करते रहे और अब तुम्हारे पास आसाम की समस्या का हल है! लेकिन वह भी मैं तब तक नहीं बताऊंगा, जब तक सरकार मुझसे खुद न पूछे। तो ज्ञानी जैलसिंह ने उनको पत्र लिखा कि मैं पूछता हूं, आप आ जाइए। तो कल मैंने देखा उन्होंने कहा है कि पहले टिकट भेजिए।
किस तरह के लोग हैं! इन पर टिकट भी नहीं है दिल्ली जाने की! तो इनको मदर टेरेसा के किसी अनाथालय में भरती क्यों नहीं कर देते! दोनों का बड़ा सत्संग रहेगा। क्या बातें करते हैं लोग!
और मैं कहे देता हूं, इनको टिकट मैं देने को राजी हूं और जो हल निकलेगा
वह वही निकलेगा जो मैं तुम्हें कई दफा कह चुका हूं।
एक गांव में चोरी हो गई थी। कोई बता न सके हल; गांव में एक शेखचिल्ली था, उसने कहा मैं बता सकता हूं। पुलिस इंस्पेक्टर बहुत खुश हुआ। अधिकारियों ने कहा कि भई बता दो, हम यही तो परेशान हैं, कोई नहीं बता पा रहा।
गांव के लोगों ने कहा कि भाई, हो न हो यह शायद बता दे। क्योंकि एक दफा गांव में से हाथी निकला था, कोई न बता सका, क्योंकि रात को निकल गया और सुबह हमने उसके पैर रेत में बने देखे। किसी ने हाथी देखा नहीं था, सो इसी ने

बताया था। कोई न बता सका, इसने तत्क्षण कह दिया, अरे यह कुछ भी नहीं। पांव में चक्की बांध के हरिणा कूदा होय! कुछ भी नहीं, पैर में चक्की बांध कर कोई हरिण कूदा है। इसमें कुछ चिंता की बात नहीं। यह है तो बड़ा ज्ञानी। हम सब रह गए थे, कि इसने बता दिया। तो शायद बता दे।
तो पुलिस अधिकारी ने कहा कि भाई, बता दो। उसने कहा कि यहां नहीं बताऊंगा; एकांत, बिल्कुल अकेले में बताऊंगा। उसने कहा कि चलो भाई अकेले में... । ले चला गांव के बाहर। काफी दूर निकल गया। अधिकारी भी घबड़ाने लगा कि भई, यहां कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। आदमी क्या जानवर भी नहीं हैं। कोई गऊमाता भी नहीं चर रही है आस-पास, गोलोक भी पीछे छूट चुका। अब तो बता दे। उसने कहा, पास आओ, कान में कहूंगा। मजबूरी में उसने कान इसके पास कर दिया। कान में फुसफुसाया कि हो न हो, किसी चोर ने चोरी की है।
टिकट मोरारजी देसाई को मैं दे दूंगा। तुम जाकर ज्ञानी जैलसिंह के कान में इतना बता दो।
ये शेखचिल्लियों की बातें हैं। ये बचकानी बातें हैं। अब इनको टिकट चाहिए! टिकट मिल जाए तो शायद कुछ और, कि लेने के लिए ज्ञानी जैलसिंह को आना चाहिए।
उम्र हो जाने से ही कोई वृद्ध नहीं होता। केवल सदगुरु को ही वृद्ध कहा
जा सकता है। वृद्ध का अर्थ होता हैः जिसने जीवन को देख लिया, पहचान लिया कि व्यर्थ है; जिसने जीवन की असारता देख ली; जिसने जीवन की क्षणभंगुरता पहचान ली; जिसने जीवन में कुछ भी सार न पाया और जीवन में सार न देख कर जिसने मन की सारी दौड़ को समाप्त कर दिया। जो समाधिस्थ है वही सदगुरु है; वही देवता है, क्योंकि वही दिव्य है, वही ज्योतिर्मय है। और वही है उपासना के योग्य। शंकराचार्य का सूत्र यह प्यारा है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप कहते हैं कि जाग गए पुरुषों से गलती होती ही नहीं; वे जो भी करते हैं, वह सही ही होता है। और जो सोए हैं वे कुछ भी करें, गलत ही होता है। फिर दूसरी ओर आप जिन्हें जाग्रत पुरुष कहते हैं, उनकी गलतियों की ओर इशारा भी करते हैं।
ओशो, यह कैसा विरोधाभास है? कृपया समझाने की अनुकंपा करें!

इसी तरह का प्रश्न एक मित्र ने और पूछा है कि मैं शंकराचार्य के एक सूत्र का खंडन किया और मैं शंकराचार्य पर बोला हूं और मैंने शंकराचार्य को बुद्ध पुरुष कहा है। और अभी बोला है और शंकराचार्य के इस सूत्र की भूरि- भूरि प्रशंसा की। तो तुम्हारे मन में इस तरह के प्रश्न उठेंगे, कृष्णतीर्थ भारती। मगर मामला बहुत आसान है। कोई शंकराचार्य के सभी सूत्र उनके बुद्धत्व के बाद नहीं कहे गए हैं बहुत-से सूत्र उन्होंने बुद्धत्व के पहले कहे हैं। जो सूत्र उन्होंने बुद्धत्व के पहले कहे हैं, उनकी तो मैं ठीक से खबर लूंगा। और जो उन्होंने बुद्धत्व के बाद कहे हैं, उनकी जितनी प्रशंसा कर सकता हूं उतनी जरूर करूंगा।
फिर दोहराता हूं कि बुद्ध पुरुषों से कभी कोई गलती नहीं होती। मगर बुद्ध पुरुष कभी कोई होता है; उसके पहले तो उससे बहुत गलतियां हो जाती हैं। जैसे मैं कहता हूं कि जीसस सूली पर बुद्ध पुरुष हुए; उसके पहले उनसे बहुत गलतियां हो गईं। बुद्ध उनतीस वर्ष की उम्र में घर छोड़े, छह वर्ष बाद जब पैंतीस वर्ष के थे, तब बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। तो उन पैंतीस वर्षों में उन्होंने जो भी कहा हो, जो भी सुना हो, जो भी किया हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। महावीर को चालीस वर्ष की उम्र में बुद्धत्व मिला। उसके पहले उन्होंने जो भी कहा हो, जो भी किया हो, जो भी सुना हो, सब गलत है।
मैं तो जिस सूत्र का समर्थन कर रहा हूं, वह सूत्र निश्चित ही बुद्धत्व
की अवस्था में कहा गया होगा। और जिस सूत्र का मैं समर्थन नहीं कर रहा हूं, निश्चित ही वह बुद्ध होने के पहले कही गई बात होगी। इसमें कुछ विरोधाभास नहीं है। क्रांति घट जाती है व्यक्ति के भीतर। बुझा हुआ दीया एक ढंग से व्यवहार करता है, उसमें रोशनी नहीं होती। और जला हुआ दीया दूसरे ढंग से व्यवहार करता है, उसमें रोशनी होती है। वही दीया कभी जला था, कभी बुझा हो

जाता है। एक ही दीया, कभी बुझा है, कभी जला हो जाता है। बुद्धत्व तो फिर नहीं बुझता, सौभाग्य से, यह अच्छा है। एक बार जला सो जला।
तो बुद्धत्व के पहले जो भी वक्तव्य दिए गए होंगे उनका कोई मूल्य नहीं है। हां, कभी कोई वक्तव्य शायद सत्य के करीब आ गया हो, संयोगवशात, तो उसकी उतनी प्रशंसा मैं जरूर करूंगा। कल ही मैं रवींद्रनाथ के वचन की प्रशंसा कर रहा था; लेकिन उतनी ही प्रशंसा, उसी अनुपात में, जिस अनुपात में सत्य की उसमें छवि होगी, झलक होगी।
मैं किसी का अनुयायी नहीं हूं और न मेरी किसी के साथ दुश्मनी है। इसलिए मोहम्मद का जो वचन मुझे बुद्धत्व की कसौटी पर सही मालूम होगा, जरूर समर्थन करूंगा। और अगर कृष्ण का भी कोई वचन बुद्धत्व की कसौटी पर नहीं उतरेगा तो मैं उतना ही विरोध करूंगा जितना कि कर सकता हूं, उसमें फिर जरा भी रंचमात्र संकोच नहीं करूंगा।
इससे तुम्हें अड़चनें आती हैं। तुम्हारी अड़चनें भी मैं समझता हूं, क्योंकि तुम चाहते हो सीधी-सीधी बात। तुम चाहते हो या तो मैं कहूं कि बुद्ध हैं ये, तो सब ठीक; कूड़ा-कचरा कुछ भी हो, सब ठीक। और या कहूं कि ये बुद्ध नहीं हैं, तो फिर हीरे-जवाहरात हों, वे भी गलत।
इसी तरह का एक प्रश्न--

तीसरा प्रश्नः ओशो, वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण की कथा और उसके पात्र राम-सीता आदि के आप काफी विरोध में हैं और दूसरी तरफ आप बताते हैं कि वाल्मीकि मरा-मरा जप कर भी बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए। यह विरोधाभास कैसा? क्या एक बुद्ध पुरुष से ऐसी कथा की संभावना है जिसका दूसरा बुद्ध पुरुष विरोध करे?

ऋषिराज त्रिवेदी, पहले तो तुम जरा यही सोचो कि बाल्या भील, जो ठीक से राम-राम भी नहीं जप सकता था, वह रामायण की कथा लिख सकेगा? जो राम-राम जपते- जपते मरा-मरा जपने लगा, ऐसा व्यक्ति राम की कथा लिख सकेगा? इसकी कोई संभावना है? इसकी कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती। राम भी याद न रख सका पूरा- पूरा, केवल दो अक्षर, छोटे से छोटा शब्द, उसको भी भूल गया और मरा-मरा कहने लगा--वह व्यक्ति रामायण लिख सकेगा? पढ़ा-लिखा तो था नहीं। और अगर उसने रामायण लिखी होगी तो बेपढ़ा-लिखा आदमी, असंस्कृत आदमी जो लिखेगा, उस लिखने में उसके सारे असंस्कारों की छाप होगी; उसका सारा बेपढ़ा-लिखापन उसमें छाया डालेगा।
तो पहली तो बात यह है कि बाल्या भील इतना बेपढ़ा-लिखा आदमी है, हत्यारा है, कि उससे राम की कथा की संभावना नहीं है। राम की कथा किसी और ने लिखी होगी; हां, वाल्मीकि के नाम से जड़ दी होगी। यह भारत की पुरानी धारा है। यहां व्यास के नाम पर इतनी किताबें हैं कि एक व्यक्ति लिख ही नहीं सकता। और कोई किताब तीन हजार साल पुरानी है, कोई दो हजार साल पुरानी है, कोई हजार साल पुरानी, कोई पांच हजार साल पुरानी। तो व्यास लगता है मरे ही नहीं, वे यही गोरखधंधा करते रहे!
लेकिन व्यास केवल प्रतीक शब्द हो गया। जिसको भी अपनी चीज चलानी होती
वह व्यास के नाम से लिख देता। व्यास का नाम जुड़ जाता कि इज्जत मिल जाती उस चीज को। कचरा भी होता तो हीरा हो जाता। इसलिए न मालूम कितने लोगों ने व्यास के नाम से किताबें लिख कर चला दीं। कोई कापीराइट तो था नहीं। कोई कानून नहीं था, कोई अदालत नहीं थी, कोई छापेखाने नहीं थे। आदमी हाथ से लिख लेता था। तो तुम भी लिख सकते थे किताब उन दिनों और व्यास का नाम लिख देते। चल पड़ती किताब।
वाल्मीकि से संभावना कम है कि उन्होंने रामायण लिखी हो। राम भी न जप सके पूरा, क्या रामायण लिखेंगे! हां, किसी ब्राह्मण ने लिख दी होगी और वाल्मीकि के नाम का उपयोग कर लिया होगा। क्योंकि बाल्या भील मरा-मरा जप कर बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया था। शांत हो गया, मौन हो गया। उसकी कीर्ति फैल गई होगी। वह ज्योतिर्मय हो गया था। किसी पंडित-पुरोहित ने लिख दिया होगा। और सच तो यह है कि आज तक किसी बुद्ध पुरुष ने कोई किताब नहीं लिखी। बुद्ध पुरुष केवल बोलते हैं, लिखते तो ब्राह्मण हैं। न बुद्ध ने लिखी कोई

किताब, न महावीर ने लिखी कोई किताब, न कृष्ण ने लिखी कोई किताब, न जीसस ने, न मोहम्मद ने। किसी ने कोई किताब नहीं लिखी। बोले। लिखा किसी और ने। अब जिसने लिखा है, वह भी प्रविष्ट हो जाएगा; वह अपनी धारणाएं डाल देगा, अपनी मान्यताएं डाल देगा।
इसलिए ऋषिराज त्रिवेदी, मैं तो सीधा-सीधा देखता हूं। अगर कथा में कहीं कोई भूल है तो मैं उसका विरोध करूंगा--किसी ने लिखी हो, किसी के नाम से चलती हो। और राम और सीता की कथा में बहुत-सी बातें हैं जो कूड़ा-करकट हैं, जिनका कोई भी मूल्य नहीं है।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
तीसरा प्रवचन

जीवन एक तिलिस्म है

पहला प्रश्नः ओशो,
हाजार बोछोर धोरे
कोतो नोदी-प्रांतर,
बेरिए गेलाम।
ए चौलार माने तोबू
बोझा गेलो ना!
आमि हारिए गेलाम।
आमि हारिए गेलाम।
अर्थात हजारों वर्षों की यात्रा में मैंने कितने ही नदी और वन-प्रांतर पार किए, लेकिन फिर भी इस चलने का अर्थ अब तक नहीं समझ पाया। अब तो मैं हार गया, हार ही गया!
ओशो, एक बंगला गीत का यह अंश मेरे भीतर अक्सर गूंज उठता है। मैं भी अपनी वासनाओं से हारा हुआ हूं। वासनाओं की व्यर्थता का बोध होने पर भी वे जाती क्यों नहीं हैं?

अनिल भारती, जीवन का जो अर्थ खोजने चलेगा वह निश्चित ही हारेगा, असफल होगा। जीवन का अर्थ खोजने का अर्थ होगा कि जीवन रहस्य नहीं है, एक गणित है। जीवन फिर एक पहेली है, जो सुलझाई जा सकती है। और जीवन एक पहेली नहीं है। पहेली और रहस्य का यही भेद हैः जो सुलझाया न जा सके, जान-जान कर भी जो अनजाना रह जाए, कितना ही ज्ञात हो फिर भी अज्ञात शेष रहे।
विज्ञान और धर्म का यही भेद है। विज्ञान अस्तित्व को दो खंडों में बांटता है--ज्ञात और अज्ञात। जो कल अज्ञात था, आज ज्ञात हो गया है। जो आज अज्ञात है, कल ज्ञात हो जाएगा। ज्ञात और अज्ञात में कोई मौलिक भेद नहीं, कोई गुणात्मक अंतर नहीं। वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और विज्ञान कहता है उन दोनों के पार और कुछ भी नहीं। यही है उसकी अस्वीकृति चैतन्य के लिए।
धर्म अस्तित्व को तीन श्रेणियों में बांटता है--ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय। अज्ञेय का अर्थ है, जो कभी भी ज्ञेय नहीं होगा; जो रहस्य है और रहस्य था और रहस्य रहेगा। उसी रहस्य को तो हम भगवत्ता कहते हैं।
हाजार बोछोर धोरे
कोतो नोदी-प्रांतर,
बेरिए गेलाम।
ए चौलार माने तोबू
बोझा गेलो ना!
हजार वर्षों से, हजार जन्मों से यात्रा कर रहे हो, लेकिन हार तो हाथ लगेगी, क्योंकि बात ही जो तुमने चाही है वह अस्तित्व पूरी नहीं कर सकता। बात तुमने चाही है कि जीवन का अर्थ पता चल जाए, कि हम खोल लें जीवन की किताब। और जीवन कोई किताब नहीं। और अगर किताब भी है तो ऐसी किताब जैसी सूफियों के पास है--कोरे कागज हैं उसमें। खोलोगे भी तो कुछ पाओगे न। कोई अक्षर न मिलेंगे, कोई सूत्र न मिलेगा। खाली कोरे कागज को पढ़ोगे भी तो क्या पढ़ सकोगे? एक ही बात हो सकती हैः कोरे कागज को देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो, तो एक दिन तुम भी कोरे कागज हो जाओ।
जीवन के रहस्य को अनुभव किया जाता है, खोला नहीं जाता। यह कोई ताला नहीं कि जिसकी कोई चाबी हो। यूं तो जीवन के दरवाजे पर कोई ताला ही नहीं, सब खुला है, लेकिन अनंत तक खुला है। खोजते जाओ, कोई थाह न पाओगे। अथाह है, अगम्य है। दुर्गम नहीं; दुर्गम होता तो आदमी कभी का पार कर लेता। अगम्य है। गहरा नहीं; गहरा होता तो हमने नाप-जोख कर ली होती। अथाह है। इसलिए हजार क्या, करोड़ जन्मों तक भी इस आकांक्षा को लेकर चले अगर तो हार ही हाथ लगेगी। ए चौलार माने तोबू

बोझा गेलो ना!
आमि हारिए गेलाम।
आमि हारिए गेलाम।
लेकिन हार के लिए अस्तित्व जिम्मेवार नहीं। तुम्हारी आकांक्षा गलत है। तुम्हारी आकांक्षा जीवन के नियम के अनुकूल नहीं। फिर, जरूरत क्या है जीवन का अर्थ जानने की? यह व्यवसायी बुद्धि है जो हर चीज का प्रयोजन जानना चाहती है। थोड़ा जीवन को काव्य की तरह भी देखो। थोड़ा जीवन को प्रेम की तरह भी देखो, प्रीति में पगा भी देखो। तब आनंद है, अर्थ की कोई चिंता नहीं; उत्सव है। पागल करें अर्थ की खोजबीन। बुद्धिमान नाचेंगे, वीणा बजाएंगे, बांसुरी पर सुर छेड़ेंगे, पैरों में घुंघरू बजेंगे। उनका जीवन अर्थ की चिंता नहीं करता। यह क्षण काफी है। अर्थ का जो हमारे मन पर बहुत प्रभाव है, वह इसलिए कि हम गणित में रचे-पचे हैं। हम हर बात को हिसाब में बिठा लेना चाहते हैं--क्यों? हर क्यों का उत्तर चाहते हैं। जहां हम निरुत्तर होते हैं वहीं हताशा हाथ लगती है।
और मैं तुमसे कह दूं, जिन प्रश्नों के उत्तर हैं वे कोई कीमत के ही नहीं। वे प्रश्न दो कौड़ी के हैं जिनके उत्तर हैं। वही प्रश्न कीमती हैं जिनके कोई उत्तर नहीं हैं, न हो सकते हैं, क्योंकि वहीं तुम जीवन के तिलिस्म के करीब आते हो, जीवन के जादू को छूते हो।
जीवन एक जादू है, एक तिलिस्म है। इसको जीओ। इसको जानने की चेष्टा ही क्यों? धन का अर्थ होता है, पद का अर्थ होता है, प्रयोजन होता है, क्योंकि ये सब साधन हैं, इनके द्वारा कोई साध्य उपलब्ध हो सकता है। जो साध्य है, वही तो अर्थ है। लेकिन जीवन तो स्वयं साध्य है, किसी और का साधन नहीं। इसलिए इसका कैसे कोई अर्थ हो सकता है?
मैं यह भी नहीं कह सकता कि जीवन अनर्थ है, अर्थहीन है। यह भी नहीं कह सकता, क्योंकि यह भी तब कहा जा सकता है जब हम अर्थ को खोजने चलें। अस्तित्ववादी दार्शनिक पश्चिम में कहते हैंः जीवन अर्थहीन है। सार्त्र, कामू, कीर्कगार्ड, इस तरह के विचारक कहते हैं कि जीवन अर्थहीन है। उनसे मैं कहना चाहता हूं कि अर्थहीन जीवन मालूम पड़ेगा अगर तुम अर्थ खोजने चलोगे। अर्थहीनता तुम्हारे अर्थ की खोज का ही परिणाम है, अन्यथा जीवन न तो अर्थपूर्ण है न अर्थहीन है। जीवन बस है। इसके होने में डुबकी मारो। इसके होने में डूबो।
उस डूबने की कला का नाम ध्यान है। दर्शन अर्थ खोजता है, ध्यान डुबकी मारता है। प्यास है तो पीओ, क्या करोगे जान कर कि प्यास का क्या अर्थ है और पानी का क्या अर्थ है? और यूं सोचते रहे अर्थ, तो प्यास मार ही डालेगी। नहीं तुम पूछते कि भोजन का क्या अर्थ है और नहीं तुम पूछते कि श्वास लेने का क्या अर्थ है। पूछो और मुश्किल में पड़ोगे। फूल खिले हैं और पक्षी गीत गा रहे हैं और वृक्ष हरे हैं और नदियां सागर की तरफ भागी चली जा रही हैं, चांद-तारों में रोशनी है--ऐसा बस है। इस है-पन को जीओ--समग्रता से, संपूर्णता से।
लेकिन अनिल भारती, तुम अर्थ की खोज में लगे कि बस अनर्थ हाथ लगा। कारण तुम हो। फिर तुम कहते हो कि मैं अपनी वासनाओं से हारा हूं।
तुमसे कहा किसने कि वासनाओं को जीतो? जीतोगे तो नहीं, जीतने की चेष्टा में हार जरूर हो जाएगी। मैं तुमसे कहता हूं वासनाओं को जीओ, पहचानो, परखो, साक्षी बनो। जीतने की भाषा छोड़ दो। यह पहलवानी छोड़ो। यह कोई लड़ाई-झगड़े का मामला नहीं है। और लड़ाई-झगड़े में ज्यादा से ज्यादा दमन होगा। और जो दबाया गया है वह उभर-उभर कर प्रकट होगा। और फिर कहोगे कि अब मैं क्या करूं, मैं तो हार गया, मैं तो बुरी तरह हार गया!
एच.जी.वेल्स ने ऐसे यंत्रों की कल्पना की थी, जिनमें एक यंत्र ऐसा भी
था कि आप उसके द्वारा अपने सामने खड़े व्यक्ति के मन के विचार पढ़ सकते थे। आश्चर्यजनक रूप से एक दिन वह यंत्र मुल्ला नसरुद्दीन को मिल गया। मुल्ला मुझे बता रहा था--
ठोकर खाकर हमने जैसे ही यंत्र को उठाया
मस्तक में शूं-शूं की ध्वनि हुई, कुछ घरघराया
झटके से गर्दन घुमाई, पत्नी को देखा

अब यंत्र से पत्नी की आवाज आई,
मैं तो बाज आई इनसे,
सड़क पर चलने का तरीका नहीं आता,
कोई भी मैनर या सलीका नहीं आता,
बीबी साथ है यह तक भूल जाते हैं
और भिखमंगों की तरह सड़क पर से चीजें उठाते हैं, इनसे तो वह पूना वाला इंजीनियर ही ठीक था, जीप में बैठा कर मुझे शापिंग कराता,
इस तरह राह चलते ठोकर तो न खाता।

मुल्ला कहने लगा--
हमने सोचा, यहां तक तो गनीमत है
लेकिन अगर रात में सोते वक्त
इसे फिर पूना वाले की याद आई
तो कैसे निभेगी?
यंत्र खतरनाक है,
और यह भी एक इत्तफाक है कि हमको मिला है और मिलते ही पूना वाला गुल खिला है।
और भी देखते हैं, क्या-क्या गुल खिलते हैं, अब जरा यार-दोस्तों से मिलते हैं।

तो हमने एक दोस्त का दरवाजा खटखटाया द्वार खोला, निकला, मुस्कुराया
दिमाग में होने लगी आहट
कुछ शूं-शूं घरघराहट
यंत्र से आवाज आई,
अकेला ही आया है,
अपनी छप्पनछुरी गुलबदन को नहीं लाया है? प्रकट में बोला,
ओ हो, कमीज तो बड़ी फैंसी है।
और सब ठीक है? भाभीजी कैसी हैं?
हमने कहा,
भाभीजी या छप्पनछुरी गुलबदन?
वह बोला,
होश की दवा करो श्रीमान, क्या अंट-संट बकते हो? भाभीजी के लिए कैसे-कैसे शब्दों का प्रयोग करते हो? तो हमने सोचा, कैसा नट रहा है
अपनी सोची हुई बात से ही हट रहा है!
तो फैसला किया कि अब से बस सुन लिया करेंगे।
कोई भी अच्छी या बुरी प्रतिक्रिया नहीं करेंगे।

एक दिन बी.ए. फाइनल की क्लास में
एक लड़की बैठी थी खिड़की के पास में
लग रहा था हमारा लेक्चर नहीं सुन रही है
अपने मन में कुछ और ही गुन रही है
तो यंत्र को ऑन कर हमने जो देखा
खिंच गई हृदय पर हर्ष की रेखा
यंत्र से आवाज आई,
सर जी यूं तो बहुत अच्छे हैं
लंबे और होते तो कितने स्मार्ट होते!
एक लड़का जो सड़क पर जा रहा था
हेमामालिनी से अवैध संबंध बना रहा था।

तो हमने सोचा कि फ्रायड ने सारी बातें ठीक ही कही हैं

कि इंसान की खोपड़ी में सेक्स के अलावा कुछ नहीं है।
कुछ बातें तो इतनी घिनौनी हैं
कि जिन्हें बतलाने में भाषा भी बौनी है।

दबाओगे तो जाएगा कहां, भीतर पड़ा ही रहेगा। शूं-शूं करेगा, घर्र-घर्र करेगा। भगवतगीता पढ़ोगे, बीच-बीच में बोलने लगेगा। कुरान की आयतें दोहराओगे, बीच-बीच में उचक-उचक कर छलांगें मारेगा। जिसको दबाओगे वही तुम्हें सताएगा, वही तुम्हारे सपनों में आएगा। और फिर तुम सोचोगे कि हार हो गई। फिर जीवन को विषाद पकड़ लेगा। फिर जीवन में दुख घना होगा। सदियों-सदियों तक धर्मों ने जो मनुष्य को दमन की प्रक्रिया सिखाई है,
उस प्रक्रिया का यह परिणाम है कि यह सारी मनुष्य-जाति दुख की एक अंधेरी रात में खो गई है--एक ऐसी अमावस, लगता है जिसकी कोई सुबह ही नहीं; एक ऐसी रात, लगता है जिसका कोई अंत ही नहीं। तुम्हारे धर्मगुरु जिम्मेवार हैं। अनिल भारती, मेरे पास आकर भी तुम वासनाओं से लड़ रहे हो? मैं शिक्षा दे रहा हूं साक्षी होने की। जीतने का सवाल ही नहीं है, जो भी है हमारे भीतर और हमारे बाहर, उसका सम्यक दर्शन करना है। न जीतना है, न हारना है--देखना है। दृष्टि को निखारना है। आंख साफ करो। और पहले से ही यह पक्षपात क्यों लिए बैठे हो कि वासनाओं को जीतना है? ये सदियां जो तुम्हारे ऊपर धूल छोड़ गई हैं, वह छूटती ही नहीं; वह ऐसी जम गई है। मेरे पास भी आकर बैठे हो, मगर गुनते अपनी ही हो। सुनते मुझे क्या खाक हो!
तुम कहते हो, "मैं अपनी वासनाओं से हारा हूं। वासनाओं की व्यर्थता का बोध होने पर भी वे जाती क्यों नहीं हैं?"
वासनाओं की व्यर्थता का बोध तुम्हें हुआ है? या कि सुन लिया है, या कि संतों-महात्माओं ने जो बकवास छेड़ रखी है वही तुम्हारे भीतर शूं-शूं कर रही है? जिस दिन वासनाओं की व्यर्थता का बोध तुम्हें होगा उस दिन न जीत है न हार है। बोध के साथ ही वासनाओं का अतिक्रमण है। बोध के साथ तो व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है, फिर बचता क्या है? बोध यानी बुद्धत्व। और वासनाओं का बोध, बस आ गई पूर्णिमा की रात, आ गई वह रात जब गौतम सिद्धार्थ बुद्ध बने! तुम्हारे जीवन में भी बुद्धत्व का, भगवत्ता का आनंद बरस उठेगा, अमृत झलक उठेगा।
लेकिन बोध तुम्हें नहीं है। इसे बोध न कहो। सुनी-सुनाई बातें हैं। तुम्हारे भीतर घुस गई हैं, दोहर रही हैं, ग्रामोफोन रिकार्ड की तरह दोहर रही हैं। सदियों से कहा जा रहा है, सुना जा रहा है कि वासनाएं गलत हैं, उनसे जीत करनी है, उनको हराना है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं वासनाओं को जीतना है। मैं उनसे कहता हूं, जीत हो सकती है अगर तुम यह जीत की भावना छोड़ दो। वे कहते हैं, अच्छी बात है। तो हम जीत की भावना छोड़ देंगे, फिर तो जीत होगी न? यह कैसी भावना छोड़ना हुआ? जीत की आकांक्षा ऐसी गहन हो गई है, इस बात तक के लिए बेचारे राजी हैं कि चलो जीत की आकांक्षा भी छोड़ देते हैं, मगर जीत होगी न? जीत होनी ही चाहिए। अगर जीत पक्की हो, अगर गारंटी हो, तो हम यह भी कर लेंगे-- यह वासना भी छोड़ देंगे कि वासना को जीतना है। और मैं तुमसे कहूं, यह बड़ी से बड़ी वासना है--वासनाओं को जीतने की वासना। और सब वासनाएं तो बहुत छोटी- छोटी हैं; यह वासना तो बड़ी महत वासना है।
इस सब झंझट में न पड़ो। जो भी भीतर है, जो भी बाहर है, स्वीकार करो। निंदा नहीं। अभी बोध कहां! बोध को ही जगाने का तो मैं उपाय कर रहा हूं। क्रमशः बोध को जगाओ। पहले शरीर के साक्षी बनो।
बुद्ध एक सांझ बोल रहे थे। सम्राट सुनने आया था। सामने ही बैठा था और अपना पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध ने बीच में ही बोलना बंद कर दिया और उस सम्राट के अंगूठे की तरफ गौर से देखने लगे। सम्राट सकुचाया, घबड़ाया, बेचैन हुआ। और भी लोग देखने लगे कि बात क्या है! बुद्ध के देखने को देख कर सम्राट ने जल्दी से अपना अंगूठा, जो अब तक हिल रहा था, उसे रोक लिया। बुद्ध ने फिर बोलना शुरू कर दिया। थोड़ी देर बाद फिर सम्राट का अंगूठा हिलने लगा।

कुछ लोग ऐसे होते हैं न, कुर्सी पर बैठे रहेंगे, टांगे ही हिलाते रहेंगे, यहां-वहां खुजाते रहेंगे, कुछ न कुछ करते रहेंगे। होश ही नहीं, क्या कर रहे हैं।
बुद्ध ने फिर बोलना बंद कर दिया। सम्राट को बेचैनी होने लगी। उसका वजीर भी पास बैठा है, उसकी रानी भी पास बैठी है, उनको भी लगा कि यह तो बड़ी भद्द की बात है। सम्राट ने कहा, आप बोलना बंद क्यों कर देते हैं? और मेरे अंगूठे की तरफ क्यों देखने लगते हैं?
बुद्ध ने कहा, मैं इसलिए देखता हूं अंगूठे की तरफ कि क्यों तेरा अंगूठा हिल रहा है! तू मुझे उत्तर दे दे।
सम्राट ने कहा कि मुझे होश ही कहां? जब आप रुकते हो, मेरे अंगूठे की तरफ देखते हो, तब मुझे ख्याल आता है कि अंगूठा हिल रहा है। तब मैं तत्क्षण रोक लेता हूं; फिर भूल जाता हूं, फिर अंगूठा हिलने लगता है। तो बुद्ध ने कहा, यह अंगूठा तेरा है या किसी और का है? तेरा अंगूठा हिले और तुझे पता न चले, तब तो फिर किसी दिन तू किसी की गर्दन भी काट सकता है, क्योंकि तेरा हाथ है और तुझे पता न चले।
और यह मजाक ही नहीं, बहुत-सी हत्याएं होती हैं जिनमें हत्यारे को पता
ही नहीं चलता कि उसने हत्या कर दी, करने के बाद ही पता चलता है कि अरे यह मैं क्या कर गुजरा, यह क्या हो गया! और ऐसी भी हत्याएं हुई हैं कि हत्यारों ने अदालतों में वक्तव्य दिए हैं कि हमने की ही नहीं। पहले तो यही समझा जाता था कि ये लोग झूठ बोल रहे हैं। लेकिन अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जरूरी नहीं कि वे झूठ बोल रहे हों; हो सकता है वे ठीक ही कह रहे हों; उन्हें पता ही न हो, इतनी मूर्च्छा में हत्या की गई हो। क्योंकि जब आदमी क्रोध में उन्मत्त हो जाता है तो करीब-करीब मूर्च्छित हो जाता है। क्रोध की गहन अवस्था में तुम्हारे शरीर में ऐसी ग्रंथियां हैं, जिनसे जहर तुम्हारे खून में दौड़ जाता है और उस जहर के कारण एक मूर्च्छा छा जाती है। उस मूर्च्छा की स्थिति में कोई हत्या भी कर सकता है, आत्महत्या भी कर सकता है।

और यूं ही तुम जी रहे हो--यंत्रवत। पहले शरीर के प्रति सजग होना शुरू करो। चलो तो जानते हुए, होशपूर्वक। बैठो तो जानते हुए, होशपूर्वक। लेटो तो जानते हुए, होशपूर्वक। इतनी गहनता को लाना है होश में कि एक ऐसी घड़ी भी आ जाए कि रात करवट भी बदलो, तो भी होशपूर्वक। और अंततः सोए रहो तब भी तुम्हें यह होश रहे कि शरीर सोया है, मैं जागा हूं। जिस दिन यह घटना घट जाती है उस दिन एक पड़ाव पूरा हुआ, एक तिहाई यात्रा पूरी हो गई।
फिर दूसरा प्रयोग मन पर करना है। फिर मन के विचार, कामनाएं, इच्छाएं, एषणाएं स्मृतियां, कल्पनाएं, सपने, इनको देखना है। यह मन की सारी कामनाओं का जाल तभी संभव है देखना, जब पहले शरीर की स्थूल प्रक्रियाओं पर तुम्हारी जागृति जम गई हो। तब सूक्ष्म पर उतरा जा सकता है। एक-एक कदम बढ़ना होगा। जो शरीर पर सफल हो गया वह मन पर भी सफल हो जाएगा; उसके हाथ में राज लग गया।
और जब तुम्हारे मन पर तुम्हारा होश गहन हो जाएगा तो तुम चकित होओगे।
जब शरीर पर होश गहन होता है तो शरीर में एक कमनीयता, एक कोमलता, एक सौंदर्य, एक प्रसाद उतर आता है; एक संगीत, एक लयबद्धता, एक छंद छा जाता है। शरीर के उठने-बैठने में एक अदभुत लालित्य आ जाता है, सारी भाव-भंगिमा में एक भगवत्ता छा जाती है--एक गहन शांति, एक मौन, एक उत्फुल्लता। रोएं-रोएं में एक उत्सव! और जब मन पर बोध गहन हो जाता है तो वासनाएं, विचार अपने आप विदा हो जाते हैं, लड़ना नहीं पड़ता। जो लड़ा वह तो हारा। जो जागा वह जीता।
इस सूत्र को खूब याद कर लेनाः जो लड़ा वह हारा। फिर तुम्हें यह कहना ही पड़ेगा--
हाजार बोछोर धोरे
कोतो नोदी-प्रांतर,
बेरिए गेलाम।
ए चौलार माने तोबू
बोझा गेलो ना!
आमि हारिए गेलाम।
आमि हारिए गेलाम।

हार गया, हार गया, बुरी तरह हार गया! हजारों वर्षों की यात्रा में कितनी नदियां, कितने वन-प्रांतर पार किए, फिर भी चलने का अर्थ पता न लगा। हार गया, बुरी तरह हार गया!
पराजय तुम्हारी गलत प्रक्रिया का परिणाम है। जो मन को जाग कर देखेगा उसका मन विदा हो जाता है। तुम जागे कि मन गया। जिस मात्रा में जागे, उस मात्रा में मन गया। तुम अगर दस प्रतिशत जागे हो तो नब्बे प्रतिशत मन होगा। तुम अगर नब्बे प्रतिशत जाग गए तो दस प्रतिशत मन होगा। और तुम अगर निन्यानबे प्रतिशत जाग गए तो एक प्रतिशत मन होगा। और तुम अगर सौ प्रतिशत जाग गए तो मन शून्य प्रतिशत हो जाएगा। और तब एक अपूर्व घटना घटती है। जैसे शरीर में एक प्रसाद छा जाता है, ऐसे ही मन में एक अपूर्व आह्लाद, अकारण आनंद--कोई कारण नहीं, कोई वजह नहीं, कोई हेतु नहीं, कोई लक्ष्य नहीं--बस अकारण झरने फूटने लगते हैं, आनंद की रसधार बहने लगती है! और जब मन में यह घटना घट जाए तो फिर तीसरा कदम बाकी रह गया, जो सर्वाधिक सूक्ष्म है--वह है हृदय की भावनाओं के प्रति सजगता। वह सबसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म हमारा जगत है।
भाव विचार से भी गहरे हैं। और भाव विचार से भी नाजुक हैं। फिर आखिरी प्रयोग करना हैः अपनी भावनाओं को देखना है। विचार पर जो जीत गया वह भावनाओं पर भी जीत जाएगा। राज तो वही है, कीमिया तो वही है, कला तो वही है; सिर्फ अब गहराई बढ़ाए जाना है। तैरना आ गया तो अब क्या फर्क पड़ता है उथले में तैरे कि गहरे में तैरे। भावना का जगत सर्वाधिक गहरा है। जब भावनाओं के प्रति तुम जागोगे, जिस मात्रा में जागोगे उस मात्रा में भावनाएं भी विदा हो जाएंगी।
और जब सारी भावनाएं विदा हो जाती हैं तो उस अपूर्व घटना की घड़ी आ गई जब ऋषियों ने कहा हैः रसो वै सः! रस आखिरी परिभाषा है परमात्मा की। रस बह उठता है। रस अदभुत शब्द है। दुनिया की किसी भाषा में वैसा कोई शब्द नहीं। परमात्मा रसरूप है।
और ये तीन कदम हैं; इन तीन कदम के बाद चौथा प्रसाद है। चौथा भी है, लेकिन वह तुम्हारा कदम नहीं है। तीन तुम उठाओ, चौथा कदम परमात्मा उठाता है। उस चौथे को हमने कहा है--तुरीय, समाधि। तुमने तीन पूरे कर लिए, तुम अधिकारी हो गए, पात्र हो गए चौथे को पाने के। चौथा तुम नहीं उठा सकते। चौथा तो परमात्मा उठाएगा। यह पूरा अस्तित्व तुम्हारे सहयोग में खड़ा हो जाता है। और जब चौथा कदम भी उठ जाता है और समाधि सघन हो जाती है, समाधि के मेघ घिर जाते हैं, आ गया आषाढ़ का महीना, होने लगी रिमझिम--तब जीवन में जीत है। उसको तुम कह सकते हो जिन अवस्था, विजेता की अवस्था। उसके पहले तो हार ही हार है।
अनिल भारती, लड़ो मत, जागो!

दूसरा प्रश्नः ओशो, गत पंद्रह साल से मैं आपके सत्संग में उठता-बैठता रहा हूं और आपके प्रति बिल्कुल शुरू से समर्पित भी। लेकिन आज तक संन्यास में उतरने का साहस नहीं जुटा पाया। जब से आपने संन्यास देना शुरू किया, तब से ही मन में संन्यास की अभीप्सा जगी रही। उस समय जिन मित्रों को कहा चलो संन्यास में उतरेंगे, तब उन मित्रों की तैयारी नहीं थी। लेकिन उनमें से कुछ बाद में संन्यस्त हुए और आप में डूब गए और मैं ऐसा ही रह गया। मेरे कपड़े भी सी कर तैयार हैं, लेकिन साहस की कमी है। आपके प्रति मेरे समर्पण में भी कमी नहीं। अगर आपके संबंध में कोई कुछ बकने लगे तो तुरंत मैं उससे जूझ पड़ता हूं, या मेरी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। जो आपके प्रेम में डूब गए हैं उन्हीं का संग-साथ मन को भाता है। आपके प्रति मेरा यह लगाव देख कर कभी-कभी आपके आलोचक भी अचंभा करते हैं कि मैं अब तक संन्यस्त कैसे नहीं! जिस परिवार व समाज के भय के कारण रुका हूं, उससे कोई सुख पा रहा हूं, ऐसा भी नहीं।
ओशो, अब आप ही एक आखिरी धक्का दें और आपके रंग में रंग लें।

अजित कुमार जैन, भैया, ऐसी भी क्या जल्दी है? मजे से सत्संग चल रहा है, चलने दो। मजे से समर्पण चल रहा है, चलने दो। समर्पण भी तुम कहते हो पूरा है,

सत्संग भी पूरा है, अब साहस की कमी कैसे रह सकती है? तुम कहते हो मेरी कोई आलोचना करता है, मेरे संबंध में कुछ बकझक करता है तो तुम जूझ पड़ते हो या तुम्हारी आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। इससे तुम्हें इस बात का एहसास होता है कि समर्पण पूरा है, लगाव पूरा है। स्वभावतः तुमने तर्क खोजा, विचार किया होगा कि फिर कमी कहां है? साहस की कमी है, तुम कहते हो।
नहीं, अजित कुमार जैन, समर्पण अभी पूरा नहीं। समर्पण पूरा हो तो फिर कोई कमी नहीं रह जाती। हां, जरूर कोई मेरी आलोचना करता है तो तुम जूझ जाते हो। वह जूझना भी तुम अपने अहंकार के कारण करते हो, मेरे प्रति समर्पण के कारण नहीं। मेरी आलोचना की जा रही है, इसलिए नहीं जूझते हो। तुम जिसे मानते हो, उसकी आलोचना की जा रही है, इसलिए जूझ जाते हो।
और कभी तुम्हारी आंखें भी आंसुओं से भर जाती हैं, वह इसलिए नहीं कि कोई मेरे संबंध में गलत-सलत कह रहा है, बल्कि इसलिए कि तुम सोचते हो जिसके प्रति तुम्हारा समर्पण है और समग्र समर्पण है, उसके संबंध में कोई गलत कहे तो तुम्हारे ही संबंध में गलत हुआ न! चोट तुम्हारे अहंकार को लगती है, तो कभी आंसुओं में प्रकट हो सकती है और कभी जूझने में। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और सिक्का अहंकार का है।
यह भी तुम कहते हो कि जिन परिवार वालों के कारण मैं संन्यास लेने से रुका हूं, उनके कारण मुझे कोई सुख मिल रहा हो ऐसा भी नहीं। सभी बातें पूरी हैं, सिर्फ तुम सोचते हो साहस की कमी है। यह नहीं हो सकता। समर्पण पूरा हो तो साहस की कमी हो ही नहीं सकती। समर्पण पूरा होने का अर्थ हुआ कि अगर मैं कहूं कि ले लो संन्यास, फिर क्या करोगे? फिर क्या मुझसे कहोगे साहस की कमी है, कैसे लूं? फिर कैसा समर्पण पूरा हुआ? और मैं रोज यही तो कह रहा हूं कि डूबो। अब भी तुम कहते हो कि एक और आखिरी धक्का दे दें।
मैं तो दे दूं आखिरी धक्का, मगर तुम किस तरफ भागोगे, सवाल यह है। बहुत संभावना है कि घर की तरफ भागोगे। बहुत संभावना है कि ज्यादा धक्का दे दूं तो यहां शायद आना ही बंद कर दो। इसलिए धक्का नहीं दूंगा। यही कहूंगा, क्या जल्दी पड़ी है। अरे, जन्म पड़ा है! और कोई एक जन्म! इस देश में तो सुविधा ही सुविधा है। अनंत जन्म पड़े हुए हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा ही आलसी किस्म का व्यक्ति है। उसका एक तकिया कलाम है--ऐसी जल्दी भी क्या है! वह बात-बात में यही दोहराता है कि ऐसी जल्दी भी क्या है! एक बार उसके मित्र चंदूलाल ने देखा कि नसरुद्दीन बड़ी तेजी से कार चलाता हुआ कहीं जा रहा है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि मुल्ला को उसने कभी भी इतनी तेज कार चलाते देखा ही नहीं था। जब जल्दी ही नहीं तो कार क्या तेज चलानी! कार नसरुद्दीन ऐसे चलाता है जैसे कोई बैलगाड़ी चलाता है। शाम को उसने मुल्ला से पूछा कि क्या बात थी मुल्ला, आज तुम बड़ी ही तेज कार चला रहे थे, आखिर ऐसी क्या बात हो गई थी?
मुल्ला नसरुद्दीन बोला, बता देंगे भाई, ऐसी जल्दी भी क्या है!
चंदूलाल ने दूसरे दिन फिर पूछा कि भई, अब तो बता दो कि क्या बात थी! कल तेज गाड़ी क्यों चला रहे थे?
नसरुद्दीन का उत्तर वही था पूर्ववत, कि बता देंगे भाई, आखिर ऐसी जल्दी
भी क्या है! जब पूछते-पूछते काफी दिन हो गए तो एक दिन नसरुद्दीन ने उसे सारा किस्सा बताया, जो इस प्रकार था। कहा, मैं उस दिन आराम से अपने आफिस जा रहा था--वही चाल, पुरानी बैलगाड़ी वाली--कि मैंने देखा कि सामने सड़क पर एक बुढ़िया सड़क पार करती हुई चली जा रही है। मैंने देखा कि वह सड़क के बीचों-बीच आ गई है। मैंने चाहा कि एकदम ब्रेक लगाऊं, लेकिन सोचा कि ऐसी जल्दी भी क्या है! और इतने में वह बुढ़िया कार के नीचे आ गई। फिर भी सोचा कि अब भी ब्रेक लगा लूं, लेकिन तुम तो जानते ही हो मेरा तकिया कलाम, सोचा ऐसी जल्दी भी क्या है! कि बुढ़िया को पार भी कर गया। तब तक भीड़ भी इकट्ठी होने लगी। सोचा कि अब तो कार रोक लूं, लेकिन वही पुराना तकिया कलाम कि ऐसी जल्दी भी क्या है! और इसी घबड़ाहट में ब्रेक पर पैर न लगा, एक्सीलेटर पर पैर लग गया। और जब एक्सीलेटर पर पैर लग गया तो कई दफा सोचा भी कि अरे भाई यह क्या कर रहा हूं! मगर वही पुराना तकिया कलाम कि ऐसी जल्दी भी क्या है! इसलिए उस दिन तेजी से चला जा रहा था, दफ्तर भी पीछे छूट गया।

तुमसे भी मैं यही कहूंगा--ऐसी क्या जल्दी है! हो जाएगा--आज नहीं कल, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, और नहीं तो और अगले जन्म में। कोई बुद्ध पुरुष चुक तो न जाएंगे। आते ही रहेंगे। उनका धंधा यही कि आएं और सोए हुओं को जगाएं। और सोने वालों का धंधा यही कि जगाने वाले जगाते रहें और वे सोए ही रहें।
अब तुम अगर संन्यासी ही हो गए, तो अजित कुमार जैन, यह भी तो सोचो, फिर आने वाले बुद्ध पुरुष क्या करेंगे? कुछ उनका भी ख्याल करो। फिर किसका उद्धार करेंगे? सबको बिल्कुल ही बेकाम कर देना है? कुछ लोगों को तो छोड़ जाना ही पड़ेगा। तुम भी उन्हीं में रहो। अभी कुछ जल्दी नहीं है। और तय मत करना, सोचना ही मत कि कल ले लेंगे कि परसों ले लेंगे।
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी अपनी कंजूसी के लिए पूरे गांव में मशहूर थे। गांव के किसी भी व्यक्ति को उन्होंने कभी चाय तक के लिए निमंत्रित नहीं किया था। एक बार गांव में किसी ने खबर फैला दी कि चंदूलाल एक बहुत बड़ा भोज देने वाले हैं, जिसमें वे सारे गांव को निमंत्रित करेंगे। लोगों ने सुना और अनसुना कर गए। लेकिन जब खबर ने जोर पकड़ा तो सारे गांव वाले मिल कर चंदूलाल के घर जा पहुंचे। बाहर ही चंदूलाल के सुपुत्र टिल्लू गुरु खेल रहे थे। गांव वालों ने उनसे पूछा कि सुना है कि तुम्हारे पिता एक बहुत बड़ा भोज देने वाले हैं!
टिल्लू गुरु ने हंसते हुए उत्तर दिया, आपने बिल्कुल ठीक सुना भाइयो। मेरे पिता प्रलय के दिन एक बहुत बड़ा भोज देने वाले हैं!
टिल्लू गुरु अपने बाप को जानते हैं कि कयामत के पहले तो वे दे नहीं सकते, सो कयामत के दिन, आखिरी दिन जब आएगा, तब वे भोज देने वाले हैं। गांव के लोग यह सुन कर लौट गए। उन्होंने कहा, हमें पहले ही पता था। उनके बीच होने वाला वार्तालाप चंदूलाल भी घर के भीतर से सुन रहे थे। जब गांव के लोग चले गए तो उन्होंने टिल्लू गुरु को भीतर बुलाया और लगे उसे चपत पर चपत रसीद करने। बोले, अबे नालायक! भोज का दिन अभी से निश्चित करने की क्या आवश्यकता थी?
क्यों जल्दी करते हो अजित कुमार जैन? हो जाएगा कयामत के दिन तक। और क्या दिन तय करना! चलने दो सत्संग, मजे से चल रहा है, सुविधा से चल रहा है, बिना किसी झंझट के चल रहा है।
यह साहस की कमी नहीं है, यह समर्पण की ही कमी है। तुम समर्पण की बात समझे ही नहीं। और तुम सोचते हो कि जिनसे मैं कोई सुख नहीं पा रहा, उसी समाज, उसी परिवार के कारण रुका हूं, ऐसा क्यों?
हम अपने दुख को भी पकड़ते हैं। हमारी पकड़ ऐसी है। हमें तो जो मिल जाए उसी को पकड़ लेते हैं। दुख को भी पकड़ लेते हैं, उसको भी हमसे छोड़ते नहीं बनता। पता नहीं यह दुख छूट जाए तो कहीं कोई और बड़ा दुख मिल जाए! इसलिए कम से कम जाना-माना है।
जिस समाज से तुम्हें कोई सुख नहीं मिल रहा, जिस परिवार से तुम्हें कोई सुख नहीं मिल रहा, फिर क्या भय है? जिनसे कांटे ही मिल रहे हैं और गालियां ही मिल रही हैं--और थोड़े कांटे सही, और थोड़ी गालियां सही।
और जब इतने दिन से यह अभीप्सा तुम्हारे मन में छाई हुई है, तो इसे टालना क्यों? शुभ कुछ करना हो तो तत्क्षण कर लेना चाहिए, क्योंकि मन बहुत चालबाज है। अगर कल पर छोड़ा तो हो सकता है हमेशा के लिए ही छूट जाए। और अशुभ कुछ करना हो तो थोड़ा ठहर जाना चाहिए, क्योंकि आज छूट गया तो शायद सदा के लिए छूट जाए।
लेकिन हम बड़े उलटे लोग हैं। झगड़ा करना हो तो अभी कर लेते हैं, ध्यान करना हो तो कहते हैं कल करेंगे। गाली देनी हो तो अभी दे लेते हैं और किसी को एक फूल भेंट करना हो तो न मालूम कितना गणित बिठाते हैं, कितना समय गंवाते हैं। दो प्रीतिकर शब्द कहने के लिए स्थगन करते हैं और अप्रीतिकर शब्द एकदम नगद! अभी, यहीं के यहीं! कल पर नहीं छोड़ते।
गुरजिएफ के पिता ने मरते समय गुरजिएफ को कहा था... गुरजिएफ की उम्र नौ
ही वर्ष थी और गुरजिएफ ने बाद में कहा कि उस एक छोटी-सी सिखावन ने मेरी पूरी जिंदगी बदल दी। एक छोटी-सी बात कही थी। नौ साल के बच्चे से और कहा भी क्या जा सकता था। पास बुला कर इतना ही कहा था कि तुझे और तो मैं क्या कहूं,

और कुछ मेरे पास देने को नहीं, लेकिन जो मेरे पिता ने मुझे दिया था और जिसके कारण मेरी पूरी जिंदगी बदली, वही मैं तुझे देता हूं। एक बात का ख्याल रखना, कभी भी क्रोध करना हो तो चौबीस घंटे के बाद करना। अभी कोई गाली दे तो ठीक चौबीस घंटे के बाद उसको जवाब देना। अभी तो उससे कहना कि भई, चौबीस घंटे मुझे सोचने का अवसर चाहिए, फिर आऊंगा और जवाब दे दूंगा।
और गुरजिएफ कहता था कि इस छोटे-से सूत्र ने मेरे पूरे जीवन को बदल दिया, क्योंकि चौबीस घंटे कोई रुक जाए तो फिर क्या गाली देगा? फिर क्या बुरा काम कर सकेगा? रुका, फिर चाहे अच्छा हो या बुरा, होता ही नहीं।
इसलिए अगर संन्यास तुम्हें लेना ही है, तो आज ही! कल पर टाला अर्थात कयामत पर टाला। कल कभी आता ही नहीं; जो आया है वह आज है। और इतने दिन हो गए प्रतीक्षा करते, अब कब तक प्रतीक्षा करोगे! क्या तुम्हें भी आखिरी में यही बंगाली गीत दोहराना है?
हाजार बोछोर धोरे
कोतो नोदी-प्रांतर,
बेरिए गेलाम।
ए चौलार माने तोबू
बोझा गेलो ना!
आमि हारिए गेलाम।
आमि हारिए गेलाम।
हजारों वर्षों की यात्रा में मैंने कितने ही नदी और वन-प्रांतर पार किए और फिर भी संन्यास न लिया! और फिर भी संन्यास न लिया! और हार ही हाथ लगी! और हार ही हाथ लगी!
आमि हारिए गेलाम।
आमि हारिए गेलाम।
ए चौलार माने तोबू
बोझा गेलो ना!
आज ही! या आज ही ले लो या सदा के लिए बात ही छोड़ दो। फिर यह सवाल दोबारा उठाना भी मत। फिर क्या बार-बार उठाना?

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं राजनीति छोड़ने को राजी हूं और राजी हूं काव्य
को ही जीवन समर्पित कर देने को। अब तो कुछ कहिए कि कवि का धर्म क्या है?

राजेंद्र आग्नेय, राजनीति इतनी आसानी से छोड़ी जा सकती है? कवि हो जाओगे, फिर भी राजनीति ही करोगे। राजनीति छोड़ना तभी संभव है, जब अहंकार मिट जाए। अहंकार में ही सारी राजनीति छिपी है। अहंकार बीज है राजनीति का। इसलिए तुम कवियों को भी राजनीति में पड़ा देखोगे। एक कवि दूसरे की टांग घसीट रहा है। एक कवि दूसरे को पटकनी मारने की कोशिश कर रहा है। कोई किसी की छाती पर चढ़ा है, कोई किसी की छाती पर चढ़ा है। कवियों के भी झुंड हैं, दल हैं, दादा हैं। कवियों में भी सब उपद्रव हैं। कुछ भेद नहीं।
राजनीति इतनी आसान नहीं है, राजेंद्र आग्नेय, कि तुमने कहा और छोड़ दी।
यह तो ध्यान की गहराई में उतरो तो छूटेगी। तुम्हारे कहने से नहीं छूटने वाली।
और कविता भी तुम क्या करते हो? कुछ नमूने तो मुझे भेजो। देखूं भी तो कविता क्या करते हो! क्योंकि कविता के नाम पर जो सड़ा-गला हो रहा है, अगर वैसी ही कविता करते हो, उससे तो बेहतर राजनीति ही करो।

पेट में शराब
हाथ में सिगरेट
सिगरेट में हशीश है
ये गीतकार
पहुंचा हुआ चार सौ बीस है
भाव साहित्यकारों से
उधार लेता है
कुछ यहां से तो कुछ वहां से

मार देता है!
होलसेल में लिखता है,
सस्ता होते हुए महंगा
बिकता है!
धुआंधार धांसू है
पापुलर हिट है
साहित्य में पिटा हुआ
फिल्मों में फिट है
गीतों के नाम पर
चूं-चूं का मुरब्बा है
समीक्षक कहते हैं--
"बदनुमा धब्बा है!"
बुद्धिजीवी कहते हैं--
"निराला के सपनों की खाट
खड़ी कर रहा है।"
वे मूर्ख हैं,
ये अपनी बिल्डिंग
बड़ी कर रहा है!
नोटों में खेलता है
साहित्य की छाती पर
सरेआम डंड पेलता है!
साहित्य के शाश्वत मूल्यों से
उसे क्या लेना है
सोने की नदी में
चांदी की नाव खेना है!

राजनीति और काव्य का क्या लेना-देना? और तुम इतनी जल्दी कैसे छोड़ सकोगे? लेकिन माने लेता हूं कि तुम अगर कहते हो कि छोड़ सकोगे, तो जरूर छोड़ दो। मुझे तो लगता नहीं कि इतनी जल्दी कोई छोड़ सकता है। राजनीति छोड़ना तो सिर्फ बुद्धपुरुषों को ही संभव है। नहीं तो वे जहां रहेंगे वहीं राजनीति करेंगे।
धन की भी राजनीति होती है, साहित्य की भी राजनीति होती है। विश्वविद्यालयों में आचार्यगणों की राजनीति होती है। साधु-संतों के, महंतों के अड्डों पर, अखाड़े उनका नाम है, वहां भारी राजनीति होती है। सब तरफ राजनीति है। राजनीति के बहुत रंग हैं, बहुत पहलू हैं। लेकिन तुम अगर कहते हो तो मैं मान लेता हूं, मुझे कोई अड़चन नहीं। इतनी आसानी से छोड़ सको तो बड़ी शुभ बात है। हालांकि यह हो नहीं सकता है।
अगर राजनीति छोड़नी हो तो ध्यान में डूबो। ध्यान से दोनों काम हो जाएंगे; राजनीति भी छूट जाएगी और अगर काव्य की तुम्हारी नैसर्गिक प्रतिभा होगी तो प्रकट हो जाएगी, अगर नहीं नैसर्गिक प्रतिभा होगी तो कम से कम कचरा कविताएं लिखने से बच जाओगे।
मगर तुम पूछते हो कि क्या कवि का धर्म है?
पुराने जमाने में एक धर्म था, वह साफ था कि मुहब्बत की बातें करे, प्रेम की बातें करे! प्रेम दूसरे करते; जो प्रेम न कर पाते वे प्रेम की बातें करते।

गुल हुई जाती है अफसुर्दा सुलगती हुई शाम
धुल के निकलेगी अभी चश्मा-ए-महताब से रात
और मुश्ताक निगाहों से सुनी जाएगी
और उन हाथों से मस होंगे ये तरसे हुए हाथ
उनका आंचल है कि रुख्सार कि पैराहन है
कुछ तो है जिससे हुई जाती है चिलमन रंगीं जाने उस जुल्फ की मौहूम घनी छांव में टिमटिमाता है वो आवेजा अभी तक कि नहीं

आज फिर हुस्ने-दिलारा की वही धज होगी
वही ख्वाबीदा-सी आंखें, वही काजल की लकीर रंगे-रुख्सार पे हल्का-सा वो गाजे का गुबार संदली हाथ पे धुंदली-सी हिना की तहरीर अपने अफ्कार की अशआर की दुनिया है यही जाने-मजमूं है यही, शाहिदे-मानी है यही
आज तक सुर्खी-सियाह सदियों के साये के तले आदमो-हव्वा की औलाद पे क्या गुजरी है
मौत और जीस्त की रोजाना सफआराई में
हम पे क्या गुजरेगी, अजदाद पे क्या गुजरी है इन दमकते हुए शहरों की फरावां मखलूक
क्यों फकत मरने की हसरत में जिया करती है ये हसीं खेत, फटा पड़ता है जोबन जिनका
किस लिए इनमें फकत भूख उगा करती है
ये हर इक सिम्त पुरअसरार कड़ी दीवारें
जल बुझे जिन में हजारों की जवानी के चिराग ये हर इक गाम पे उन ख्वाबों की मकतल-गाहें जिनके परतौ से चिरागां हैं हजारों के दिमाग ये भी हैं, ऐसे कई और भी मजमूं होंगे
लेकिन उस शोख के आहिस्ता से खुलते हुए होंठ
हाय उस जिस्म के कमबख्त दिलावेज खुतूत
आप ही कहिए कहीं ऐसे भी अफसूं होंगे
अपना मौजू-ए-सुखन इनके सिवा और नहीं
तबअ-ए-शायर का वतन इनके सिवा और नहीं
यह पुराना धर्म था कवि का। अपने अफ्कार की--अपनी रचनाओं की--अपने अफ्कार की अशआर की दुनिया है यही। अपनी रचनाओं की, अपनी काव्य की यही दुनिया है। जाने-मजमूं है यही, विषय की जान है यही। शाहिदे-मानी है यही, अर्थों का साक्षी है यही। क्या?
अपना मौजू-ए-सुखन इनके सिवा और नह
तबअ-ए-शायर का वतन इनके सिवा और नहीं
शायर की प्रकृति यही थी। यह पुरानी परिभाषा थी। यह पिट गई परिभाषा। इसका जमाना लद गया। वे दिन बीत गए। अब हालात बदल गए हैं। अब इतनी ही बात से काम नहीं हो सकता। ये तो प्रेम जिनको नहीं मिला था उन्होंने प्रेम के गीत गाकर अपनी पूर्ति कर ली थी।
मेरी दृष्टि में तो वही कवि हो सकता है जिसने प्रेम को अनुभव किया हो; अकेले प्रेम को ही नहीं, प्रेम के साथ-साथ जागरूकता को भी। प्रेम और ध्यान, दो शब्द मेरे आधार हैं। भीतर ध्यान, बाहर प्रेम। स्वयं के भीतर ध्यान, संबंधों में प्रेम। ध्यान का फूल खिले, प्रेम की गंध उड़े; फिर अगर तुम्हारी नैसर्गिक क्षमता होगी काव्य की, तो कवि हो जाओगे। अगर नैसर्गिक क्षमता होगी संगीत की, संगीतज्ञ हो जाओगे; नर्तक की, तो नर्तक हो जाओगे; मूर्तिकार की, तो मूर्तिकार हो जाओगे। फिर कुछ चेष्टा करके थोपना न होगा। क्योंकि सब थोपा हुआ झूठा और मिथ्या होता है। फिर तुम्हारी जो नैसर्गिक क्षमता होगी, उसका ही आविर्भाव होगा। और जब भी कोई व्यक्ति अपनी स्वस्फुरणा से जीता है, कवि हो, चित्रकार हो, मूर्तिकार हो, नर्तक हो, या इनमें से कुछ भी न हो, दुनिया पहचान सके ऐसा कुछ भी न हो, बिल्कुल साधारण-सा व्यक्ति हो, फिर भी उसके जीवन में काव्य होता है, सौंदर्य होता है, संवेदनशीलता होती है, क्योंकि उसके भीतर समाधि होती है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आपके आश्रम को देख कर मैं भाव-विभोर हो गया। ऐसा लगता है कि खजुराहो के मंदिर यहां जीवंत हो गए हैं। मंदिर के बाहर नृत्य, संगीत, उत्सव; मंदिर के भीतर अपूर्व मौन, घनी शांति। बाहर काम से राम, संभोग से समाधि; भीतर राम से काम, समाधि से संभोग--तंत्र की ऐसी अनूठी अभिव्यक्ति न मैंने कभी सुनी, न मैंने कभी देखी। आपके इस उत्सवी आश्रम में प्रवेश की क्या शर्तें हैं, बताएं!

तपन चौधरी, एक ही शर्त है। ज्यादा शर्तें नहीं हैं। सरल-सी शर्त है। उसे मैं ध्यान कहता हूं, मौन कहता हूं, शून्य कहता हूं, समाधि कहता हूं। इस महोत्सव में सम्मिलित होना हो तो ध्यान के बीज बोओ, ताकि समाधि के फूल खिलें, ताकि भगवत्ता के फल लगें। फिर कुछ भेद नहीं है काम में और राम में, संभोग में और समाधि में। फिर तो तुम जो करो, वही समाधि है। जैसे जीओ, वही सत्य है। तब तुम्हारी श्वास-श्वास में परमात्मा ही आंदोलित होगा। तुम्हारी हृदय की धड़कन तुम्हारी न रह जाएगी, इस सारे अस्तित्व की धड़कन हो जाएगी।
और जब तक यह नहीं हुआ है तब तक तुम चाहे उछलो-कूदो, मगर उत्सव पैदा नहीं होगा। यह तो तुम ठीक कहते हो कि तंत्र की ऐसी अनूठी अभिव्यक्ति न मैंने कभी सुनी, न मैंने कभी देखी। सदियां हो गईं, तंत्र का अदभुत लोक विनष्ट ही कर दिया गया। खजुराहो के मंदिर तो मिट्टी में दबे पड़े रहे, बच गए। ऐसे बहुत मंदिर थे, वे सब नष्ट कर डाले गए।
खजुराहो के मंदिर तो बच गए, लेकिन खजुराहो के मंदिरों के पुजारियों
का कोई पता नहीं। खजुराहो के मंदिर तो बच गए, लेकिन मंदिरों के रखे शास्त्रों का कोई पता नहीं। खजुराहो के मंदिर तो बच गए, क्योंकि कुछ संवेदनशील लोगों में उनको बचाने की, कलाकृतियों की तरह बचाने की अभीप्सा थी।
इन संवेदनशील लोगों में रवींद्रनाथ ठाकुर का नाम प्रमुख है। उनको ही
यह गौरव जाता है कि उन्होंने खजुराहो के मंदिर बचा लिए। क्योंकि महात्मा गांधी और उनके एक बड़े शिष्य पुरुषोत्तमदास टंडन खजुराहो के मंदिरों को फिर मिट्टी में दबा देने के लिए आयोजन कर रहे थे। उनका कहना था कि ये मंदिर दबा दिए जाने चाहिए। कभी अगर पुरातत्व की किसी खोज-बीन के लिए जरूरत हो तो मंदिर की मिट्टी हटा कर उनका अध्ययन किया जा सकता है। बस उस अध्ययन के काम के लिए कभी सौ, दो सौ वर्ष में एक बार इनको उघाड़ा जा सकता है, अन्यथा ये दबा दिए जाने चाहिए।

और जब महात्मा गांधी और पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे लोग प्रस्तावना कर रहे हों तो कौन इनकार करता? मैं तो उस वक्त था नहीं इनकार करने को। लेकिन रवींद्रनाथ ने बड़ी हिम्मत की, बड़ा साहस किया। हालांकि उस साहस में भी, मैं जो कहता हूं वह बात नहीं थी। उन्होंने तो इतना ही कहा कि ये सुंदर मूर्तियां हैं, कलाकृतियां हैं, इनको मिट्टी में दबाना अशोभन होगा।
ये सिर्फ सुंदर कलाकृतियां ही नहीं हैं, ये सुंदर मूर्तियां ही नहीं हैं, इनके पीछे एक पूरी जीवन-दर्शन की प्रक्रिया थी। इनके पीछे काम को राम में बदलने का पूरा विज्ञान था। वही तंत्र था।
तुम जो कहते हो यही मेरी आकांक्षा है कि यह मेरी मधुशाला जीवंत खजुराहो हो। इसलिए तो मुझे इतनी गालियां पड़ रही हैं। जब मंदिर, मुर्दा मंदिर, पत्थर की मूर्तियों तक को महात्मा गांधी मिट्टी में दबा देने को राजी थे, इच्छुक थे, तैयार ही थे... और रवींद्रनाथ ने बाधा न डाली होती तो यह घटना घट ही गई होती। रवींद्रनाथ के विरोध में महात्मा गांधी हिम्मत न जुटा सके। लेकिन मंदिरों को बचाने से क्या होगा? मंदिरों की पूरी जीवन-दृष्टि भी तो बचनी चाहिए। मैं उसी जीवन-दृष्टि को बचाने की कोशिश में लगा हूं। पुनर-आविष्कार कर रहा हूं।
भारत में तंत्र के विनाश के साथ ही धर्म की गरिमा खो गई। फिर धर्म हो गया पाखंड, झूठ, दमन, एक मानसिक रुग्णता। और धर्म के नाम पर फैला घना पाखंड। मेरी लड़ाई उसी पाखंड से है।
तपन चौधरी, तुम भी अगर इस महत क्रांति में सम्मिलित होना चाहते हो तो जरूर सम्मिलित हो जाओ। कोई और शर्त नहीं है, बस एक ही शर्त है--ध्यान। क्योंकि ध्यान करोगे तो ही समझ पाओगे, तो ही समझ पाओगे, नहीं तो मेरी हर बात गलत समझी जाएगी। मेरी हर बात गलत समझी जा रही है। मैं कुछ कहता हूं, कुछ उसके अर्थ निकाले जाते हैं। उनका भी कोई कसूर नहीं है। कसूर मेरा ही है कि मैं कुछ ऐसी बातें कह रहा हूं जो सदियों से नहीं कही गई हैं। मैं कुछ ऐसी बातें कह रहा हूं जिन बातों को बिल्कुल हमने दबा दिया था, जिन स्वरों

को हमने दबा दिया था, जिन तारों को तोड़ डाला था, जिनसे यह संगीत उठ सकता था।
मैं कुछ भूले-बिसरे सुर फिर से छेड़ रहा हूं। उनको सुनने वाले खो गए हैं।
उनको समझने वाले खो गए हैं। मुझे न केवल नए स्वर छेड़ने हैं, फिर से नए उनको समझने वाले भी पैदा करने हैं।
तपन चौधरी, तुम्हारा स्वागत है। उन सबका स्वागत है जो इस उत्सव को समझ सकते हैं। कम से कम इतना तो तुमने किया कि तुमने इस उत्सव को देख कर अपने को भाव-विभोर पाया। ऐसे ही थोड़े-से लोग भी अगर भारत में बने रहे तो वह जो आग राख में दब गई है, उसे फिर उभारा जा सकता है। ऐसे ही थोड़े-से लोग तो भारत में जिंदा लोग हैं, बाकी तो मुर्दों की कतार। बाकी तो यह देश क्या है, मोहनजोदड़ो है। मोहनजोदड़ो का मतलब होता हैः मुर्दों का टीला। इसमें कभी कोई एकाध जिंदा आदमी कहीं निकल आता है। उन्हीं जिंदा आदमियों को मैं इकट्ठा करने में लगा हूं।

मगर जिंदा होना भर काफी नहीं है; उस जिंदगी में ध्यान की सुगंध भी होनी चाहिए, तो ही मैं जो कह रहा हूं, वह समझ में आ सकेगा। और तब तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा कि शाश्वत धर्म की यह नई अभिव्यक्ति है। जीवन को प्रेम करने वाला धर्म, जीवन का निषेध करने वाला नहीं। जीवन के राग और जीवन के रंग को स्वीकार करने वाला धर्म; जीवन का दुश्मन नहीं, जीवन के प्रति घृणा से भरा हुआ नहीं, निंदा से भरा हुआ नहीं।
नहीं ऐसी अभिव्यक्ति कहीं है आज, इसलिए तुम देखते कैसे, सुनते कैसे? इसलिए तो मैं अकेला पड़ गया हूं। इस बड़े बीहड़ जंगल में मैं अकेला पड़ गया हूं। मेरा साथ देने के लिए बस कुछ थोड़े-से हिम्मतवर लोग हैं। कभी मुश्किल से कोई हिम्मतवर आदमी धार्मिक जगत से साथ दे पाता है।
जैसे कुछ दिन पहले सूरत के कबीरपंथी मठ के महंत खेमदासजी साहब ने पत्र लिखा कि हरि के मुझे अभी दर्शन नहीं हुए, लेकिन हरिदर्शन के लिए आंखें प्यासी हैं, आना चाहता हूं। यह हिम्मत कोई महंत कर सके, नई बात है। उसके थोड़े दिन पहले स्वामी विष्णुदास ने बड़ौदा में एक वक्तव्य में कहा था--कोई हिंदू संन्यासी यह कह सके, यह हिम्मत की बात है--कि अगर कहीं भी पाना हो धर्म को तो मेरी तरफ उन्होंने इशारा किया कि वहां चले जाओ; अगर कहीं कोई जीवित सूत्र पाना हो तो उस जगह पाया जा सकता है। ऐसा मुश्किल से कभी कोई... इस देश में जहां पचास लाख हिंदुओं के संन्यासी हैं, जहां हजारों जैनों के मुनि हैं, जहां हजारों मुसलमानों के फकीर हैं, पीर हैं, औलिया हैं, कभी कोई एकाध व्यक्ति... ।
ठीक ऐसी ही एक खबर--पत्र स्वयं उन्होंने लिखा था अजमेर से--मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के जो प्रमुख हैं, एक मुसलमान, उन्होंने चाहा था कि आना चाहता हूं। मैंने उन्हें खबर भी भेजी कि आओ! लेकिन फिर उनका उत्तर भी नहीं आया। मैंने अजमेर के संन्यासियों को भी खबर भेजी कि उनसे जाकर पूछना कि क्या हुआ! संन्यासियों ने खबर दी कि वे तो आना चाहते हैं, लेकिन अनुयायी रुकावट डाल रहे हैं। वे कहते हैं कि अगर गए तो यह ठीक नहीं होगा। क्योंकि चिश्ती की दरगाह का प्रधान जाए तो यह तो बड़ी लांछन की बात हो जाएगी। तब उनको राजनीति आ गई होगी, ख्याल आया होगा, कहीं पद न छिन जाए, बदनामी न हो जाए। मेरे पास आना हो तो बदनामी तो सुनिश्चित है।
तपन चौधरी, शर्त सिर्फ एक है और कोई शर्त नहीं--ध्यान में डूबो। ध्यान में डूबे तो प्रेम में भी अपने आप डूब जाओगे। और उस प्रेम में, जो प्रेम साधारण प्रेम नहीं; जो व्यक्तियों पर नहीं चुक जाता, वरन जो अनंत तक फैलता चला जाता है। व्यक्तियों से निश्चित शुरुआत होती है, लेकिन अनंत पर उसका फैलाव होता है। व्यक्ति द्वार बन जाते हैं--लेकिन द्वार आकाश के। और तब जो मैं कह रहा हूं और जो मैं कर रहा हूं, उसको ठीक-ठीक तुम समझ पाओगे। न केवल समझ पाओगे, बल्कि जी भी पाओगे, क्योंकि बिना जीए समझा नहीं जा सकता। और जिसने समझा वह बिना जीए रुक नहीं सकता है।
सबका स्वागत है। मगर सिर्फ साहसी ही प्रवेश कर सकेंगे। किसी को रुकावट नहीं है। लेकिन कमजोरों को, अंधों को, पक्षपातियों को इकट्ठा कर लेकर क्या करना है? उन तक मेरी बात पहुंच ही न पाएगी। उनके हृदय के चारों तरफ इतनी सख्त दीवारें हैं कि उनको पार करना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

उन्हीं दीवारों को पिघलाने के लिए ध्यान की शर्त लगाता हूं, क्योंकि ध्यान तुम्हारे विचारों को समाप्त कर देता है, तुम्हारे पक्षपातों का अंत कर देता है, राख कर देता है जला कर। रह जाता है शुद्ध चैतन्य। और उस शुद्ध चैतन्य का एक ही परिणाम होता है कि तुम्हारे बाहर के जगत में प्रेम की किरणें फूटने लगती हैं। जैसे दीया जले तुम्हारे घर में और तुम्हारे खिड़की, द्वार-दरवाजों से उसकी रोशनी बाहर जाने लगे। ऐसा ही ध्यान का जब दीया जलता है तो तुम्हारे खिड़की, द्वार-दरवाजों से, तुम्हारी आंखों से, तुम्हारे हाथों से, तुम्हारे कानों से, तुम्हारी वाणी से, तुम्हारी श्वासों से प्रेम बहने लगता है--सहस्र धाराओं में।
प्रेम और ध्यान, इन दोनों की संयुक्त कीमिया का नाम तंत्र है। और तंत्र धर्म की अलौकिक अभिव्यक्ति है। पुराने तरह के दकियानूसी धर्मों का वक्त तो जा चुका। अब एक भविष्य आ रहा है, जिसमें सिर्फ तंत्र की आधारशिला पर कोई मंदिर बनेगा तो बचेगा। सिर्फ खजुराहो के मंदिर ही बचेंगे, बाकी मंदिरों के दिन लद चुके। मस्जिदों के, गिरजों के दिन लद चुके। लेकिन उतने दूर की दृष्टि तो बहुत कम लोगों की होती है। जो उतने दूर देख सके वही तो पैगंबर है, वही तो प्रोफेट है। जो भविष्य को आज देख सके, जो कल होने वाला है उसको आज पहचान सके--वही तो तीर्थंकर है।
मैं यहां तीर्थंकर खड़े कर रहा हूं, पैगंबर खड़े कर रहा हूं, प्रोफेट्स खड़े कर रहा हूं। जैसे ही तुम्हारा ध्यान गहरा होगा और तुम्हारे प्रेम की ऊर्जा बहेगी, तुम भविष्य को स्पष्ट देख सकोगे। पुराने धर्म अतीत-निर्भर थे। मेरा धर्म वर्तमान में जड़ें गड़ाता है और भविष्य में उसकी शाखाएं उठेंगी। यह धर्म है, जिसमें फूल खिलेंगे आनंद के, उत्सव के--रस से भरे हुए, सुगंध से भरे हुए, रंग भरे हुए। यह धर्म है इंद्रधनुषों का।
इंद्रधनुष प्रतीक है पृथ्वी को आकाश से जोड़ देने का। मैं पृथ्वी के
भी प्रेम में हूं और आकाश के भी प्रेम में। मैं पदार्थ के भी प्रेम में हूं और परमात्मा के भी प्रेम में। मैं प्रेम के सेतु से परमात्मा और पदार्थ को जोड़ देना चाहता हूं। मैं पदार्थवादी ही नहीं हूं, मैं अध्यात्मवादी ही नहीं हूं; मैं दोनों एक साथ हूं। अगर तुम समझ सको पदार्थवाद धन अध्यात्मवाद, तो तुम तंत्र को समझ लोगे। और जो तंत्र को समझेगा वही मुझे समझ सकता है।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
चौथा प्रवचन

बुद्ध का शून्यः मीरा की वीणा

पहला प्रश्नः ओशो, भारत के लोग सदियों से गुलाम और गरीब रहने के कारण भयानक हीनता के भाव से पीड़ित हैं, और इसलिए पश्चिम का अंधानुकरण कर रहे हैं। क्या यह अंधानुकरण अस्वस्थ नहीं है? और क्या उन्हें अपना मार्ग और गंतव्य स्वयं ही नहीं ढूंढना चाहिए? इस संदर्भ में आप हमें क्या मार्गदर्शन देंगे?

मृत्युंजय देसाई, यह प्रश्न तो महत्वपूर्ण है, लेकिन उत्तर शायद तुम्हें चोट पहुंचाए। क्योंकि इस प्रश्न के भीतर और बहुत-से प्रश्न छिपे हैं, शायद तुम्हें उनका बोध भी न हो।
सबसे महत्वपूर्ण बात तो विचारणीय यह है, जैसा तुम कहते हो कि भारत के लोग सदियों से गुलाम और गरीब रहने के कारण भयानक हीनता के भाव से पीड़ित हैं, पूछना यह चाहिए कि सदियों से भारत के लोग गुलाम और गरीब क्यों हैं? इनकी गुलामी और गरीबी का कारण कहां है? इनकी गुलामी और गरीबी की बुनियाद कहां है? जड़ें कहां हैं? यूं ही तो गुलाम और गरीब नहीं हैं। कोई दिन दो-चार दिन के लिए, माह दो माह के लिए, वर्ष दो वर्ष के लिए जबरदस्ती गुलाम बनाया जा सकता है; लेकिन दो हजार वर्षों तक कोई जबरदस्ती गुलाम बनाया जा सकता है? और जो भी आया उसी ने गुलाम बना लिया! और छोटी-छोटी कौमें--हूण आए, शक आए, तुर्क आए, मुगल आए, अंग्रेज आए, पुर्तगाली आए--जो आया, जिनकी कोई सामर्थ्य न थी, जिनकी कोई संख्या न थी, वे इस विराट देश को गुलाम बनाते चले गए!
जरूर इस देश की आत्मा में गुलाम रहने की कोई छिपी हुई संभावना है। यह देश जैसे निमंत्रण देता है गुलामी को। ये विजेता यूं ही नहीं चले आए; जैसे अनजाने में हमने इन्हें आमंत्रण भेजा था कि आओ। शायद हमें भी पता न हो कि हमने कब आमंत्रण भेजा, मगर दूर-दूर से विजेता आते रहे, तो जरूर हमारे पास कुछ बात होगी। वह बात क्या है? और कहीं ऐसा तो नहीं है कि उसी को तुम अपना भारत, अपनी भारतीय संस्कृति और अपना भारतीय धर्म कहते हो? अगर ऐसा हुआ तो बहुत मुश्किल हो जाएगी।
मेरे देखे, वही तुम्हारी संस्कृति है और वही तुम्हारा धर्म है--वही, जिसने तुम्हें गुलाम रखा और जिसने तुम्हें गरीब रखा। गरीब तुम और भी पुराने दिनों से हो। गुलामी तो बाद में आई, गरीबी तो सनातन है। भारत एक ही सनातन धर्म को तो जानता है, वह है गरीबी। जो कहानियां तुमने सुनी हैं कि कभी भारत सोने की चिड़िया था, उन कहानियों में मत भटक जाना। जिनके लिए कभी भारत सोने की चिड़िया था उनके लिए अब भी भारत सोने की चिड़िया है। वे थोड़े-से लोग। लेकिन निन्यानबे प्रतिशत लोगों के लिए कहां का सोना, कैसी सोने की चिड़िया! वे सदा से गरीब रहे हैं, वे सदा से भूखे रहे हैं। असल में वे भूखे रहे हैं, इसीलिए कुछ लोग सोने की चिड़ियां ढाल सके। वे गरीब रहे, इसलिए कुछ लोग सोने के महल खड़े कर सके।
तो तुम जिसे अपने भारत की निजता कहते हो, अगर उस निजता में ही कहीं कोई रोग हो, तब बहुत सोच-समझ कर विचार करना होगा। नहीं तो निजता को बचाने में तुम आत्मघात कर लोगे। और मेरे देखे तुम्हारी निजता में ही रोग है।
भारत गुलाम रहा, क्योंकि भारत ने बाहर के जगत को माया कह कर इनकार कर दिया। तुम्हारे शंकराचार्य, तुम्हारे आदर के जो बड़े पात्र हैं, वे ही जिम्मेवार हैं। तुम्हारे शास्त्र, जिन्होंने कहा बाहर का जगत तो स्वप्नवत है, उन्होंने ही तुम्हें गुलाम बनाया। अब अगर बाहर का जगत स्वप्नवत है तो गुलाम रहे कि मालिक रहे, क्या फर्क पड़ता है! रात सपने में गरीब रहे कि अमीर रहे, सुबह जाग कर तो सब खो जाता है। रात के सपनों का मूल्य ही क्या है?
एक बार जब इस देश ने इस मूढ़तापूर्ण बात को अंगीकार कर लिया कि संसार माया है, तो गुलामी की आधारशिला रख दी गई। तो जो संसार को यथार्थ मानते थे, उनसे तुम कैसे जीतते? तुम संसार को झूठ मानते थे; उनकी टक्कर में तुम्हें

हारना पड़ा, जो संसार को यथार्थ मानते थे। क्योंकि उन्होंने यथार्थ के ढंग से युद्ध किए और तुम्हारे लिए तो बात सपने की थी; हार हुई कि जीत, सब बराबर। हारे तो भी सपना है, जीते तो भी सपना है। और सभी को मिट्टी में मिल जाना है-- भिखमंगे को भी और सम्राट को भी।
तुम ऐसी-ऐसी अच्छी बातें कहने में कुशल हो गए! तुमने थोथी बातों को ऐसे सुंदरशृंगार दिए! तुमने अपनी मूढ़ता को ऐसी बातों में ढांका, ऐसा आडंबर पहनाया। उसका तुमने फल भोगा। किसी और ने तुम्हें गुलाम नहीं किया। तुम गुलाम होने को आतुर थे। यह जिम्मेवारी किसी और पर मत छोड़ना। यह जिम्मेवारी तुम्हारी है।
और जब तक यह देश जगत को यथार्थ नहीं मानेगा, तब तक इस देश में सौभाग्य
का उदय नहीं हो सकेगा। क्योंकि जो यथार्थ ही न हो जगत, तो विज्ञान कैसे जन्मेगा? और विज्ञान शक्ति है। सपनों का तो क्या विज्ञान बनेगा! कैसी भौतिकी, कैसा रसायनशास्त्र, कैसा गणित? सपनों का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। तो तुम कैसे न्यूटन पैदा करोगे, कैसे एडीसन पैदा करोगे, कैसे आइंस्टीन पैदा करोगे, कैसे रदरफोर्ड पैदा करोगे? अगर जगत माया है तो इन सबकी कोई जरूरत नहीं।
तुम पैदा करोगे कहीं मुक्तानंद, कहीं अखंडानंद--भोंदुओं की एक जमात,
जो उन्हीं-उन्हीं बातों को तोतों की तरह तुम्हें दोहराते रहें और तुम्हारी खोपड़ी में वही गोबर भरते रहें सदियों पुराना और तुम्हें गौमूत्र पिलाते रहें, क्योंकि यह तो पंचामृत है! गोबर मिला लो, गौमूत्र, दूध, घी, दही, पांचों को मिला कर गटक जाओ--पंचामृत हो जाता है! और गऊ की पूजा करो, क्योंकि वैतरणी जब पार करोगे तो यही गऊमाता, इसकी ही पूंछ पकड़ कर वैतरणी पार कर पाओगे। सो गऊमाता की पूजा करो, संसार माया है ऐसा समझो, हार-जीत में कुछ सार नहीं, धन व्यर्थ है। जब धन व्यर्थ है तो पैदा कैसे करोगे? व्यर्थ को कोई पैदा करने में लगता है?
तुम्हारी गुलामी के बीज शंकराचार्य के इस वक्तव्य में हैं--ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या। यह तुम्हारी गुलामी का बीज-मंत्र हैः जगत मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है। तो स्वभावतः जो मिथ्या है, उसमें क्या छीना-झपटी करनी? जो है ही नहीं, उसके लिए क्या लड़ना? आए सिकंदर, आए नादिरशाह, आए चंगेजखान, क्या पड़ी हमें! सपनों को लूट कर ले जाएं, ले जाएं! पागल हैं, अज्ञानी हैं! हम तो ज्ञानी, अपनी धूनी रमाए बैठे रहेंगे! हम तो अपनी माला पर राम-राम जपते रहेंगे! हम तो आंख बंद रखेंगे। ये बाहर के ठीकरे जिनको इकट्ठे करने हों वे कर लें!
और फिर तुम कहते हो कि हम सदियों से गरीब रहे। कौन जिम्मेवार है? चंगेजखान नहीं, तैमूरलंग नहीं, नादिरशाह नहीं, सिकंदर नहीं--शंकराचार्य तुम्हारी गुलामी की आधारशिला रख गए। और एकाध शंकराचार्य होते तो ठीक था, सदियों-सदियों से उसी तरह के लोग, वही बकवास! आज भी वही बकवास जारी है। और मगन भाव से लोग पी रहे हैं इसी कूड़ा-करकट को! इसी को निचोड़-निचोड़ कर, इन्हीं शास्त्रों को दुह-दुह कर अभी भी सत्संग चल रहा है! बीसवीं सदी में भी इस देश में अभी अमावस की रात है, सुबह नहीं हुई।
सुबह उस दिन होगी जिस दिन तुम इस सूत्र को स्वीकार करोगे कि जगत भी सत्य है और ब्रह्म भी सत्य है। मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं, दोनों सत्य हैं। और दोनों ही सत्य हों तो ही सत्य हो सकते हैं, एक सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि ब्रह्म है भीतर और जगत है बाहर। अगर बाहर का हिस्सा झूठ है तो भीतर का हिस्सा सच नहीं हो सकता। जिस सिक्के का एक पहलू झूठ है, उस सिक्के का दूसरा पहलू सत्य नहीं हो सकता। या तो दोनों पहलू झूठ होंगे, या दोनों पहलू सत्य होंगे। जिस मटकी के बाहर का हिस्सा तो झूठ है, क्या तुम सोचते हो उस मटकी के भीतर का हिस्सा सच होगा? बाहर और भीतर एक ही मटकी को बनाते हैं। कबीर ने गुरु की परिभाषा में कहा है कि गुरु शिष्य के साथ वही करता है
जो कुम्हार मटकी के साथ करता है। जब कुम्हार मटकी बनाता है तो एक हाथ से भीतर सहारा देता है और एक हाथ से बाहर थपकी देता है, तब कहीं मटकी बनती है। भीतर भी सत्य है, उसको भी सहारा देना है; और बाहर भी सत्य है, उसको भी थपकी देनी है। तब कहीं मटकी का आकार आता है। तब कहीं मटकी निर्मित होती है।

हम एक अत्यंत मूर्खतापूर्ण, जड़तापूर्ण दार्शनिकता से परेशान रहे हैं--भीतर तो सत्य है और बाहर मिथ्या! अगर बाहर मिथ्या है तो भीतर यानी क्या? जब बाहर है ही नहीं तो भीतर क्या होगा? भीतर कुछ भी हो सकता है तो बाहर के संदर्भ में ही हो सकता है। हम इस तरह की बकवास कर रहे हैं कि जैसे तख्ता तो झूठ है और तख्ते पर लिखे हुए अक्षर सत्य हैं। जब तख्ता ही झूठ है तो उस पर लिखे अक्षर कैसे सत्य होंगे? जब देह ही झूठ है तो देह के भीतर विराजमान चेतना कैसे सत्य होगी? झूठ के भीतर सत्य कैसे विराजमान हो सकता है? अगर जगत झूठ है तो उसको बनाने वाला कैसे सत्य हो सकता है? उसको चलाने वाला कैसे सत्य हो सकता है?
जगत तो झूठ है, लेकिन ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा चल रही है, जय-जयकार चल रहा है! क्योंकि उन्होंने संसार बनाया--और संसार मिथ्या है! जो है ही नहीं उसको बनाया कैसे? जो है ही नहीं उसको बनाया क्यों? और जो है ही नहीं उसको बनाने वाले कैसे हो सकते हैं? किसको धोखा दे रहे हो?
यह तो यूं हुआ, जैसे स्कूल में एक शिक्षिका ने अपने बच्चों को कहा कि
जो भी तुम्हें बात प्यारी हो, उसकी तस्वीर बनाओ। और सारे बच्चों ने तस्वीर बनाने में घंटों लिए। एक छोटा बच्चा, टिल्लू गुरु, चंदूलाल मारवाड़ी का बेटा, एकदम उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा, यह रही तस्वीर!
शिक्षिका भी हैरान हुई। अभी वह कह भी नहीं पाई है पूरी बात और तस्वीर
बन भी गई! उसने टिल्लू गुरु की तस्वीर देखी, वहां कुछ भी न था, कोरा कागज था। उसने कहा, यह किस चीज की तस्वीर है?
टिल्लू गुरु ने कहा, यह आधुनिक कला है। जरा गौर से देखिए। गाय खेत में
चर रही है।
शिक्षिका ने कहा, यहां तो कोई खेत दिखाई पड़ता नहीं। अरे, खेत हरा होता
है और यह तो कोरा सफेद कागज है!
टिल्लू गुरु मुस्कुराए, जैसे ज्ञानियों को मुस्कुराना चाहिए। इसीलिए
तो उनका नाम टिल्लू गुरु! मुस्कुराए और बोले कि अब हरी घास कहां से होगी, गाय तो घास चर गई!
शिक्षिका ने पूछा, चलो यह भी ठीक कि गाय घास चर गई, मगर गाय कहां है? टिल्लू गुरु और भी मुस्कुराए। उन्होंने कहा कि जब गाय घास चर गई तो घर चली गई। अब गाय यहां क्या भाड़ झोंकेगी? अब जब घास ही नहीं बची तो गाय क्यों रुके?
न गाय है, न घास है--और तस्वीर पूरी हो गई! और परमात्मा ने यह विराट सृष्टि रची--और यह सब मिथ्या है! न गाय, न घास! और परमात्मा महान सर्जक है! खूब आधुनिक कला जानता है तुम्हारा परमात्मा!
जिन्होंने तुम्हें समझाया है कि जगत झूठ है, उन्होंने तुम्हारे पैरों
के नीचे से जमीन खींच ली। उन्होंने तुम्हें नपुंसक बना दिया। उन्होंने तुम्हें दीन बना दिया, हीन बना दिया। और उन्हीं की तुम अभी भी पूजा किए चले जा रहे हो। अब भी तुम्हें बोध नहीं आया, होश नहीं आया। अब भी तुम्हें अकल नाम की चीज छू भी नहीं गई!
पहली तो बात है कि जगत सत्य है। और जगत सत्य हो तो फिर जगत से ऊर्जा निर्मित होती है, फिर जगत की ऊर्जा को काम में संलग्न किया जा सकता है। फिर जगत की ऊर्जा को संपत्ति में बदला जा सकता है। फिर विज्ञान होगा, तकनीक होगा, उद्योग होंगे।
पश्चिम अगर समृद्ध हो गया है तो यूं ही नहीं हो गया है। कोई परमात्मा खुश नहीं हो गया कि उसने खुश होकर एकदम छप्पर फाड़ दिया और धन बरस गया। आदमी ने मेहनत की है। और आदमी मेहनत कर सका, क्योंकि पश्चिम कभी इस मूर्खतापूर्ण विचार में नहीं पड़ा कि जगत माया है। बहुत और गलतियां की होंगी पश्चिम ने, लेकिन यह बुनियादी गलती नहीं की कि जगत माया है। और इस बुनियादी गलती के न करने के कारण शक्तिशाली हो सका। और शक्ति में ही आ जाती है संपदा।
यहां तो हरेक कोई समझा रहा है कि सुख धन से नहीं पाया जा सकता। चाहे जिस सत्संग में चले जाओ--जैनों का सत्संग हो, कि हिंदुओं का सत्संग हो, कि ईसाइयों का सत्संग हो, कि मुसलमानों का सत्संग हो--इस देश में तो जो भी

सत्संग चल रहे हैं वे एक ही बात समझा रहे हैंः सुख धन से नहीं खरीदा जा सकता।
कहा किसने तुमसे कि सुख धन से खरीदा जा सकता है? लेकिन और चीजें खरीदी
जा सकती हैं--रोटी खरीदी जा सकती है, कपड़े खरीदे जा सकते हैं, छप्पर खरीदा जा सकता है। और सुख तो बहुत बाद की जरूरत है, पहले रोटी तो चाहिए, कपड़े तो चाहिए, छप्पर तो चाहिए। ये ही न होंगे तो सुख कैसे होगा? माना कि धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता, लेकिन धन से वे चीजें खरीदी जा सकती हैं जिनके बिना सुख कभी नहीं पाया जा सकता।
मैं तुमसे यह दूसरा सत्य भी बहुत स्पष्ट भाषा में कह देना चाहता हूंः
धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता, लेकिन धन के बिना भी सुख की संभावना नहीं बचती। जिन्होंने तुमसे कहा है कि धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता, उनसे तुम यह पूछो कि क्या निर्धनता से सुख खरीदा जा सकता है? यह सवाल ही कोई नहीं पूछता। क्या निर्धनता से सुख खरीदा जा सकता है? लेकिन यही छिपी हुई तर्क पद्धति हैः धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता, इसका मतलब है कि निर्धन होने में बिल्कुल मजा है। क्यों चिंता में पड़ते हो धन की? जब धन से सुख मिलना ही नहीं और न मालूम कितनी अशांति, चिंता, विचार पैदा होंगे; इससे तो निर्धन होना अच्छा।
तो महावीर ने धन छोड़ दिया, इसलिए हम पूजा करते हैं महावीर की। तो फिर दरिद्रता के लिए क्यों रोते हो? बुद्ध ने महल छोड़ दिए, इसलिए हम पूजा करते हैं बुद्ध की। तो फिर दरिद्रता के लिए आंसू क्यों बहाते हो? तो तुम ज्यादा धन्यभागी हो बुद्ध और महावीरों से; उनको तो बेचारों को धन छोड़ना पड़ा। भगवान की तुम पर बड़ी अनुकंपा है, तुम्हें दिया ही नहीं! तुम्हें पहले से ही बुद्ध और महावीर की स्थिति में पैदा किया।
महावीर को तो कपड़े छोड़ने पड़े, इतनी चेष्टा तो करनी ही पड़ी। वह काम भगवान ने तुम्हारे लिए पहले ही कर दिया, बिना ही कपड़ों के भेज दिया। महावीर को तो उपवास करके बड़ी मेहनत से साधना करनी पड़ी; इस देश में आधे देश को तो भगवान उपवास करवा ही रहा है। जिनको उपवास नहीं करवा रहा है, वे भी कम से कम एकासन कर रहे हैं, एक ही बार भोजन लेते हैं। भोजन भी ज्यादातर कचरा है, जिसमें न तो पौष्टिकता है, न वे सूक्ष्म तत्व हैं जिनसे बुद्धि विकसित होती है; जिसमें बुनियादी रूप से कमी है; जिसमें वैज्ञानिक रूप से अभाव है। मगर धन से सुख नहीं खरीदा जा सकता; इसलिए धन के पीछे क्यों दौड़ना? इसलिए धन को पैदा करने में क्यों लगना? और धन में है ही क्या! अरे, हाथ का मैल है!
क्या-क्या बातें! और अब भी तुम इन बातों को सुन रहे हो। तीन हजार, चार हजार साल से यह बकवास चल रही है, इसका फल भी खूब भोगा। सारी जिंदगी कांटों से छिद गई। जहां फूल की शय्याएं हो सकती थीं, वहां कांटे ही कांटे बिछ गए। और अभी भी तुम्हें ख्याल है इस बात का कि भारत को अपनी निजता... ।
और तुम्हारी निजता क्या है? तुम निजता को खोजने कहां जाओगे? तुम इसी सड़े-गले अतीत में अपनी निजता को खोजोगे--इन्हीं शास्त्रों में, इन्हीं गुरुओं में, इन्हीं पाखंडियों में, इन्हीं ऊंची-ऊंची बातें करने वालों में, जिन्होंने तुम्हें गड्ढों में गिरा दिया। बातें तो उनकी आकाश की हैं, लेकिन पहुंचा दिया पाताल में। बातें बड़ी प्यारी, लेकिन परिणाम बड़े कष्टपूर्ण। क्या तुम्हारी निजता? तुम्हें थोड़ी अपनी निजता खोनी होगी। यह अतिशय निजता का आग्रह घातक सिद्ध हुआ है, अब और नहीं। बहुत हो चुका। तुमने पूछा, "भारत के लोग सदियों से गुलाम और गरीब रहने के कारण भयानक हीनता के भाव से पीड़ित हैं... ।"
मगर कौन इन्हें गरीब कर रहा है? कौन इन्हें दीन कर रहा है? कौन इन्हें दास बना रहा है? तुम्हारी मनोवृत्ति अभी भी पीछा नहीं छोड़ रही।
महात्मा गांधी दरिद्रों को नया नाम दे गए--दरिद्रनारायण। अब जब दरिद्र नारायण हो तो दरिद्र को मिटाना कैसे? नारायण को मिटाओगे क्या? नारायण की तो पूजा होती है। मंदिर में स्थापित करो गरीब को, पूजा करो इसकी! धन्यभागी है, गरीब है! अछूतों को हरिजन कह गए। हम तो शब्दों में बड़े होशियार हो गए हैं। कहां तो हम हरिजन कहते थे उन लोगों को जिन्होंने परमात्मा को पा लिया और कहां महात्मा गांधी भंगी-चमारों को हरिजन कह गए।

हरि को तो जाना नहीं और हरिजन हो गए! इससे तो अछूत शब्द अच्छा था। उसमें दंश था, पीड़ा थी। हरिजन शब्द तो बड़ा मिठास भरा हो गया। भीतर जहर है, ऊपर थोड़ी-सी चासनी है। अब गटक जाओ। अब तो हरिजन होने में बड़ा मजा आ गया! दरिद्रता को मिटाना है कि पूजा करनी है उसकी? दरिद्रनारायण! तो मंदिर बनाओ!
रवींद्रनाथ ने कहा है, मेरा परमात्मा तो वहां है जहां मजदूर पत्थर तोड़ रहा है। मेरा परमात्मा तो वहां है जहां किसान भरी दुपहरी में जब सूरज आग बरसाता है तो अपने खेत में बीज बो रहा है।
तो ठीक है, फिर जितने ज्यादा लोग सड़कों पर बैठ कर पत्थर तोड़ें, उतने ज्यादा भगवान। फिर जितनी धूप तेज बरसे और जितने लोगों का पसीना बहे, जितने लोगों का खून पसीना बने, उतने ज्यादा भगवान।
इस सारी रुग्ण अवस्था कोशृंगार दे-देकर सजा-सजा कर बचा रहे हो! और कौन
है जिम्मेवार इसके लिए? जिम्मेवार है तुम्हारा भाग्यवाद। सदियों से तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु और तुम्हारे पावन शास्त्र तुम्हें समझा रहे हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जैसा है वह भाग्य से निर्मित है। गरीब है तो भाग्य से और अमीर है तो भाग्य से। करने को तो कुछ बचता नहीं। भाग्य ही सब कुछ है तो पुरुषार्थ तो मर जाता है। पुरुषार्थ के लिए उपाय नहीं बचता। और संपदा पैदा होती है पुरुषार्थ से, भाग्य से नहीं। शक्ति पैदा होती है पुरुषार्थ से, भाग्य से नहीं। यह भाग्यवादी देश गरीब और गुलाम न होता तो क्या होता!
मगर अभी भी... अभी भी तुम बैठे हो ज्योतिषियों के पास जनम-कुंडली लिए हुए। अभी भी तुम हस्तरेखाविदों को हाथ दिखा रहे हो। और तुम्हीं नहीं, तुम्हारे तथाकथित नेतागण। दिल्ली में जितने ज्योतिषी और तांत्रिक और तरह-तरह के चालबाज और बेईमान इकट्ठे हो गए हैं, भारत में कहीं भी नहीं हैं। क्योंकि हर राजनेता को हस्तरेखा पढ़ने वाला, कुंडली का अध्ययन करने वाला, भविष्य बताने वाला--कि चुनाव में जीतोगे कि नहीं, कि किस घड़ी किस पहर में किस मुहूर्त में जाकर नामजदगी का फार्म भरो तो जीत निश्चित है; अगर जरा मुहूर्त-पल की भूल हो गई, अगर नक्षत्र यहां से वहां हो गए, तो हार हो जाएगी। हर राजनेता यज्ञ करवा रहा है कि कहीं उसे कोई हानि न हो जाए। क्योंकि उसके दुश्मन यज्ञ करवा रहे हैं हानि करवाने के लिए। तांत्रिकों ने अड्डा जमा रखा है दिल्ली में। साधारणजन ही मूढ़ नहीं हैं, तुम्हारे नेता महामूढ़ हैं। और फिर भी तुम किस निजता की बात कर रहे हो!
यह भाग्यवाद जला डालो! और जहां-जहां भाग्यवाद की लकीरें मिलती हों जिन-जिन शास्त्रों में, उनको भी खाक कर दो, उनसे छुटकारा कर लो। अगर भाग्य रहेगा तो भारत का दुर्भाग्य जारी रहेगा। यह भाग्य की धारणा ही महा जहर की तरह है, जो हमारे रक्त-मांस-मज्जा में समाविष्ट हो गया है। तुम गरीब इसलिए नहीं हो कि तुम्हारे भाग्य में विधाता ने लिख दिया कि तुम गरीब रहो। तुम गरीब इसलिए हो कि तुमने यह भाग्य की धारणा पकड़ ली। और भाग्य की धारणा पकड़ना सुगम मालूम पड़ी, क्योंकि पुरुषार्थ तो करना पड़ता है, श्रम करना होगा, चेष्टा करनी होगी, संघर्ष करना होगा, जूझना पड़ेगा प्रकृति से। भाग्य में आलस्य है, कुछ करने की जरूरत नहीं है, अब जो होना है वही होगा।
और छोटे-मोटे लोग ही भाग्य नहीं सिखा रहे हैं, तुम्हारे तथाकथित बड़े
से बड़े लोग भाग्य की ही बकवास कर रहे हैं। कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि तू मत डर, युद्ध कर! जिनको मरना है उनके भाग्य में मरना लिखा है, तू थोड़े ही मारने वाला है। परमात्मा पहले ही मार चुका है। वह तो लिख चुका है इनकी खोपड़ी में कि फलां घड़ी-मुहूर्त में मरोगे। अगर तू निमित्त न बनेगा तो कोई और निमित्त बनेगा। ऐसे अर्जुन को राजी कर लिया एक महा हत्या के लिए, जिसमें इतिहासज्ञों का अनुमान है कि अगर हम शास्त्रों की बात को प्रमाण मान लें कि अठारह अक्षौहिणी सेनाएं लड़ीं, तो करीब-करीब एक अरब से लेकर सवा अरब लोग मरे। इन सवा अरब लोगों के मारने के लिए कौन जिम्मेवार है? यह धारणा--कि जिनको मरना है वे मरेंगे और जिनको मारना है वे मारेंगे। यह सब तो नियति है। इसमें हमारे हाथ में क्या है?
जहां नियति की धारणा ऐसी छाती पर बैठी हो चट्टान की तरह, वहां गुलाम न होओगे तो क्या होओगे? नियति की धारणा का अर्थ ही गुलामी है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूंः तुम कोरा कागज लेकर आते हो। तुम्हारा भाग्य कोरा कागज है। फिर तुम्हें ही उस पर अपनी लिखावट लिखनी होती है। फिर जो चाहो लिखो। गालियां लिखनी हों गालियां लिखो और भजन लिखने हों तो भजन लिखो। गरीबी लिखनी हो तो गरीबी लिखो, अमीरी लिखनी हो तो अमीरी लिखो। तुम कोई नियति लेकर पैदा नहीं होते। प्रत्येक बच्चा शून्य की तरह पैदा होता है, निराकार से आता है, निराकार आता है; फिर स्वयं को आकार देता है; फिर स्वयं का निर्माता होता है।
कोई भाग्य नहीं है। भाग्य की विडंबना बहुत हो चुकी। और तुम अगर कहते
हो कि गुलामी और गरीबी के कारण भयानक हीनता के भाव से पीड़ित है, तो तुम गलत कहते हो। तुम भयानक हीनता के भाव से पीड़ित रहे, इसलिए गुलाम हुए, इसलिए गरीब हुए। तुम बैलों को गाड़ी के पीछे न बांधो।
मृत्युंजय देसाई, ठीक से देखने की कोशिश करो। हीनता का भाव तुममें पुराना है। गरीबी बाद में आई, गुलामी बाद में आई। हीनता का भाव भाग्य में ही निर्भर है--क्या कर सकते हैं हम, अवश हैं, विवश हैं, वहीं से हीनता पैदा हो जाती है। फिर हीनता का भाव पैदा होगा तो तुम किसी न किसी के पीछे चलोगे। या तो अपने अतीत का अंधानुकरण करोगे। अपने पंडित-पुरोहितों का अंधानुकरण करोगे। अपने राजनेताओं का अंधानुकरण करोगे। लेकिन करोगे अंधानुकरण ही। क्योंकि हीन व्यक्ति कर क्या सकता है! उसकी सामर्थ्य कितनी! वह तो हमेशा किसी का पल्लू पकड़ कर ही चलेगा। उसके लिए तो आगे कोई चाहिए, नहीं तो वह इंच भर न हिलेगा। वह तो लकीर का फकीर होगा। वह तो लीक पर चलेगा। वह तो भेड़ है, आदमी नहीं। और अगर इसमें ही चुनना हो कि भारत के सड़े-गले अतीत का पल्लू पकड़ कर चलना है कि पश्चिम का पल्लू पकड़ कर चलना है, अगर इन दो ही विकल्पों में चुनना हो, तो मैं कहूंगाः पश्चिम का पल्लू पकड़ कर चलना ज्यादा बेहतर है, कम से कम नया तो होगा।
हालांकि मैं नहीं मानता हूं कि ये दो ही विकल्प हैं; तीसरा भी विकल्प है। और मैं तीसरे विकल्प की चर्चा करूंगा। लेकिन अगर दो ही विकल्प हों तो मैं कहूंगा, यह बेहतर है कि पश्चिम का अंधानुकरण करो--अगर अंधानुकरण ही करने की जिद किए बैठे हो। यह मैं नहीं सुझा रहा हूं कि अंधानुकरण करो। मैं तो यह कह रहा हूं कि अंधानुकरण ही करना हो तो मनु महाराज की बजाय आइंस्टीन का अंधानुकरण करना बेहतर है। मैं तो यह कह रहा हूं कि अगर अंधानुकरण ही करना हो तो कोकशास्त्र की बजाय सिग्मंड फ्रायड का अंधानुकरण बेहतर है। मैं तो यह कह रहा हूंः अंधानुकरण ही करना हो तो बैलगाड़ी के पीछे चलने की बजाय हवाई जहाज में सवार होना बेहतर है।
पश्चिम प्रतीक है विज्ञान का आज, पुरुषार्थ का। मनुष्य की गरिमा की घोषणा है। जैसे तुम प्रतीक हो मनुष्य की हीनता के, मनुष्य की दीनता के, ऐसे पश्चिम आज मनुष्य की गरिमा का प्रतीक है, गौरव का प्रतीक है। मनुष्य ने जूझ कर जो पाया है, उसका प्रतीक है।
लेकिन ये ही दो विकल्प नहीं हैं। इसलिए मेरी बात को गलत मत समझना। मैं नहीं कह रहा हूं कि पश्चिम का अंधानुकरण करो। मैं तो कह रहा हूंः अंधानुकरण करो ही मत। और अब पूरब और पश्चिम का भेद मिटाना है। मेरी तो चेष्टा उस दिशा में है, पूरब और पश्चिम का भेद मिटाना है। यह सारी दुनिया एक है। इसलिए जहां जो सुंदर है, उसको चुनो। जब तुम एक सुंदर बगिया बनाते हो तो तुम सुंदर से सुंदर फूल चुनते हो। सारी दुनिया से फूल चुनो। जो फूल जहां सर्वाधिक सुंदर हो, वहां से चुनो। यह सारी दुनिया हमारी है। यह भेद-भाव क्या? यह पूरब और पश्चिम क्या?
और अगर पूरब-पश्चिम का भेद करोगे तो फिर गुजरात और महाराष्ट्र का भेद करने में कितनी देर लगेगी? तो महाराष्ट्रीयन कहेगा, क्यों हम गुजराती संस्कृति का अनुकरण करें? यह गरबा नृत्य नहीं चलेगा? हम तो तमाशा करेंगे! कि हम क्यों बंगालियों का अनुकरण करें? यह दुर्गोत्सव नहीं चलेगा। हम तो गणपति महोत्सव मनाएंगे। गणपति बाप्पा मोरया! यह हम दूसरे की मां क्यों मानें जब अपना बाप मौजूद है!
लेकिन फिर कहां रुकोगे? फिर महाराष्ट्र में भी मराठवाड़ा है, और फिर महाराष्ट्र में भी देशस्थ ब्राह्मण हैं और कोंकणस्थ ब्राह्मण हैं; फिर कहां रुकोगे? फिर पूना की अपनी संस्कृति है। कोई कोल्हापुरी चप्पलें

पहनोगे! पूना के हो कर शरम नहीं आती कि कोल्हापुरी चप्पलें पहने हुए हो! कैसी गुलामी, कैसी दीनता, कैसी हीनता! और पूना, जहां लोकमान्य तिलक हुए और गोखले हुए और क्या-क्या नहीं हुए! नाथूराम गोडसे तक हो गए! ऐसे महान पूना की संस्कृति और तुम कोल्हापुरी चप्पलें पहने हो, शरम नहीं आती? अरे, डूब मरो चुल्लू भर पानी में!
लेकिन कोल्हापुर की अपनी संस्कृति है, जहां एक शूद्र शिवाजी महाराज
हो गए। शूद्र थे, मगर तुम भूल ही गए कि शूद्र थे। क्योंकि इतना शोरगुल मचाया शिवाजी महाराज का कि ब्राह्मण तक भूल गया, वह तक फूल चढ़ा रहा है शिवाजी महाराज की मूर्ति पर। कोल्हापुर की अपनी अकड़ है! फिर मोहल्ले- मोहल्ले की अकड़ें हैं।
मैं जबलपुर में बहुत दिनों तक था। वहां गणेशोत्सव पर गणेश की बड़ी लंबी शोभायात्रा निकलती है। मगर उसमें बंटाव है। सबसे पहले ब्राह्मणों के मोहल्ले के गणेश होते हैं और सबसे आखिरी में चमारों के गणेश होते हैं। चमारों के ही गणेश हैं, पीछे ही होंगे, आगे कैसे हो सकते हैं! एक बार ऐसा हुआ कि ब्राह्मणों के मोहल्ले के गणेश जरा देर से पहुंचे और चमारों के गणेश आगे हो गए जुलूस में। जुलूस तो वक्त पर निकलना था सो निकला। मगर जैसे ही ब्राह्मणों के गणेश पहुंचे, ब्राह्मणों ने कहा, रुको। चमारों का गणेश आगे नहीं हो सकता! हटाओ! कमबख्त को पीछे करो! और चमारों के गणेश को पीछे जाना पड़ा--अरे, चमारों के ही गणेश हो, कोई अकल, कोई तरीका, कोई सलीका होना चाहिए! अपनी हैसियत से रहो!
तो कैसे तय करोगे? अब चमारों का गणेश चमार हो गया! और ब्राह्मणों के गणेश ब्राह्मण हो गए! वही गणेश, एक ही दुकान में बने हैं, एक ही आदमी ने रंगे-पोते, दोनों को जाकर नदी में सिरा देना है, दोनों एक ही नदी में विसर्जित हो जाएंगे। यह थोड़ी देर अरथी ढोने की बात है, किसकी अरथी आगे किसकी पीछे! मगर ब्राह्मणों के गणेश की अरथी आगे, चमारों के गणेश की पीछे-- अपनी हैसियत से ही होनी चाहिए सब बात! यह कहां रुकोगे तुम?
भारत का क्या अर्थ है? कभी बर्मा भारत का हिस्सा था; अब? कभी पाकिस्तान भारत का हिस्सा था; अब? कभी बंगला देश भारत का हिस्सा था; अब? अब बंगला देश की संस्कृति तुम्हारी संस्कृति है या नहीं? तुम्हारी निजता है या नहीं? और लाहौर और करांची, इनको भूल गए? अब ये तुम्हारे गौरव के प्रतीक हैं या नहीं?
ये भौगोलिक सीमाओं का कोई मूल्य नहीं है। और कहां पूरब खतम होता है और पश्चिम शुरू होता है, कोई बताए तो! जमीन गोल है। कहीं पूरब शुरू नहीं होता, कहीं पश्चिम समाप्त नहीं होता। तुम सोचते हो कि तुम पूरब हो और इंग्लैंड पश्चिम है। और जापानी सोचते हैं कि तुम पश्चिम हो, क्योंकि जापान सूर्य के उदय का देश। लेकिन जापान के भी पूरब में कोई और है, और उसके भी पूरब में कोई और है। जमीन अगर गोल है तो तुम किसी के पूरब में हो और किसी के पश्चिम में हो। तुम जहां भी हो दोनों हो--पूरब भी और पश्चिम भी। राष्ट्रों की यह धारणा ही अंधी है।
मृत्युंजय देसाई, तुम कहते हो कि हम हीनता के भाव से पीड़ित हैं, इसलिए पश्चिम का अंधानुकरण कर रहे हैं।
अंधानुकरण तुम सदियों से कर रहे हो; किसका कर रहे हो, यह और बात है। अंधा कभी इसके पीछे चलेगा, कभी उसके पीछे चलेगा। जो मिल जाएगा उसी के पीछे चलेगा। अंधे को तो पूछना ही पड़ेगा। अंधे को तो किसी का सहारा लेना ही पड़ेगा।
मैंने सुना, एक अंधा रास्ते के किनारे खड़ा था, उसको पार जाना था रास्ते के। उसके पास ही एक और आदमी खड़ा था। उसने कहा, भाई, मुझे रास्ता पार करवा दो। दोनों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़ा और दोनों रास्ता पार कर लिए। अंधे ने दूसरे को कहा कि भई धन्यवाद, बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं कि मुझे रास्ता पार करवा दिया। वह दूसरा हंसा और उसने कहा कि सच बात यह है कि मैं भी अंधा हूं और मुझे भी रास्ता पार करना था, एक से दो भले, सो मैंने सोचा कि तुम्हारा हाथ पकड़ लूं चलो। मैं भी अंधा हूं, धन्यवाद तुम्हारा कि तुमने मुझे पार करवा दिया!

यहां अंधे अंधों का अनुसरण कर रहे हैं, अंधे अंधों के हाथ पकड़े हुए हैं। फिर तुम किस अंधे का पकड़ते हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? यह तुम्हारी पुरानी आदत है। दकियानूसी होना तुम्हारी पुरानी आदत है। तो तुम पश्चिम का अंधानुकरण करोगे।
लेकिन समझदारी भी हो सकती है। अंधानुकरण बिल्कुल छोड़ा जा सकता है। न
तो अपने अतीत का अंधानुकरण करो, क्योंकि उसमें कुछ भी ऐसा महत्वपूर्ण नहीं; न किसी और का अंधानुकरण करो। एक बार तय करो कि अंधानुकरण ही छोड़ देंगे, अपनी आंखें खोलेंगे। और अपनी आंखें खोलने वाला व्यक्ति जहां जो सुंदर होगा वहां से चुन लेगा।
पश्चिम में विज्ञान सुंदर है, जरूर चुन लो; और पूरब में ध्यान सुंदर है, जरूर चुन लो। पश्चिम के लोगों से भी मैं यही कहता हूंः तुम्हारे पास विज्ञान सुंदर है, उसे छोड़ मत देना। और तुम्हारे पास ध्यान नहीं है, उसे इसलिए मत रोक रखना कि वह पूरब का है। जैसा मृत्युंजय देसाई परेशान हैं, ऐसा ही पश्चिम के लोग भी परेशान हैं।
एम्स्टरडम विश्वविद्यालय ने मेरे संबंध में एक व्याख्यानमाला शुरू
की है, छह महीने तक चलेगी। उसमें मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, चिकित्सक, दार्शनिक, धर्मशास्त्री, सभी को आमंत्रित किया है। आखिर हालैंड में मेरे संबंध में छह महीने तक व्याख्यानमाला चलाने का प्रयोजन क्या है? प्रयोजन में उन्होंने यह कहा है कि हमें यह खतरा पैदा हो गया है कि हालैंड से रोज लोग पूना जा रहे हैं, कहीं हमारे युवक भारत के अंधानुकरण में न पड़ जाएं। उनको इस अंधानुकरण से रोकना जरूरी है।
पश्चिम के बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने लिखा है कि पश्चिम
को अपना योग खुद खोजना चाहिए, अपना ध्यान भी खुद खोजना चाहिए, पूरब का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए।
यह बड़े मजे की बात है। जैसे कि पश्चिम का ध्यान कुछ अलग हो सकता है! ध्यान का मतलब होता हैः निर्विचार होना। जुंग ने भी खूब मूढ़ता की बात कही! मगर रहे होंगे मृत्युंजय देसाई जैसे ही। जैसे कि ध्यान भी पूरब और पश्चिम का हो सकता है! अरे, ध्यान तो सिर्फ ध्यान है, वहां कहां पूरब और कहां पश्चिम!
गुस्ताव जुंग भारत आया था। ताजमहल देखने गया, खजुराहो गया, कोणार्क गया, अजंता-एलोरा गया। महर्षि रमण जिंदा थे। अनेक लोगों ने उससे कहा कि महर्षि रमण के पास जाओ। क्योंकि अगर पूरब की जो गहरी से गहरी खोज है वह समझनी है--जिससे कि खजुराहो पैदा हुए और अजंता-एलोरा पैदा हुए और ताजमहल पैदा हुआ, जिस चेतना से ये सारी अनूठी कृतियां जन्मी हैं--जब महर्षि रमण जैसा व्यक्ति जिंदा हो तो जाकर उसके चरणों में थोड़ी देर बैठो। वह नहीं गया। उसने कहा कि मैं नहीं जाऊंगा। पश्चिम को अपना ध्यान, अपना योग स्वयं खोजना है; हम किसी का अंधानुकरण नहीं करेंगे।
न तो ध्यान पश्चिम का होता है, न पूरब का। ध्यान का अर्थ होता हैः निर्विचार होना। जहां विचार ही न रहे वहां पूरब और पश्चिम का विचार कैसे रह जाएगा? ध्यान का अर्थ होता हैः भीतर जागरूकता। अब जागरूकता भी कोई पूरब-पश्चिम की होती है? कि गोरा आदमी जागेगा तो गोरी जागरूकता और काला आदमी जागा तो काली जागरूकता! कि लंबी नाक वाला जागा तो लंबी जागरूकता और चपटी नाक वाला जागा तो चपटी जागरूकता! क्या पागलपन की बातें कर रहे हो! मगर ये पागलपन की बातें छोटे-छोटे लोगों ने नहीं कीं। जुंग पर मत हंसो। तुम्हारे बड़े-बड़े लोग भी यही कहते रहे। महावीर ने कहा है कि स्त्री की देह से मोक्ष नहीं है। यह वही बात है। इसमें कुछ भेद नहीं है। क्या स्त्री ध्यान करेगी तो ध्यान में कुछ फर्क होगा पुरुष के ध्यान से? अगर स्त्री शांत होगी तो शांति उसकी स्त्रैण होगी और पुरुष की पुरुष होगी? शांति! मौन! इसमें भी स्त्रीलिंग और पुल्लिंग आ जाएंगे? जब भीतर सन्नाटा होगा, अनाहत का नाद बजेगा, तो वहां भी कोई स्त्री और पुरुष होगा? लेकिन महावीर ने कहा है कि स्त्री-पर्याय से कोई मोक्ष नहीं जा सकता। स्त्री- पर्याय से ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि कोई खूब तपश्चर्या करे, खूब ध्यान करे, तो अगले जन्म में पुरुष हो। फिर पुरुष के जन्म को पाकर, पुरुष की देह पाकर मोक्ष उपलब्ध होगा।

और ये सारे लोग, जो कहते हैं देह मिट्टी है, फिर स्त्री-पुरुष की देह में ऐसा क्या फर्क है? अगर देह मिट्टी है तो जिस मिट्टी से एक पुतली बनी है उसी से पुतला बना है। अब पुतला-पुतली में इतना क्या फर्क कर रहे हो? और इनकी आत्मा तो मिट्टी नहीं है! और आत्मा को मोक्ष जाना है, मिट्टी को मोक्ष जाना नहीं है। मिट्टी यहीं पड़ी रह जाएगी--स्त्री की भी और पुरुष की भी। और जब तुम स्त्री को जला आते हो मरघट पर, या पुरुष को, तो क्या राख से पता लगा सकोगे कि जिसको जलाया वह स्त्री थी कि पुरुष था? मिट्टी तो बस मिट्टी है। मगर महावीर तक को अड़चन है।
जैनों में एक तीर्थंकर स्त्री थी, लेकिन जैनियों को यह बात बरदाश्त
के बाहर रही कि कोई स्त्री और तीर्थंकर हो जाए! रही होगी स्त्री बहुत बलशाली--इतनी बलशाली कि जब जिंदा थी तो मानना ही पड़ा। महावीर से भी ज्यादा बलशाली रही होगी; क्योंकि स्त्री का और तीर्थंकर होना और मनवा लेना लोगों को, साधारण बात न रही होगी। बड़ी हिम्मत की स्त्री रही होगी। मल्लीबाई उसका नाम था। लेकिन मरते ही जैनियों ने उसका नाम बदल दिया, मल्लीनाथ कर दिया। मैं तो जैन घर में पैदा हुआ--दुर्भाग्य से! मगर दुर्भाग्य से कहीं न कहीं पैदा होना ही पड़ता है। हिंदू घर होता, कि मुसलमान घर होता, कि ईसाई घर होता, सभी दुर्भाग्य। अभी सौभाग्य से पैदा होना तो असंभव ही है। आगे संभावना हो जाएगी। मेरे संन्यासियों के घर जो बच्चे पैदा होंगे, वे सौभाग्य से पैदा होंगे, क्योंकि वे न हिंदू होंगे, न मुसलमान होंगे, न ईसाई होंगे; वे सिर्फ मनुष्य होंगे।
मुझे बचपन में यह कभी पता ही नहीं चला कि चौबीस तीर्थंकरों में एक स्त्री थी, क्योंकि मल्लीनाथ के नाम से तो पता ही नहीं चलता। मूर्तियां भी तुमने जाकर जैन मंदिरों में देखी होंगी, चौबीसों मूर्तियां पुरुषों की हैं। मल्लीनाथ की प्रतिमा भी पुरुष की है। क्या बेईमानी है! यह तो बाद में मुझे पता चला कि मल्लीबाई थी।
उसको, मल्लीबाई को कैसे स्वीकार करें, क्योंकि वह उनकी पूरी धारणा के विपरीत जाती है। स्त्री मोक्ष चली जाए, मोक्ष ही न चली जाए, तीर्थंकर हो जाए! और जरूर हिम्मतवर औरत रही होगी--नग्न होना। क्योंकि जैनियों में तो तीर्थंकर होने के लिए नग्न होना अनिवार्य है। बड़ी हिम्मत की स्त्री रही होगी। आज होती तो मेरी संन्यासिनी होती। कपड़े फेंक दिए होंगे, और जुझारू रही होगी। रही होगी, जैसा कि रानी झांसी--खूब लड़ी मर्दानी! बड़ा संघर्ष करना पड़ा होगा। लेकिन मरते ही जैनियों ने लीपा-पोती कर दी। उसको मल्लीनाथ कर दिया। प्रतिमा तक पुरुष की बना दी। एक भी स्त्री की प्रतिमा नहीं है! क्यों स्त्री देह से मोक्ष नहीं हो सकता?
वही जुंग भूल कर रहे हैं। वे भी सोचते हैं कि ध्यान पूरब का अलग है, पश्चिम को अपना मार्ग खोजना पड़ेगा; जैसे मृत्युंजय देसाई कह रहे हैं। विज्ञान में तुम क्या खाक अपना मार्ग खोजोगे? और क्या जरूरत है खोजने की? तीन सौ साल पश्चिम ने मेहनत की और तीन सौ साल की मेहनत में विज्ञान खड़ा हुआ, तुम क्या नया कर लोगे? तुम जोड़ोगे तो दो और दो पांच हो जाएंगे क्या? वे चार ही रहेंगे, पश्चिम में जोड़ो कि पूरब में। तुम पानी को गरम करोगे तो क्या तुम सोचते हो कि पुण्यभूमि भारत में पानी सौ डिग्री से पहले ही गरम हो जाएगा? कि पुण्यात्मा लोग पानी गरम कर रहे हैं, परमहंस लोग पानी गरम कर रहे हैं, तो क्या इतनी देर लगानी, जरा जल्दी ही हो जाओ। वह सौ डिग्री पर ही गरम होगा; सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा, चाहे पश्चिम में बनाओ, चाहे पूरब में बनाओ। क्या तुम सोचते हो कि तुम अणु का विस्फोट करोगे तो तुम कुछ और खोज लोगे जो पश्चिम ने खोजा? वही न्यूट्रॉन, वही इलेक्ट्रॉन, वही पाजिट्रॉन। तुम क्या सोचते हो बिजली की तुम खोज करोगे तो कुछ और कर लोगे?
यह मूर्खतापूर्ण बात होगी कि पश्चिम की तीन सौ साल की महत खोज को तुम इनकार करो और सोचो कि हम अपना मार्ग खुद बनाएंगे। तो क ख ग से सीखना पड़ेगा। तो तुम पश्चिम से हमेशा पीछे रहोगे और हमेशा बुद्धू गिने जाओगे। न तो मैं कहता हूं पश्चिम से कि तुम ध्यान खोजो, क्योंकि पूरब ने कोई पांच हजार वर्षों में ध्यान खोजा है। यह संपदा सहज ही मिलती है, इसको क्यों इनकार कर रहे हो?
लेकिन जुंग इनकार करता है। वह कहता है हम योग भी अपना बनाएंगे।

पश्चिम में शीर्षासन करोगे तो किस तरह से करोगे? शीर्षासन तो ऐसे ही करना होगा। इसमें क्या फर्क करोगे? पद्मासन लगाओगे तो पश्चिम में कुछ और ढंग से लगाओगे? सिद्धासन में बैठोगे तो किसी और ढंग से बैठोगे? वही करना होगा। पांच हजार साल की खोज को सिर्फ इसलिए झुठलाओगे, क्योंकि वह भारत में हुई? यह वही पागलपन हुआ जैसे कि हम पश्चिम की खोजों को झुठलाएं; हम कहें कि हम तो फिर से खोजेंगे पेनिसिलिन, हम पश्चिम की पेनिसिलिन को नहीं मानेंगे, हम तो भारतीय शुद्ध, स्वदेशी पेनिसिलिन खोजेंगे। कि हम तो रेलगाड़ी बिल्कुल अपनी ही खोजेंगे, हम तो हवाई जहाज अपना खोजेंगे!
जो खोज हो चुकी, किसी ने भी की हो, खोज होते ही वह पूरी मनुष्य-जाति की संपदा हो जाती है। पश्चिम ने विज्ञान खोजा है, वह सबका हो गया; इस पर कोई पश्चिम की बपौती न रही। पूरब ने ध्यान खोजा है, वह सबका हो गया; इस पर कोई पूरब की बपौती न रही। पूरब का ध्यान, पश्चिम का विज्ञान, दोनों मिल जाएं तो आदमी पहली दफे समग्र हो, तो आदमी पहली दफा अधूरा न रहे, अपंग न रहे। अभी तो लंगड़ा-लंगड़ा कर चल रहा है; एक टांग तुम्हारे पास, एक टांग उनके पास। वे भी एक टांग से कूद रहे हैं, तुम भी एक टांग से कूद रहे हो।
तुमने कहानी सुनी है न पंचतंत्र की? एक जंगल में आग लग गई। उस जंगल में
एक अंधा था और एक लंगड़ा था। दोनों भिखारी। मगर बड़े समझदार रहे होंगे। उन्होंने जल्दी से निर्णय कर लिया कि हम साथ हो जाएं, क्योंकि अंधे को दिखाई नहीं पड़ता था; लंगड़े को दिखाई पड़ता था लेकिन चल नहीं सकता था। लंगड़ा देख सकता था कि आग लगी है, कहां से रास्ता है, लेकिन चलने में असमर्थ था। अंधा चल सकता था, लेकिन देख नहीं सकता था कि कहां आग है और कहां आग नहीं है।
दोनों जुड़ गए। अंधे ने लंगड़े को अपने कंधे पर बिठा लिया। यूं आंखों और हाथों का जोड़ हो गया। अलग-अलग तो दोनों मर जाते; इकट्ठे हो कर दोनों बच गए।
अंधा बता नहीं सकता था, चल सकता था, चलता रहा; लंगड़ा चल नहीं सकता था, बता सकता था, बताता रहा--कि यूं मुड़ो यूं मुड़ो, यहां चलो यहां चलो, बचो इधर से। लंगड़ा देखता, अंधा चलता। दोनों संयुक्त हो गए।
करीब-करीब ऐसी अवस्था है मनुष्यता की आज। आधी संपदा भारत के पास है, जैसे आंखें भारत के पास हैं। लेकिन भारत लंगड़ा है; विज्ञान के पैर उसके पास नहीं हैं। पश्चिम के पास विज्ञान की शक्ति है--पैर हैं, बलशाली पैर हैं। चांद तक पहुंच गया है; बलशाली पैर होने ही चाहिए। कल और तारों तक पहुंच जाएगा। लेकिन ध्यान की आंख नहीं है, अंतर्दृष्टि नहीं है। इसलिए कितने ही दूर निकल जाए, दूर निकल कर भी क्या करेगा? देखने को, समझने को जो प्रज्ञा चाहिए, उसका अभाव है।
काश ये अंधे और लंगड़े मिल जाएं! पूरब की आंख और पश्चिम के पैर, पूरब का ध्यान और पश्चिम का विज्ञान, तो हम एक अखंड मनुष्यता को जन्म दे सकते हैं। इसलिए मैं यह नहीं कहता हूं कि अंधानुकरण करो किसी का, लेकिन इतना जरूर कहता हूं कि इस कारण बचना भी मत कि यह पश्चिम का है, हम तो अपना चरखा चलाएंगे, कि हम तो तकली कातेंगे, कि हम तो अपने पूर्वजों को ही मान कर चलेंगे, कि हम तो गंडा-ताबीज बांधेंगे, कि हमारे बाप-दादे ऐसा करते रहे तो हम अन्यथा कैसे कर सकते हैं! तो फिर बाप-दादों पर जो गुजरी, वही तुम पर गुजरेगी--वही गरीबी, वही गुलामी, वही हीनता का भाव।
और पश्चिम को भी मैं यही कहता हूं। पूरब से कहना चाहता हूं बाहर के जगत के सत्य को स्वीकार करो और पश्चिम को कहना चाहता हूं भीतर के जगत के अस्तित्व को स्वीकार करो। पूरब ने अब तक कहा हैः ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। और पश्चिम ने कहा हैः जगत सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है। ये दोनों ही बातें अपंग हैं, अधूरी हैं।
मैं कहता हूंः जगत भी सत्य है, ब्रह्म भी सत्य है; पदार्थ भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है। और ये दोनों सत्य एक ही सत्य के दो पहलू हैं। और जिस दिन हम इन दोनों सत्यों को एक साथ स्वीकार करने में समर्थ होंगे, उस दिन न तो पूरब को कोई हीनता की जरूरत है और न पश्चिम को। अभी दोनों हीन हैं--अलग-अलग दृष्टि से, मगर दोनों हीन हैं। अभी दोनों एक-दूसरे का अंधानुकरण करने को मजबूर हैं। यह अंधानुकरण मिट सकता है, सम्मिलन हो सकता है, समन्वय हो सकता है। ये दीवारें गिरानी हैं, ये दीवारें मिटानी हैं।
खलील जिब्रान के ये शब्द विचारणीय हैं--

मेरे दोस्तो! मेरे हमराहियो!
दया का पात्र है वह देश,
जहां धौंस देने वाले नेता माने जाते हैं! जो वैभवशाली विजेता को,
उदारता का जामा पहनाते हैं!
लानत भेजो उस राष्ट्र पर,
जिसके नेता लोमड़ी जैसे चालाक हों, जिसके दार्शनिक मदारी हों,
जिसकी कला पैबंद और भौंडी नकल मात्र हो! दया का पात्र है वह देश,
जो उन वस्त्रों को धारण करता है, जिन्हें वह खुद नहीं बनाता!
वह रोटी खाता है,
जिसकी फसल वह नहीं उगाता!
लानत भेजो उस देश पर,
जो विचार से लदा है,
लेकिन धर्म और संस्कृति से शून्य है! करुणा करो उस देश पर,
जो सपनों में जिस चीज से
नफरत करता है,
जाग्रत अवस्था में उसी के आगे
सिर झुकाता है!
दया का पात्र है वह देश,
जिसके संत-महात्मा
बूढ़े और गूंगे हैं!
और जिसके महापुरुष अभी
पालने में झूल रहे हैं!
लानत भेजो उस देश पर,
जो टुकड़ों में बंटा है
और हर टुकड़ा अपने को
एक राष्ट्र समझता है!

देखते हो हमारा देश, यहां राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र! दुनिया में ऐसा चमत्कार कहीं भी नहीं। छोटे डब्बे के भीतर बड़ा डब्बा! तुमने चीनी डब्बों की कहानियां सुनी हैं कि डब्बे के भीतर डब्बा, डब्बे के भीतर डब्बा... । लेकिन छोटे डब्बे के भीतर बड़ा डब्बा चीनी भी नहीं रख पाए, हमने वह भी चमत्कार करके दिखा दिया। राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र! कुछ शर्म भी नहीं, कोई संकोच भी नहीं। लानत भेजो ऐसे देश पर।
और यहां सब खंडों में बंटे हैं। बंगाली ऐसा नहीं मानता कि तुम्हारे साथ एक है। उसका देश, बात और है! बंगाली बात करता है तो लोगों से पूछता है, क्या भारत से आ रहे हो? बंग-भूमि! सोनार बांगला! बाकी भारतवासी। कितने खंडों में यह देश बंटा है! कितनी भाषाओं में यह देश बंटा है! कितनी जातियों में यह देश बंटा है! लानत भेजो ऐसे देश पर! यह गुलाम न होगा तो और क्या होगा? यह गरीब न होगा तो और क्या होगा? किन-किन छोटी-छोटी बातों पर झगड़े चलते रहते हैं! वर्षों हो गए, एक जिले के ऊपर महाराष्ट्र में और कर्नाटक में झगड़ा चल रहा है कि वह कहां होना चाहिए। छुरेबाजियां हो जाती हैं, दंगे- फसाद हो जाते हैं। और जिला जहां का तहां रहने वाला है। कहीं आएगा नहीं, कहीं जाएगा नहीं।
मैंने एक कहानी सुनी है कि जब भारत और पाकिस्तान बंटा, तो एक पागलखाना
था जो दोनों देशों की सीमा पर पड़ता था। अब पागलखाने को लेने में कौन उत्सुक था! न भारत को बहुत फिक्र थी, न पाकिस्तान को बहुत फिक्र थी। लेकिन अधिकारी चिंतित थे पागलखाने के कि पागलखाना कहां जाए! सीमा बिल्कुल बीच

से निकलती थी; आधा पागलखाना उधर पड़ जाता था, आधा इधर। आखिर उन्होंने कहा कि पागलों से ही पूछ लो कि तुम कहां जाना चाहते हो?
तो सारे पागल इकट्ठे किए गए। कोई दो-तीन हजार पागल उस पागलखाने में थे। उनकी बड़ी सभा हुई, बड़ी गुफ्तगू हुई। पागलों ने एक-दूसरे के कान में कुछ-कुछ फुसफुसाया और खूब खिलखिलाएं और हंसें। एक-दूसरे को गुदगुदाएं। अधिकारी बहुत हैरान हुआ कि बात क्या है, तुम इतने खुश किस बात से हो रहे हो?
उन्होंने कहा, हम इस बात से खुश हो रहे हैं कि हमारी कुछ समझ में नहीं आता, हम तो पागल हैं, मगर आप तो समझदार हैं। आप कहते हो कि हम भारत में रहें कि पाकिस्तान में। और हम पूछते हैं कि अगर हम पाकिस्तान में जाएंगे तो क्या हमारा पागलखाना पाकिस्तान में चला जाएगा, तो आप कहते हो कि नहीं- नहीं, पागलखाना तो यहीं रहेगा! हम पूछते हैं कि अगर हम भारत में जाएंगे तो क्या हमारा पागलखाना भारत में चला जाएगा; आप कहते हो, नहीं-नहीं, पागलखाना तो यहीं रहेगा, मगर तुम कहां जाना चाहते हो यह बताओ! इस पर हमें हंसी आ रही है। हमारी समझ में नहीं आता कि पागल हम हैं कि आप हो! अगर पागलखाना यहीं रहना है तो जाने का सवाल ही क्या? जब जाना ही नहीं कहीं तो हम क्यों यह निर्णय करें? इससे हमें बहुत हंसी आ रही है।
लाख समझाया अधिकारी ने। इधर से समझाया, उधर से समझाया, कि भई समझने की कोशिश करो; पागलखाना तो यहीं रहेगा, मगर तुम्हें कहां जाना है? जब देखा अधिकारी ने कि यह तो कोई रास्ता इनसे बन नहीं सकता, ये तो हंसते हैं, खिलखिलाते हैं, गुदगुदाते हैं, तो उसने कहा एक ही रास्ता है, बीच में से एक दीवार उठा दो। आधा पागलखाना पाकिस्तान में हो गया, आधा हिंदुस्तान में, बीच में से दीवार उठा दी गई।
मैंने सुना है कि अभी भी दीवार पर पागल चढ़ जाते हैं। पाकिस्तानी पागल, हिंदुस्तानी पागल कहलाते हैं आजकल वे। और अभी भी खिलखिलाते हैं, एक-दूसरे को गुदगुदाते हैं कि हद हो गई, बीच में एक दीवार क्या हो गई, तुम पाकिस्तानी हो गए, हम हिंदुस्तानी हो गए! हम पुराने दोस्त, पुराने नाते- रिश्ते, बस दीवार से टूट गए! दीवार पर चढ़ कर बैठ जाते हैं सर्दियों के दिनों में, खास कर इन दिनों में, और एक-दूसरे से खूब खिलखिला कर बातें करते हैं कि हद हो गई, क्या गजब हो गया, तुम भी वहीं हम भी वहीं, कोई कहीं गया नहीं, एक बीच में दीवार खड़ी हो गई, तुम पाकिस्तानी हो गए, हम हिंदुस्तानी हो गए! अब हम उस तरफ नहीं आ सकते, वीसा चाहिए। तुम इस तरफ नहीं आ सकते, वीसा चाहिए।
लानत भेजो ऐसे देश पर!
दया का पात्र है वह देश,
जहां धौंस देने वाले नेता माने जाते हैं।
मगर वही धौंस देने वाले तो तुम्हारे नेता हैं--तरह-तरह के दादा। जो तुम को जितना धमका सकें, डरा सकें, उनकी जेब में उतने ही मत चले जाते हैं। जो वैभवशाली विजेता को,
उदारता का जामा पहनाते हैं।
जो जीत जाता है, उसकी ही तुम स्तुति करने लगते हो। जो शक्ति में आ जाता है, उसके ही प्रशंसा-गीत शुरू हो जाते हैं, प्रस्तुति-गान शुरू हो जाते हैं। और यह तुमने सदियों से किया है। यह कोई आज की बात नहीं। यह गुलाम आत्मा का लक्षण है।
लानत भेजो उस राष्ट्र पर,
जिसके दार्शनिक मदारी हों।
लेकिन तुम कैसे लानत भेजोगे? तुम तो सत्य साईं बाबा को पूजोगे। घड़ियां कौन निकालेगा--कोई दार्शनिक, कोई ऋषि, कोई बुद्ध पुरुष? एच.एम.टी. में बनी हुई घड़ियां? लेकिन राख निकालो हाथ से--और इस देश में सम्मान का कोई अंत नहीं! कुछ भी मदारीपन करो और लोग राजी हैं, सम्मान देने को राजी हैं। सत्य के लिए कोई सम्मान नहीं है, मदारीपन के लिए सम्मान है। और क्या करोगे राख निकाल कर भी? राख की कोई कमी है? कुछ और निकालो। सत्य साईं बाबा को मैं कहता हूं कि निकालना है तो कुछ कोहिनूर निकालो। निकालना है तो कुछ ऐसी चीज निकालो।

मगर कोहिनूर तो नहीं निकालते। कोहिनूर लाएं कहां से निकालने को? राख निकालते हैं। राख तो इस देश में इकट्ठी ही है, इतने दिनों से मुर्दे मर रहे हैं और राख ही राख तो रह गई है। और तो कुछ बचा ही नहीं। अंगार तो बचे ही नहीं, राख निकालते हैं। लेकिन राख को भी हम विभूति कहते हैं। शब्द तो हम सुंदर देने में इतने कुशल हैं। राख को विभूति कह दिया कि बस दिल खुश हो जाता है। और राख कोई भी मदारी सड़क के किनारे निकाल देता है। कोई भी मदारी निकाल सकता है। मगर अगर सड़क के किनारे मदारी निकाले, बंदरिया को नचा कर निकाले, तो बेचारा गरीब मदारी, दो पैसे दे दो तो बहुत। मगर यही कोई महात्मा का रूप-रंग रख कर निकाले राख, तो बस सारा देश चरणों में झुका हुआ है।
लानत भेजो ऐसे देश पर,
जो विचार से लदा है,
लेकिन धर्म और संस्कृति से शून्य है।
और विचार से तुम लदे हो, बहुत लदे हो। विचार ही विचार से लदे हो। इतने
लद गए हो कि चल भी नहीं सकते हो, इतना वजन है। लेकिन न तो धर्म है और न संस्कृति है। बातें करते हो संस्कृति और धर्म की; वही तो विचार। विचार यानी संस्कृति और धर्म की बातें। लेकिन व्यवहार में न तो कोई संस्कृति है, न कोई धर्म है।
अब यहां पश्चिम से इतने संन्यासी मेरे पास हैं। जो व्यवहार उनके साथ भारतीय तथाकथित धार्मिक और सांस्कृतिक लोग कर रहे हैं, ये क्या खबरें ले जाएंगे पश्चिम में तुम्हारे बाबत! इनके सारे भ्रम टूट गए। ये आए थे इस ख्याल से कि भारत महान सांस्कृतिक और धार्मिक देश है। जा रहे हैं इस ख्याल से कि इससे ज्यादा बेहूदा और भोंडा कोई देश नहीं है, क्योंकि किसी पश्चिमी स्त्री का संन्यासिनी का सड़क पर निकलना मुश्किल है। भारतीय संस्कृति के रक्षक धक्का ही मार देंगे, च्यूंटी ले देंगे, कपड़ा ही खींच देंगे, साइकिल ही चढ़ा देंगे, कार से ही धक्का मार कर निकल जाएंगे। कितने बलात्कार करने की कोशिश की गई है! और कितनी हत्याएं!
अभी चार-छह दिन पहले एक युवा जर्मन संन्यासी की हत्या की गई। और हत्या
का कुल कारण इतना मालूम पड़ता है कि उसके पास एक बहुमूल्य गिटार था। और उसका गिटार हड़प लेने के लिए कुछ भारतीय पीछे पड़े हुए थे। और चूंकि वह एक दिन बाद ही जाने वाला था, उसी रात वह मुझसे विदा लेकर गया था और दूसरे दिन सुबह उसकी हत्या कर दी गई। और हत्या भी ऐसे भोंडे और बेहूदे ढंग से की गई-- कुल्हाड़ी से! यह भारतीय संस्कृति है! ये भारतीय संस्कृति के और धर्म के रक्षक हैं! और ये रक्षक मुझे गालियां दे रहे हैं!
यहां प्रति वर्ष कोई पचास हजार से एक लाख पश्चिम से संन्यासी आते हैं। एक भारतीय महिला पर किसी पाश्चात्य संन्यासी ने न तो धक्का मारा है, न बलात्कार करने की कोशिश की है। लेकिन कितने भारतीयों ने कितनी पाश्चात्य संन्यासिनियों के साथ अपनी सारी संस्कृति और अपने सारे धर्म को एक तरफ रख कर दुर्व्यवहार करने की कोशिश की है, इसका कोई हिसाब लगाने बैठे तो हैरानी होती है।
हर भारतीय पश्चिम से आए हुए व्यक्ति से चीजें झपट लेने में लगा हुआ है। घड़ी मिल जाए, रेडियो मिल जाए, टेप-रिकार्डर मिल जाए, जो मिल जाए, खींच लो, झपट लो। रोज चोरियां होती हैं। पुलिस के पास लाखों रुपए का सामान इकट्ठा हो गया है। लेकिन जब तक वह सामान इकट्ठा होता है, तब तक वह संन्यासी चला गया होता है। अब वे कहते हैं कि हम आश्रम को दे नहीं सकते, हम तो उसी व्यक्ति को देंगे।
अब उस व्यक्ति का कौन पता रखे कि वह व्यक्ति कहां से आया था! न्यूजीलैंड से आया था, कि कोरिया से आया था, कि केलिफोर्निया से आया था, कि स्वीडन से आया था, कौन पता रखे! किसकी घड़ी है, किसका गिटार है, किसका टेप रिकार्डर है! पुलिस के पास इतना सामान इकट्ठा है कि वे रोज यहां खबर भेजते हैं कि इसका क्या करें हम!
यह तुम्हारी भारतीय संस्कृति है! बस विचार ही रह गए हैं--थोथे विचार।
और भीतर सब तरह की गंदगी इकट्ठी है। और फिर भी तुम अपनी निजता बचाना चाहते हो।
करुणा करो उस देश पर,

जो सपनों में जिस चीज से
नफरत करता है,
जाग्रत अवस्था में उसी के आगे
सिर झुकाता है।
तुम जरा अपने सपनों और अपनी जागृति को तो गौर से देखो! जिसे तुम जागने में इनकार करते हो उसको सपने में भोगते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसका मित्र चंदूलाल कह रहा था कि कल रात गजब का सपना देखा, किसी को बताना मत। और देखो, टिल्लू गुरु की मां को बिल्कुल पता न चले। अब तुम तो अपने हो तो बिना कहे नहीं रहा जाता। रात यूं देखा सपने में कि एक तरफ हेमामालिनी बैठी है, एक तरफ परवीन बाबी बैठी है। दोनों नंग-धड़ंग! और नाव में नौका-विहार कर रहा हूं! पूरा चांद निकला हुआ है। ऐसा आनंद आ रहा था... ।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अरे हद हो गई! तो दोस्ती किस लिए है तुमसे? फिर मुझे क्यों नहीं बुलाया?
चंदूलाल ने कहा, बुलाया नहीं! क्या बातें करते हो! मैं तो गया था। मैंने तुम्हारी पत्नी को कहा भी, गुलबदन को, कि नसरुद्दीन कहां हैं? उसने कहा, वे ध्यान कर रहे हैं। सो मैंने कहा, ध्यान में बाधा देना उचित नहीं है।
नसरुद्दीन ने कहा, भाड़ में जाए ध्यान! अरे, ध्यान इन्हीं का तो कर रहा था। और कमबख्त तू मजा लूटता रहा, मैं सिर्फ ध्यान ही करता रहा। ध्यान किसका कर रहा था?
एक तो तुम्हारा बाहर का दिखावा है, पाखंड है, धोखा है, तुम्हारी जाग्रत जिंदगी का एक रंग-रूप है; और एक तुम्हारे सोने की दुनिया है, नींद की दुनिया है। सपने में तुम अपनी ज्यादा असलियत में होते हो। जाग्रत में तुम जिस बात को इनकार करते हो, सपने में उसको पूजते हो। सपने में जिसको इनकार करते हो, जाग्रत में उसको पूजते हो। तुम विभाजित हो। तुम खंडित हो। लानत भेजो उस देश पर,
जिसके संत-महात्मा
बूढ़े और गूंगे हैं।
तुम्हारे संत-महात्माओं की खूबी क्या है? गूंगा होना बहुत जरूरी है, क्योंकि अगर सत्य बोले तो मुसीबत हुई। मैं अनुभव से कह रहा हूं। जो सत्य है उसको वैसा ही कह देना मैं पसंद करता हूं, लेकिन उसके उत्तर में सिवाय गालियों के और कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए तुम्हारे संत-महात्मा गूंगे हो गए हैं, वे बोलते ही नहीं। उन्होंने तो महात्मा गांधी के तीन बंदरों से सिखावन ले रखी है।
वे तीन बंदर महात्मा गांधी को जापान से एक मित्र ने भेंट किए थे। वे जापानी बंदर हैं। जापान में उनका अर्थ और था, भारतीय संस्कृति के संदर्भ में उनका अर्थ बिल्कुल बदल जाता है। जापान में उनका अर्थ था कि जो बंदर अपने कानों पर अंगुलियां डाले बैठा है, उसका मतलब है कि बुरी बात मत सुनो। भारत में उसका मतलब बिल्कुल दूसरा हो जाता हैः सत्य बात मत सुनो। सुनी कि झंझट, सुनी कि खतरे में पड़े। जो सत्य बोल रहा है, वह भी खतरे में पड़ेगा और तुम भी पड़ोगे। इसलिए बेहतर है कि सुनो ही मत। जो बंदर मुंह पर हाथ लगाए बैठा है, उसका मतलब है--जापान में--कि बुरी बात मत कहो। भारत में उसका मतलब होता हैः सत्य बात मत कहो। कहा कि मुसीबत को बुलाया। और एक तीसरा बंदर है, जो आंखों पर हाथ रखे बैठा है। जापान में उसका मतलब होता हैः बुरी बात मत देखो। भारत में उसका अर्थ होता हैः जहां भी सत्य हो वहां एकदम आंखें बंद कर लेना। क्योंकि अगर देख लिया तो कहीं भूल-चूक से कह जाओ। अगर देख लिया तो कहना ही पड़ेगा। सत्य को देखो तो कहे बिना नहीं रहा जा सकता।
ये भारत के संत-महात्मा इन तीन बंदरों के जैसे हो गए हैं--लेकिन भारतीय अर्थ में। न सत्य बात देखो, न सत्य बात बोलो, न सत्य बात सुनो--और तुम्हारे जीवन में खूब समादर मिलेगा, खूब सत्कार मिलेगा। लोग जय-जयकार करेंगे, फूलमालाएं पहनाएंगे, और करना क्या है!
और तुम्हारे सारे महात्मा बूढ़े हैं। उम्र से ही होते तो कोई बात बुरी
न थी। उम्र से तो सभी को बूढ़ा होना पड़ता है। लेकिन बूढ़े हैं आत्मा से। सड़

गए हैं बिल्कुल। बूढ़े हैं, क्योंकि अभी भी पुराने को दोहरा रहे हैं, पिटे- पिटाए को दोहरा रहे हैं। बूढ़े हैं, क्योंकि सनातन-पुरातन उनके लिए सत्य का पर्यायवाची है। जब कि सत्य सदा नूतन है, नित नूतन है, प्रतिक्षण नया है और ताजा है। सत्य को वही जानता है जो प्रतिक्षण नए और ताजे के संपर्क में रहता है, सान्निध्य में रहता है। जो वर्तमान में जीता है वही सत्य को जानता है। और जो वर्तमान में जीता है वह सदा युवा रहता है। लेकिन तुम्हारे सब संत-महात्मा अतीत में जी रहे हैं। रामायण की कथा और श्रीमदभागवत की कथा और पुराण, सब व्यर्थ की बकवास, निन्यानबे प्रतिशत कचरा है; मगर उसको दोहरा रहे हैं। श्रोतागण सुन रहे हैं, महात्मागण दोहरा रहे हैं; दोनों मजे में हैं। न उन्हें प्रयोजन है सत्य से, न इन्हें प्रयोजन है सत्य से। सत्य तो झंझट लाता है, क्योंकि सत्य बगावत है, क्रांति है।
अभागा है वह देश।
लानत भेजो ऐसे देश पर,
जिसके महापुरुष अभी पालने में झूल रहे हैं।
लेकिन पालना ही झुलाते हैं हम तो। झांकी के दिन आ जाते हैं, कृष्ण कन्हैया पालने में झूलते हैं। कब तक कृष्ण कन्हैया को पालने में झुलाओगे? कृष्ण कन्हैया अगर जिंदा होते, उचक कर पालने के बाहर आ जाते। मुर्दा कृष्ण कन्हैया, उनको जब लिटाओ तो लेट जाते हैं, बिठाओ तो बैठ जाते हैं। किसी छोटे-से जिंदा बच्चे को तो ऐसा करके देखो--लिटाओ, उठाओ, बिठाओ। ऐसा उपद्रव मचाएगा... ।
एक छोटा बच्चा मुझसे कह रहा था कि मेरी मां बिल्कुल पागल है। तेरी मां
को क्या हुआ--मैंने पूछा। उसने कहा कि जब मुझे जागना होता है, तब मुझे सुलाती है। जब मुझे सोना होता है, तब मुझे उठाती है। अब इसको पागलपन न कहें तो और क्या कहें? रात को मुझे जागना है, सो वह सुलाती है, जबरदस्ती सुलाती है। दबा-दबा देती है। चारों तरफ से कंबल लपेट देती है। भूत-प्रेत का डर बतलाती है। अंधेरा करके दरवाजा बंद कर देती है। मजबूरी में सोना पड़ता है। और सुबह जब मुझे सोना है, मधुर-मधुर निद्रा आ रही है, मीठी-मीठी नींद, एक करवट और, तब वह एकदम पीछे पड़ जाती है कि उठो। ठंडा पानी आंखों पर मारती है। अरे, यहीं तक नहीं, कुत्ते को मेरे ऊपर फेंकती है।
मैंने कहा, कुत्ते को तेरे ऊपर फेंकती है! इससे तेरे जागने का क्या संबंध?
उसने कहा, आप समझे नहीं। मैं अपनी बिल्ली को साथ लेकर सोता हूं। सो कुत्ते को फेंक देती है। उन दोनों में ऐसा घमासान छिड़ता है कि मुझे उछल कर बाहर निकलना ही पड़ता है, कोई रास्ता ही नहीं रह जाता है। नहीं तो लोंच-खरोंच मेरी हो जाए।
ये कृष्ण कन्हैया को तुम झूला झुला रहे हो। इनको चक्कर आने लगा होगा, कितनी सदियां हो गईं। मुझे झूला बिल्कुल पसंद नहीं। मतलब मुझे खुद झूलना तो पसंद है नहीं, दूसरा भी झूलता हो तो मुझे देखना भी पसंद नहीं। मुझे देख कर भी चक्कर आता है कि यह क्या गधापच्चीसी है! झूले से मुझे हमेशा नफरत रही। कृष्ण कन्हैया पर मुझे दया आती है कि इन पर क्या गुजर रही होगी, कि झूलना हो कि न झूलना हो, झुलाए जा रहे हैं। झूला झूलें कन्हैया लाल! और जब दिल हो तब उनको लिटा दिया--चित करो, पट्ट करो, जैसा उनको करना हो; जब चाहो पट बंद कर दो, जब चाहो पट खोल दो। भोग लगाना हो, भोग लगा दो; भूखे रखना हो, भूखे रखो। क्या कर रहे हो तुम!
और तुम सोचते हो कि "यह पश्चिम का जो अंधानुकरण हो रहा है, क्या अस्वस्थ नहीं है?"
सभी अंधानुकरण अस्वस्थ हैं। कृष्ण का भी, राम का भी, बुद्ध का भी, महावीर का भी, मेरा भी, सब अंधानुकरण अस्वस्थ हैं। और अंधानुकरण ही नहीं, अगर तुम मुझसे पूछो तो अनुकरण भी अस्वस्थ है। क्योंकि अंधानुकरण शब्द में एक खतरा है, शायद तुम इसमें बचाव कर रहे हो। तुम कहोगे कि अनुकरण बात और है, अंधानुकरण बात और; अंधानुकरण नहीं होना चाहिए, अनुकरण होना चाहिए। मगर मैं तुमसे कहता हूंः सब अनुकरण अंधानुकरण होता है। आंख वाला अनुकरण करेगा ही क्यों! आंख वाला समझ कर जीता है, समझ कर चलता है, समझ कर उठता है, समझ कर

बैठता है। उसके भीतर अपनी ज्योति होती है। वह अपनी ज्योति के प्रकाश में चलता है।
और जिसके पास अपनी ज्योति है, वह किसी के पीछे नहीं चलता--न मनु के, न मोजेज के, न मोहम्मद के, न क्राइस्ट के, न कृष्ण के, न कनफ्यूसियस के। वह किसी के पीछे नहीं चलता। वह समझता सबको है। वह सबसे फूल चुन लेता है, लेकिन चलता है अपने बोध से। फूल भी चुनता है अपने बोध से।
न तो पश्चिम का अनुकरण करना है, न पूरब का अनुकरण करना है, न अतीत का अनुकरण करना है। अनुकरण ही नहीं करना है। बोध से जीना है। और काश हम दुनिया में बोध की हवा और वातावरण पैदा कर सकें! वही मेरा प्रयास है। काश हम जगत में बोध को सम्मान दे सकें, सत्कार दे सकें, तो न पश्चिम बचेगा, न पूरब बचेगा, न मुसलमान बचेंगे, न हिंदू बचेंगे, न ईसाई बचेंगे, न जैन बचेंगे, न बौद्ध बचेंगे--सिर्फ बोध बचेगा और बोध को उपलब्ध व्यक्ति बचेंगे। ऐसे ही व्यक्तियों से इस जगत में गौरव है, गरिमा है। ऐसे ही व्यक्ति इस जगत के नमक हैं।
बोध के इस नशे को पीओ। चौंकोगे तुम, क्योंकि मैं इसे बोध का नशा कहता हूं। आमतौर से सोचा जाता है बोध और नशा विपरीत चीजें हैं। मैं ऐसा नहीं सोचता। बोध से बड़ी कोई शराब नहीं, क्योंकि बोध जगाता भी है और गहरी मस्ती भी ले आता है; जगाता भी है और खुमारी भी देता है।

मैकदे से उठा के पिला साकिया
मैकदे में मेरा दम घुटा साकिया
मैकदे से उठा के पिला साकिया
परदा रुख से न चाहे हटा साकिया
मैं हूं तेरा बस इतना बता साकिया
मैकदे से उठा के पिला साकिया अपनी नजरों पे मुझको भरोसा नहीं
पास आके गले से लगा साकिया
मैकदे से उठा के पिला साकिया
मैं तेरी आंख का एक आंसू सही
पर नजर से न मुझको गिरा साकिया
मैकदे से उठा के पिला साकिया
परमात्मा से एक ही प्रार्थना करो कि मुझे होश की शराब पिलाओ; कि मुझे ऐसा होश से लबालब भर दो कि होश मेरी मस्ती हो जाए; कि मैं इतना होश से भर जाऊं कि बेहोशी भी मुझे बेहोश न कर सके; कि बेहोश भी रहूं, डगमगाऊं भी। यूं भी चलूं जैसे शराबी चलता है और यूं भी जैसे बुद्ध चलते हैं।
मैं बुद्ध में थोड़ी कमी पाता हूं। मैं मीरा में भी थोड़ी कमी पाता हूं। मीरा में होश की कमी है, बुद्ध में मस्ती की कमी है। मैं पश्चिम में थोड़ी कमी पाता हूं, मैं पूरब में थोड़ी कमी पाता हूं। लोगों ने आधे-आधे अंग को चुन लिया है, क्योंकि आधा-आधा अंग तर्कयुक्त मालूम होता है। पूरे को चुनने में बड़ी अतार्किकता हो जाती है, असंगति हो जाती है। मैं तो ऐसा व्यक्तित्व चाहता हूं पृथ्वी पर, जिसमें बुद्ध जैसा जागरण हो और मीरा जैसी मस्ती हो; बुद्ध जैसा शून्य हो और मीरा जैसे गीत हों। बुद्ध का शून्य जब मीरा के हाथ की वीणा बन जाए, तो समझना कि हमने पृथ्वी पर धर्म को अवतरित किया।

एक जाम और साकी--एक जाम और, एक जाम और।

रोज-रोज पीकर भी प्राण न अघाए।
जितना पीयो, प्यास बढ़ती ही जाए।
कुछ मय भी कड़वी, कुछ हमें पीना न आए।
कंप जाए जाम और मय ढुलक-ढुलक जाए।
ऐसे अब पिला कि नशा आके फिर न जाए।
सूली बने सेज, जहर अमरित हो जाए।
जुड़ जाए मीरा-मंसूरों में--एक नाम और, एक नाम और।

आंखों में जब मय के सुरूर हुए गहरे।
पांव हुए डगमग, पर मन के राही ठहरे।
बदले संदर्भ और अर्थ के ककहरे।
राम में दिखे कई दशानन के चेहरे।
फिर भी उनके सिर मर्यादा के सेहरे।
रावण में देखा है--एक राम और, एक राम और।

मैकदे के द्वार बिके राम की चदरिया।
जिस पर फिसले हर गाहक की नजरिया।
चादर का सूत-सूत रामरस भीना।
धन-पद से नहीं इसे जा सकता कीना।
उनका भी न काम, जिन्हें हिसाबों में जीना।
बोली वह लगाए, जो रखे जुआरी का सीना।
खुद को दे देना बस--एक दाम और, एक दाम और।
टूट गए सारे संबंधों के दरपन।
घर बाहर सभी ओर एक अजनबीपन।
कुछ टूटा-टूटा तन कुछ बिखरा-बिखरा मन।
घर में बाजार, बाहर भीड़ों का एक वन।
अपने भी पास नहीं अब तो अपनापन।
भीतर के गौतम को अब मिले एक वेणुवन।
बाहर के कान्हा को--एक धाम और, एक धाम और।

घिसे-पिटे नामों को तोते दुहराएं।
खुद भी भरमें, औरों को भी भरमाएं।
वहां से भी चूकें और यहां भी गंवाएं।
पर कुछ ऐसे पंछी, जिन्हें पिंजरे न भाएं।
रामरस चखें वे और नभ में चहचहाएं।
नामों में अब एक और अर्थ पाएं।
अर्थों को देना है--एक नाम और, एक नाम और।

जाने किस देश उड़े दूधिया उजाले।
छोड़ गए धरती को रात के हवाले।
चांद हुए अंधे, सूरज हुए काले।
हर कोई फंसा है, कौन किसको निकाले।
मौत की मकड़ी बुनती रोज नए जाले।
एक किरन-कलम मगर हर कोई है सम्हाले।
चलो, सुबहों के नाम लिखें--एक शाम और, एक शाम और।
एक जाम और साकी--एक जाम और, एक जाम और।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
पांचवां प्रवचन

प्रेम एक इंद्रधनुष है

पहला प्रश्नः ओशो, प्रेम क्या है? और क्या प्रेम कभी नष्ट भी हो सकता
है या नहीं?

राम किशोर, प्रेम एक इंद्रधनुष है। उसमें सभी रंग हैं--निम्नतम से लेकर श्रेष्ठतम तक, काम से लेकर राम तक। प्रेम कोई एक-आयामी घटना नहीं है, बहु-आयामी है। मूलतः तीन आयाम समझ लेने जरूरी हैं।
पहला आयाम तो शरीर का है। शरीर का प्रेम नाममात्र को प्रेम है। प्रेम
की भ्रांति ज्यादा प्रेम का अस्तित्व कम। एक प्रतिशत प्रेम, निन्यानबे प्रतिशत रसायनशास्त्र। एक प्रतिशत तुम, निन्यानबे प्रतिशत अचेतन प्रकृति। उसी तल पर पशु जीते हैं। उसी तल पर अधिकतम मनुष्य भी जीते हैं। और जिन्होंने प्रेम का पहला तल ही जाना, वे स्वभावतः प्रेम के दुश्मन हो जाएंगे। उस तरह के दुश्मनों ने ही धर्म को विकृत किया है। प्रेम की ऊंचाइयां जानी नहीं, प्रेम की क्षुद्रताओं को ही जाना--और तब प्रेम के विपरीत हो गए। और तब प्रेम से दुश्मनी कर ली। और तब प्रेम की तरफ पीठ करके भाग चले।
धर्म के नाम पर इतना पलायनवाद घटा है। धर्म के नाम पर जीवन का विरोध, जीवन की निंदा, जीवन का तिरस्कार, ऐसा घनीभूत मनुष्य के मन पर छा गया है कि लोग क्या कहते हैं, क्या करते हैं, क्या सोचते हैं, इस संबंध में कोई संगति भी नहीं रह गई।
कल ही मुझे एक पत्र मिला। एक संन्यासी ने, पुराने ढंग के, पुराने ढर्रे के संन्यासी ने लिखा है कि काम तो पवित्र है, उसको खिलवाड़ की तरह लेना ठीक नहीं। और उसी पत्र के अंत में लिखा है कि काम तो घृणित है, पाप है। एक ही आदमी, एक ही पत्र में पहले हिस्से में लिखता है काम पवित्र है और दूसरे हिस्से में लिखता है कि काम पाप है। इस आदमी को पता भी नहीं है यह क्या कह रहा है। अगर काम पवित्र है तो पाप कैसे हो जाएगा? और काम अगर पाप है तो फिर पवित्र कैसे हो जाएगा?
मगर ऐसी ही दुविधाओं से मनुष्य का मन भर गया है। और कारण यह है कि मनुष्य को पूरा प्रेम जीने का अवसर नहीं मिला। तो जो अवरुद्ध प्रेम की ऊर्जा रह गई है उसके भीतर, वह सड़ती है। ऊर्जा का नियम हैः या तो अभिव्यक्त करो या सड़ेगी। नदी बहे तो ठीक, रुक जाए तो गंदगी पैदा होगी। बहाव उसे स्वच्छ रखता है, प्रवाह उसे निर्मल रखता है--रुकी कि गंदी तलैया बनी। जिन्होंने प्रेम को शरीर के तल पर ही जाना, पशु के तल पर जाना, उन्होंने प्रेम में छिपी ईर्ष्या देखी, जलन देखी, वैमनस्य देखा, घृणा देखी, कलह देखी; उन्होंने प्रेम के नाम पर चल रहा स्त्री-पुरुषों का शोषण देखा; स्वभावतः घबड़ा गए। घबड़ाहट में भाग खड़े हुए। यूं भाग कर भी कुछ पाया नहीं जा सकता। भाग कर कभी कुछ नहीं पाया जा सकता। युद्ध के मैदान से भाग गए लोगों को तो हम कहते हैं भीरु, कायर, भगोड़े; और जीवन के मैदान से भाग गए लोगों को हम कहते हैं साधु, संत, महात्मा!
यह जीवन का युद्ध असली युद्ध है। बाकी सब युद्ध तो कुछ भी नहीं हैं। जीवन के युद्ध में ही निर्णय होना है कि कौन विजेता है। इससे जो भागा, वह परमात्मा से चूका। जिसने जीवन के प्रति पीठ कर ली, जो जीवन से विमुख हो गया, वह याद रखे कि परमात्मा से कभी सन्मुख न हो सकेगा। लेकिन उसके विमुख हो जाने का कारण क्या था? कारण यही था कि हमने प्रेम को शरीर के तल पर ही ठहरा दिया है।
एक फायदा है प्रेम को शरीर के तल पर ठहरा देने में। वह फायदा यह है कि प्रेम में थोड़ा स्थायित्व आ जाता है। शरीर मन से ज्यादा थिर है। बदलता है; लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता बदलता है। वैज्ञानिक कहते हैं, सात वर्ष लगते हैं तब कहीं शरीर बदल पाता है। सत्तर साल आदमी जीएगा तो दस बार शरीर बदल जाता

है। मगर आहिस्ता-आहिस्ता; और इतना छोटा-सा हिस्सा रोज बदलता है कि अधिकांश हिस्सा तो पुराना रहता है; इसलिए पुराने की प्रतीति बनी रहती है।
इसीलिए विवाह ईजाद किया गया कि प्रेम मन के तल तक न पहुंच पाए, शरीर के
तल पर ही रह जाए। शरीर के तल पर रह जाने में एक तरह का स्थायित्व है। इसलिए विवाह में हम फिकर करते हैं और सब बातों की, सिर्फ प्रेम की नहीं। ज्योतिषी से पूछते हैं, जन्म-कुंडलियां मिलाते हैं, हस्तरेखाओं की जांच करते हैं; वर के माता-पिता, प्रियजन, वृद्धजन, वधू के माता-पिता, प्रियजन, वृद्धजन, सब तरह का गणित बिठाते हैं, हिसाब लगाते हैं; सब खाता-बही जमाते हैं--धन कितना है, पद कैसा है, प्रतिष्ठा कैसी है, कुल कैसा है, भविष्य क्या है! एक बात भर बाद कर दी जाती हैः न तो पूछते हैं जिसका विवाह हो रहा है उससे, न पूछते हैं उससे जिसके साथ विवाह हो रहा है। उन दोनों को बाद कर देते हैं। वह बात गौण है। वह व्यर्थ है। उसे बीच में लाना उचित नहीं। उसे बीच में लाने में खतरा है। क्योंकि मन बहुत जल्दी रूपांतरित होता है, क्षण-क्षण में बदलता है। तो शरीर पर हमने प्रेम को ठहरा दिया। उसका नाम हमने विवाह रख दिया है। और विवाह को हम पवित्र कहते हैं।
विवाह अपवित्र है। इसी कारण अपवित्र है कि वह शरीर पर ही रुका हुआ है-- गंदा है। और विवाह की सड़ांध फिर लोगों को भगोड़ा बनाती है। ये जो लोग घर-द्वार छोड़ कर भाग गए हैं, इन्हें कोई संसार से विरक्ति नहीं हो गई है। संसार को तो जाना कहां, पहचाना कहां! वृक्षों से विरक्ति हो गई है, कि फूलों से, कि पहाड़ों से, कि नदियों से, कि चांद-तारों से? विरक्ति हो गई है विवाह नाम की संस्था से, उसकी सड़ांध से। परेशान हो गए, भाग खड़े हुए। और ये ही भगोड़े महात्मा बन गए हैं, साधु बन गए हैं। फिर ये भगोड़े दूसरों को भगोड़ापन सिखा रहे हैं।
और बड़ा मजा है कि ये ही साधु-महात्मा विवाह को पवित्र कहते हैं, ये ही साधु-महात्मा विवाह के लिए आशीर्वाद देने आ जाते हैं। खूब साजिश है! लोगों को विवाह में बांधो, फिर वे परेशान हों, पीड़ित हों, दुखी हों, तो फिर उनको मार्ग बताओ संसार-त्याग का।
ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह तुम्हारा पुराना विवाह और यह तुम्हारा पुराना संन्यास एक ही रोग के दो अंग हैं। और इसलिए साधु-महात्मा नहीं चाहेंगे कि विवाह दुनिया से विदा हो जाए। क्योंकि विवाह जिस दिन विदा होगा उसी दिन तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी भी विदा हो जाएंगे। क्योंकि इनको फिर संसार से विरक्त करने वाली चीज कौन-सी बचेगी? संसार से इन्हें कौन घबड़ा देता है?
यह तुम देखो, पुरुष भागे हैं, स्त्रियां नहीं भागीं। उसका कारण है। स्त्री की क्षमता और सहनशीलता पुरुष से बहुत ज्यादा है। और कोई कारण नहीं है। मुझसे लोग पूछते हैं कि क्यों स्त्रियां बुद्ध नहीं हुईं, महावीर नहीं हुईं, कृष्ण नहीं हुईं, राम नहीं हुईं? उनकी सहनशीलता पुरुष से ज्यादा है। यह गौरव की बात है। इसमें कुछ अगौरव नहीं है। उनमें एक धैर्य है, अपार धैर्य है, जो पुरुषों में नहीं है। वैज्ञानिक भी इस बात से सहमत हैं। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं पुरुषों की बजाय। पुरुष दोगुने बीमार होते हैं स्त्रियों की बजाय। स्त्रियां कम पागल होती हैं पुरुषों की बजाय, पुरुष दोगुने पागल होते हैं स्त्रियों की बजाय। स्त्रियां कम आत्मघात करती हैं, पुरुष ज्यादा आत्मघात करते हैं--दोगुने। यह दोगुने का अनुपात हर दिशा में लागू है।
स्त्री में एक तरह की समतुलता है; एक तरह का धैर्य है; एक तरह का प्रसाद है। जरूरी था। क्योंकि उसे नौ महीने बच्चे को पेट में रखना है। कौन पुरुष नौ महीने बच्चे को पेट में रखने को राजी होगा! फिर नौ महीने पर ही बात खतम नहीं होती, फिर बच्चे को बड़ा करना है। रात में दस-पंद्रह बार जगाएगा, तो भी मां जग आती है, फिर सो जाती है। पुरुष को दस-पंद्रह बार जगाओ, संसार से विरक्ति हो जाएगी। पुरुष को नौ महीने गर्भ रखने दो पेट में, कि फिर तत्क्षण भाग खड़ा होगा। यह कष्ट पुरुष न सह सकेगा। स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा जीती हैं--पांच साल ज्यादा। दस-बारह-पंद्रह बच्चों को जन्म देने के बाद, बड़ा करने के बाद भी पांच साल ज्यादा जीती हैं। घर का सारा उपद्रव झेलने के बाद, घर-गृहस्थी की सारी झंझटें झेलने के बाद, फिर भी पांच साल

ज्यादा जीती हैं। पुरुषों से ज्यादा देर में वृद्ध होती हैं। ज्यादा समय तक युवा रहती हैं। ज्यादा समय तक सुंदर रहती हैं। सारी असुविधाओं के बीच में! कारण हैः प्रकृति ने उन्हें सहने की क्षमता दी है।
और इसलिए स्त्रियां भागीं नहीं, जिंदगी से विमुख न हुईं। स्वभावतः स्त्रियों में उस तरह के महात्मा और साधु पैदा न हो सके जिस तरह के पुरुषों में हुए। लेकिन मैं इसे गौरव की बात मानता हूं, अगौरव की नहीं। यह पुरुषों के संबंध में अगौरव है कि इनमें भगोड़े ज्यादा पैदा हुए। और ये पुरुष, ये महात्मा, ये साधु-संत, इनके वक्तव्य देखो क्या हैं! इनके सारे वक्तव्य स्त्री-विरोधी हैं। शास्त्रों में सिवाय स्त्री की निंदा के और कुछ भी नहीं है। तो उससे एक बात तो जाहिर होती है कि ये सारे लोग स्त्री से पीड़ित रहे हैं, स्त्री से घबड़ाए रहे हैं। ये स्त्री को ही छोड़ कर भागे हैं, इतना तय है।
शंकराचार्य का यह वचन है--
तत्वं किमेकं? शिवमद्वितीयं,
किमुत्तमं? सच्चरितं यदस्ति।
त्याज्यं सुखं किम्? स्त्रियमेव,
सम्यक देयं परमं किम्? त्वभयं सदैव।।
"एक तत्व क्या है? अद्वितीय शिव तत्व। सबसे उत्तम क्या है? सच्चरित्र। कौन सुख छोड़ना चाहिए? सब प्रकार से स्त्री-सुख ही। परम दान क्या है? सर्वदा अभय ही।"
शंकराचार्य कहते हैंः "कौन सुख छोड़ना चाहिए?"
त्याज्यं सुखं किम्? स्त्रियमेव।
"सब प्रकार से स्त्री का सुख ही।"
जैसे सारा सुख शंकराचार्य के मन में स्त्री का सुख ही होकर रह गया है।
और स्त्री में क्या सुख है, यह भी तो पूछो! यह वचन विचारणीय है। एक तरफ यही महात्मागण कहते हैं कि स्त्री में क्या रखा है--हड्डी-मांस-मज्जा, लहू- मवाद... ! जैसे इनमें सोना-चांदी भरा हो, हीरे-जवाहरात भरे हों!
और दूसरी तरफ यह भी कहते हैंः "कौन सुख छोड़ना चाहिए?"
इनको सुख भी कहां दिखाई पड़ रहा है? वहीं, हड्डी-मांस-मज्जा-रक्त-मवाद, वहीं सुख भी दिखाई पड़ रहा है।
"सब प्रकार से स्त्री का सुख ही!"
मन कहां अटका है, इस सूत्र में जाहिर है। और यह सूत्र अकेला नहीं है, तुम्हारे शास्त्र इसी तरह के सूत्रों से भरे हैं। ये जिन लोगों ने भी लिखे होंगे, ये स्त्री से भाग कर लिखे गए सूत्र हैं; स्त्री को जान कर नहीं, पहचान कर नहीं। स्त्रियों को इतनी गालियां दी हैं, ये गालियां इस बात का सबूत हैं कि अभी भी कांटा चुभता है; अभी भी मन मुक्त नहीं हुआ है, कहीं अटका हुआ है; अभी भी सुख स्त्री में ही दिखाई पड़ता है।
तो पहले तल का प्रेम तो शरीर का है। वह पाशविक है। जो उस पर ही रुकेगा, उसे आज नहीं कल इन भगोड़े साधु-संन्यासियों से राजी होना पड़ेगा।
दूसरा तल मन का है। थोड़े-से लोग मन के तल पर प्रवेश करते हैं। मन के तल
पर खतरा है। मन क्षणभंगुर है। अभी प्रेम, अभी सब फूल खिले और अभी पंखुड़ियां झर गईं। अभी सुबह और अभी सांझ हो गई। मन का कोई भरोसा नहीं। मन यूं है जैसे पानी पर कोई लकीरें खींचे।
लेकिन मन का प्रेम शरीर के प्रेम से ज्यादा ऊंचाई का है। वही फर्क है
जो गुलाब के फूल में और उसके ही पास पड़ी हुई चट्टान में है। चट्टान सुबह भी वही है, सांझ भी वही है, कल भी वही होगी। गुलाब का फूल सुबह खिला था, दिन हवाओं में नाचा, सूरज से थोड़ी गुफ्तगू की, किरणों में थोड़ा गीत गाया, गुनगुनाया, और सांझ पंखुड़ियां गिर गईं। और सांझ फूल विदा हो गया। माना कि पत्थर जो गुलाब की झाड़ी के नीचे ही पड़ा है, ज्यादा थिर है, ज्यादा स्थायी है। लेकिन क्या इससे तुम पत्थर होना चाहोगे या गुलाब के फूल होना चाहोगे? भारतीय मन में यह भाव स्थायित्व का बहुत गहरा बैठा हुआ है--चीजें थिर होनी चाहिए! जितनी थिर हों उतनी अच्छी। फिर चाहे थिर होने में जड़ ही क्यों न हो जाएं!

इसलिए भारतीय मन बहुत निंदा करता है उन देशों की जहां विवाह के ऊपर प्रेम छा गया है। क्योंकि जहां प्रेम मन का होगा वहां तलाक भी होंगे। वहां कुछ भरोसा नहीं है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि शरीर के तल से मन का प्रेम ज्यादा ऊंचाई का प्रेम है। उसमें कुछ फूलों की गंध है। शरीर के तल पर सपाट है मामला। जैसे कोलतार की सीधी-सपाट सड़क। न कोई मोड़ आते, न कोई ऊंचाइयां आतीं, न कोई नीचाइयां आतीं। ज्यादा व्यावहारिक है--स्थूल भी। लेकिन मन का प्रेम यूं है जैसे पहाड़ों के शिखर, जैसे गौरीशंकर की ऊंचाइयां। लेकिन जहां गौरीशंकर की ऊंचाइयां होंगी वहीं पास में गहरी खाइयां भी होंगी। बिना खाइयों के ऊंचाइयां नहीं हो सकतीं। और बिना ऊंचाइयों के खाइयां नहीं हो सकतीं।
तो जो लोग मन के प्रेम के तल पर उठेंगे, उनको स्थायित्व का मोह छोड़ना पड़ेगा। तो उनके जीवन में प्रेम के गहरे अनुभव भी होंगे, प्रेम के शिखर भी उठेंगे और उन्हें प्रेम का विषाद भी झेलना पड़ेगा। विवाह में न प्रेम का कोई गहरा अनुभव है, न कोई विषाद है; एक कामचलाऊ दुनिया है, एक दुकानदारी है। विवाह में और वेश्या में मैं कुछ भेद नहीं करता हूं। वेश्या यूं समझो कि जैसे कुछ देर के लिए किया गया विवाह है; जैसे टैक्सी में सवार हुए। और विवाह यूं है जैसे अपने घर में ही कार रखी। प्राइवेट नंबर और टैक्सी का नंबर! मगर दोनों ही पैसे की बात है। दोनों में कुछ बुनियादी भेद नहीं है। इसलिए जिन देशों में विवाह-प्रथा है उन देशों में वेश्या की प्रथा भी रहेगी। अब यह हमारा देश जो सदियों से विवाह में जी रहा है और साथ ही वेश्याएं पल रही हैं। और धर्म के नाम पर भी पल रही हैं! भारत के मंदिरों में देवदासियां होती रहीं--अब भी हैं। वेश्याओं का नाम ही देवदासी है। वेश्याओं के लिए अच्छा दिया नाम है। हम नाम देने में कुशल हैं। हम सुंदर शब्दों की आड़ में भद्दी असलियतों को छिपाने में बड़े कारीगर हैं। देवदासियां मंदिर में रही वेश्याएं थीं। ये मंदिर के पुजारियों के काम आतीं और मंदिर में जो ग्राहक पूजा करने आते उनके काम आतीं।
न मालूम सदियों तक भारत के अनेक हिस्सों में यह प्रथा थी कि जब पहले दिन विवाह करके कोई युवक घर लौटे तो उसकी पत्नी पहली रात सुहागरात मंदिर के देवता के साथ बिताए। देवता बेचारे क्या करेंगे, वे पत्थर के देवता हैं, देवता के नाम पर मंदिर का पुजारी उसे भोगेगा। वह तो बेचारा एजेंट है। वह तो मंदिर के देवता का उपकरण मात्र है, निमित्त मात्र है। उसके माध्यम से देवता ही भोगते हैं। क्या जालसाजियां! क्या बेईमानियां! और कितने अच्छे- अच्छे नामों की आड़--मंदिर, देवदासी, पुजारी, देवता! और खेल सब चल रहा है वही क्षुद्रता का।
जिन देशों में प्रेम ने विवाह का स्थान ले लिया है वहां तलाक अनिवार्य हो गया। और जैसे-जैसे प्रेम और तलाक गहन होते जाएंगे वैसे-वैसे वेश्या विदा हो जाएगी। वेश्या विवाह का अंग है, अनुषंग है। वेश्या का अर्थ यह है कि अपनी पत्नी से छुटकारे का तो कोई उपाय नहीं, अपने पति से तो छुटकारे का कोई उपाय नहीं, जब कोई उपाय नहीं है तो फिर पीछे का कोई दरवाजा खोजो।
तो पुरुषों ने अपने लिए दरवाजा खोज लिया था। वेश्या खड़ी कर ली। और स्त्रियों के लिए तो कोई सवाल ही नहीं उठता, उनको तो सब तरफ से कारागृह में डाल दिया है। लेकिन जिन देशों में स्त्रियां मुक्त होने लगी हैं, जैसे अमरीका में, इंग्लैंड में, वहां--जान कर तुम्हें हैरानी होगी--वहां पुरुष वेश्याएं भी उपलब्ध हो गई हैं। जैसे स्त्री वेश्याएं होती हैं वैसे पुरुष वेश्याएं। कहना चाहिएः वैश्य। वैश्य भी उपलब्ध हैं जैसे वेश्याएं उपलब्ध हैं। क्योंकि स्त्री भी वही मांग करती है जो पुरुष करता है--समान अधिकार। तो स्वभावतः उसका यही परिणाम होगा।
प्रेम बढ़ेगा तो विषाद भी बढ़ेगा। लेकिन भारतीय साधु-संत पश्चिम में बढ़ते हुए प्रेम और तलाक की खूब निंदा करते हैं कि देखो, प्रेम का क्या परिणाम हो रहा है! इससे तो हमारे ऋषि-मुनि जो विवाह की व्यवस्था दे गए वही अच्छी थी। अच्छी थी इस अर्थों में कि स्थायी थी; अच्छी थी इस अर्थों में कि व्यावसायिक थी, सपाट थी; खतरे नहीं थे, सुरक्षित थी। लेकिन जीवन जितना सुरक्षित हो जाता है उतना ही मुर्दा हो जाता है।

तुम पूछते हो, राम किशोर, कि प्रेम क्या है?
तो एक तो प्रेम है शरीर के तल का, जो कि पाशविक है, पशुओं जैसा है। और विवाह के नाम पर जो चल रहा है वह वही प्रेम है। और दूसरा प्रेम है मन का, जो ज्यादा काव्यात्मक है, ज्यादा मानवीय है।
लेकिन फिर तुम दूसरी बात भी पूछते हो कि क्या कभी प्रेम नष्ट भी होता
है या नहीं?
शरीर के तल पर जो प्रेम है, उसमें तो नष्ट होने का कोई सवाल उठता नहीं। वहां प्रेम ही नहीं है तो नष्ट क्या खाक होगा! पहले फूल तो खिलने चाहिए, तब तो मुरझाएंगे। कागज के फूल होंगे तो मुरझाएंगे क्यों? और प्लास्टिक के फूल हुए तब तो मुरझाने का कोई सवाल ही नहीं उठता। विवाह प्लास्टिक का फूल है। रोज धो लो, नया-ताजा। धूल झाड़ दो, फिर नया, फिर ताजा। वही रंग, वही ढंग, हालांकि गंध नहीं होती, खिलता नहीं। और सिर्फ आदमियों को धोखा दे सकता है, किसी मधुमक्खी को धोखा न दे सकेगा। कोई तितली धोखा न खाएगी। आदमी भर मूढ़ है कि धोखा खा सकता है।
दूसरा प्रेम तो क्षणभंगुर होगा। मगर उसकी क्षणभंगुरता भी पहले प्रेम
की स्थायित्व से ज्यादा मूल्यवान है। क्योंकि उस क्षणभंगुरता से तुम्हें स्वाद मिलेगा तीसरे प्रेम का, जो कि वस्तुतः समग्र प्रेम है। उसको मैं कहताः आत्मा का प्रेम। जो दूसरे तक नहीं पहुंचा है, तीसरे पर नहीं पहुंचेगा। दूसरा सोपान पार करना जरूरी है। जो पहले पर ही अटका रह गया उसका धर्म भगोड़ापन होगा, पलायनवाद होगा। और जो दूसरे से गुजर गया, उसके जीवन में प्रेम की क्षणभंगुरता को देख कर, प्रेम के विषाद को देख कर--और प्रेम का आनंद भी जान कर... । पहले ने तो आनंद जाना ही नहीं सिर्फ विषाद जाना, सपाट थोथापन जाना, तो भाग खड़ा हुआ। दूसरे ने दोनों जाने हैं, क्योंकि दूसरा मध्य में है, शरीर और आत्मा के ठीक मध्य में है, दूसरे ने दोनों जाने हैं-- विषाद भी जाना और आनंद भी जाना। विषाद के कारण वह दूसरे से मुक्त होना चाहेगा और आनंद के कारण दूसरे में जो छिपा हुआ राज है, उसको और ऊंचाई तक ले जाना चाहेगा। इसलिए उसके जीवन में खोज शुरू होगी कि क्या कोई आत्मिक प्रेम भी हो सकता है?
और वही खोज धार्मिक खोज है। वही प्रेम प्रार्थना बन जाता है। वही प्रेम परमात्मा की तलाश है। क्योंकि वह प्रेम फिर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच नहीं होता, वह प्रेम तो फिर व्यक्ति और अव्यक्ति के बीच होता है। वह प्रेम तो फिर अंश के और समग्र के बीच होता है; बूंद के और सागर के बीच होता है। दो बूंदों का प्रेम तो देख लिया, वह टूट-टूट जाता है, बिखर-बिखर जाता है, उसकी सीमाएं हैं। इसलिए अब ऐसा प्रेम देखने की आकांक्षा, अभीप्सा पैदा होती है, जिसकी कोई सीमा नहीं। असीम के साथ प्रेम का भाव उठता है। वही भाव मेरी दृष्टि में असली संन्यास है। लेकिन मेरा संन्यास तो कष्टपूर्ण मालूम पड़ेगा।

एक मित्र ने पूछा है--नाम है मित्र का, पंडित लज्जाशंकर झा--पूछा हैः "कल आपके आश्रम को देख कर मन को बड़ी पीड़ा हुई। यह कैसा आश्रम? न कोई मंदिर, न कोई पूजा-पाठ, न कहीं चिंतन-मनन, न कहीं यज्ञ-हवन। सुबह हरिकथा के स्थान पर साधु-संतों, शास्त्रों-पुराणों की खोटी निंदा और हास्य-व्यंग्य। ध्यान के नाम पर हो-हल्ला, नाचना-गाना। लगता है नए के नाम पर सब चलता है; चलती का नाम गाड़ी। क्या ऐसे आश्रम को आश्रम, ऐसे ध्यानों को ध्यान कहा जा सकता है?"

पंडित लज्जाशंकर झा, जब तक मन है तब तक पीड़ा होगी। तुम कहते होः "कल आपके आश्रम को देख कर मन को बड़ी पीड़ा हुई।"
मन लेकर जो यहां आएगा, पीड़ा ही लेकर जाएगा। मन तो दरवाजे के बाहर ही रख आना चाहिए। और आश्रम तो सिर्फ मजाक में कह दिया, यूं यह मयकदा है, मधुशाला है। लेकिन आप जैसे पंडितों को फंसाने के लिए नाम रख दिया हैः आश्रम। वहीं सामने मधुशाला लिखी हो तो आप लज्जा के मारे भीतर आते ही नहीं। लज्जावश आना भी चाहते तो आ न सकते। पंडित और फिर लज्जाशंकर! आते-आते रुक गए होते, आगे बढ़ गए होते, कहीं और चले गए होते। आश्रम तो नाम इसलिए रख दिया है कि कुछ बुद्धू सिर्फ आश्रम के कारण ही आते हैं।

अब मन को पीड़ा तो होगी। क्योंकि तुम जो अपेक्षाएं लेकर आए होओगे, वे यहां कोई भी पूरी नहीं होंगी। तुम्हारी अपेक्षा रही होगी कि मंदिर होगा यहां कोई। मंदिर है यहां, मगर तुम्हारी अपेक्षा का मंदिर नहीं है। और मैंने कोई ठेका लिया है तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने का? न तुम मेरी अपेक्षा पूरी कर सकते हो, तो मैं क्यों तुम्हारी अपेक्षा पूरी करने चलूं! न मैं किसी से कोई अपेक्षा रखता हूं और न किसी की अपेक्षाएं पूरी करने का मैंने कोई जिम्मा लिया है। मैं अपने ढंग से जीता हूं। तुम अपनी लज्जा में डूबो, मरो; मुझे अपने गीत-गान में मस्त रहने दो! तुम्हारी लज्जा तुम्हें मुबारक! तुम अपना घूंघट डाल लो। बुर्के में जीओ, कि कहीं ऐसी गलत-सलत चीजें दिखाई न पड़ जाएं।
तुम्हें कोई मंदिर न दिखाई पड़ा। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। मंदिर देखने के लिए यहां जरा सूक्ष्म आंखें चाहिए। तुम सोच रहे होओगे कि घंटा इत्यादि बज रहा होगा, मूर्ति वगैरह रखी होगी, हनुमान जी बैठे होंगे। तो तुम एकदम साष्टांग दंडवत करते; एकदम हनुमान-चालीसा बकने लगते। लेकिन ऐसा कोई मंदिर तुम्हें दिखाई पड़ा नहीं कि बैठे हैं गणेश जी, चूहा के ऊपर सवार! न शंकर जी दिखाई पड़े। तुम्हें कुछ भी दिखाई न पड़ा; न कोई पूजा, न कोई पाठ। यहां पूजा-पाठ ही चल रहा है, सतत, चौबीस घंटे, अहर्निश। लेकिन यहां की अपनी पूजा है, अपना पाठ है। यहां की अपनी शैली है, अपना रंग है, अपनी भाषा है, अपना ढंग है। तुम अपनी अपेक्षाएं लेकर आए इसलिए पीड़ा लेकर जाओगे। इसमें मेरी मजबूरी है। मैं क्या कर सकता हूं? अपेक्षाएं लेकर आओ ही मत। निष्पक्ष आकर पक्षपातरहित होकर अगर देखो तो पूजा भी मिलेगी, पाठ भी मिलेगा, मंदिर भी मिलेगा।
और कहते हो, "न कहीं चिंतन, न मनन।"
यहां चिंतन और मनन से ही तो मुक्त होने की चेष्टा की जा रही है। मनन से
ही तो मन बनता है, वही तो पीड़ा दे रहा है, पंडित लज्जाशंकर झा! और अभी भी मनन करना है? यहां मनन से मुक्त होना है। मनन से मुक्ति का नाम ही तो ध्यान है। चिंतन-मनन ध्यान तो नहीं है। ध्यान का अर्थ हैः अमनी अवस्था--जहां न मनन रहा, न चिंतन रहा, न विचार रहा, न विकल्प रहे, न कोई धारणाएं रहीं। वहीं तो ध्यान का नया लोक, नया आकाश आविर्भूत होता है।
और कहते हो, "न कहीं यज्ञ-हवन।"
यहां कोई पागल इकट्ठे हुए हैं कि यज्ञ-हवन करें! आग जला कर क्या लेना है? ऐसे ही भूखा मर रहा है देश, अब और आग में घी जलाना है? गेहूं फेंकने हैं? चावल छिड़कने हैं? मूर्खताएं काफी नहीं हो चुकीं? तुम अपनी मूर्खता में मुझे भी सम्मिलित करना चाहते हो? मुझे बख्शो! अपने घर यज्ञ-हवन जो तुम्हें करना हो, करो।
और तुम कहते हो, "सुबह हरिकथा के स्थान पर साधु-संतों, शास्त्रों- पुराणों की खोटी निंदा और हास्य-व्यंग्य।"
साधु-संतों की निंदा नहीं हो रही है, लफंगों की निंदा हो रही है। तुम उनको साधु-संत कहते हो, मगर मैं मानूं तब न! तुम्हारे साधु-संत मेरी दृष्टि में साधु-संत नहीं हैं। अगर मेरे संन्यासी तुम्हारी दृष्टि में संन्यासी नहीं हैं, तो क्यों अपेक्षा रखते हो कि मेरी दृष्टि में तुम्हारे साधु-संत साधु-संत हों? तुम्हारे साधु-संतों में मैं कुछ साधुता नहीं देखता, कोई संतत्व नहीं देखता। सब तरह का दंभ देखता हूं, अहंकार देखता हूं, थोथापन देखता हूं, पोंगापंथी देखता हूं, तोतारटंत बकवास देखता हूं। तो कैसे उनकी प्रशंसा करूं? किस कारण से उनकी प्रशंसा करूं? प्रशंसा करने योग्य जब भी कुछ होता है तो जरूर मैं प्रशंसा करता हूं; फिर वह किसी ने भी कहा हो। फिर मैं कोई संकोच नहीं करता कि किसने कहा है। लेकिन सिर्फ तुम साधु-संत मानते हो, इससे कुछ हल हो जाएगा?
जैनों ने तुम्हारे कृष्ण को नर्क में डाला हुआ है, क्योंकि उन्हें वे साधु-संत नहीं मालूम पड़े। बराबर नर्क में डालने के हकदार हैं! किताबें उनकी हैं! जिस आदमी ने महाभारत का युद्ध करवा दिया, इतनी भयंकर हिंसा करवाई, लहू की नदियां बहवा दीं, और जिस आदमी के कारण फिर भारत कभी खड़ा नहीं हो सकता है, रीढ़ ही टूट गई--उस महाभारत के बाद भारत दीन और दुर्बल होता चला गया--अगर जैनों ने कृष्ण को नरक में डाल दिया तो कुछ आश्चर्य तो नहीं। वे

जैनों को साधु नहीं मालूम पड़े। जो आदमी सोलह हजार स्त्रियों को भगा लाया-- दूसरों की विवाहित स्त्रियों को--जोर-जबरदस्ती से ले आया, वह अगर जैनों को साधु नहीं मालूम पड़े तो क्या आश्चर्य है?
कौन साधु है? किसको साधु कहते हो? साधु की तो व्याख्या करनी होगी न! कि
बस साधु-संत कह दिया, मामला हल हो गया!
महावीर हिंदुओं को साधु नहीं मालूम होते। किसी हिंदू शास्त्र ने महावीर की साधुता की चर्चा नहीं की। बौद्धों को महावीर साधु नहीं मालूम होते। बौद्धों ने महावीर का खूब मजाक उड़ाया है, अपने शास्त्रों में खूब व्यंग्य कसे हैं। उनकी अपनी परिभाषा है साधु की। जैन कहते हैं कि महावीर त्रिकालज्ञ हैं; उन्हें तीनों कालों का ज्ञान है। और बौद्ध शास्त्र कहते हैंः खूब त्रिकालज्ञ हैं! हमने उन्हें ऐसे घर के सामने भीख मांगते खड़ा देखा है जिस घर में कोई वर्षों से नहीं रहता! जब उनको बताया जाता है तब पता चलता है कि घर में कोई है ही नहीं। और ये त्रिकालज्ञ हैं! अतीत भी जानते हैं, वर्तमान भी जानते हैं, भविष्य भी जानते हैं। ये कैसे त्रिकालज्ञ हैं, इनको यह भी पता नहीं चल रहा है कि घर में कोई नहीं है! बौद्ध ग्रंथ कहते हैं कि हमने महावीर को सुबह के अंधेरे में कुत्ते की पूंछ पर पैर रखते देखा है। जब कुत्ता भौंका तब उनको पता चला कि अरे कुत्ता है! ये त्रिकालज्ञ हैं?
तो बौद्ध तो महावीर को साधु नहीं मानते। और न जैन बुद्ध को साधु मानते हैं। क्योंकि जैन तो तभी किसी को साधु मानें जब वह समस्त परिग्रह छोड़ दे। और समस्त परिग्रह में वस्त्र भी आ जाते हैं। और बुद्ध तो वस्त्र पहनते रहे; तीन वस्त्र रखते थे। वह बहुत परिग्रह हो गया। काफी जंजाल हो गया। पूरा संसार हो गया। तीन वस्त्र जो आदमी रखे है, वह अभी कहां साधु!
तो जैनों ने बुद्ध को कोई साधु नहीं माना। तुम सोचते हो, जैन तुम्हारे राम को अवतार मान सकते हैं? या परशुराम को अवतार मान सकते हैं? परशुराम, जिसने पृथ्वी को अठारह दफे क्षत्रियों से खाली कर दिया! हत्या करता रहा, हत्या करता रहा! ये चंगेजखां और तैमूरलंग और नादिरशाह सब बचकाने मालूम पड़ते हैं। परशुराम ने जितनी हत्या की, शायद किसी आदमी ने कभी नहीं की। इसको जैन, जो अहिंसा को परम धर्म मानते हैं, कैसे साधु मानें? और तुम तो उन्हें अवतार मानते हो, साधु ही नहीं--ईश्वर का अवतार!
सवाल यह हैः कौन साधु है? क्या साधु की व्याख्या?
मोहम्मद की नौ पत्नियां थीं। क्या तुम सोचते हो जैन और बौद्ध मोहम्मद
को साधु मान सकते हैं? नौ पत्नियां! और जिंदगी भर तलवार हाथ में! किस प्रकार के साधु?
कौन निर्णायक है परिभाषा का? बस, तुमने तो कह दिया कि सुबह हरिकथा के स्थान पर साधु-संतों, शास्त्रों-पुराणों की खोटी निंदा! मेरी अपनी साधु की व्याख्या है। जो समाधिस्थ है, वह साधु है। न तो वस्त्रों से मैं तय करता, न तलवारों से तय करता, न सूलियों से तय करता, न उपवासों से तय करता, मेरी तो एक कसौटी है--जो समाधिस्थ, वह साधु। और समाधिस्थ जो बोले, वह शास्त्र।
अब तुम कहते हो कि शास्त्रों-पुराणों की खोटी निंदा! बुद्ध तो वेद को शास्त्र नहीं मानते हैं। क्योंकि निन्यानबे प्रतिशत तो तुम्हारे वेद में कचरा है, इसको शास्त्र वे मानें भी कैसे? जैन तो तुम्हारे वेद को शास्त्र नहीं मानते। मुसलमान तो तुम्हारी गीता को शास्त्र नहीं मानते। और न ही हिंदू कुरान को शास्त्र मानेंगे; न बाइबिल को शास्त्र मानेंगे। इस दुनिया में तीन सौ धर्म हैं, किसके शास्त्र को शास्त्र मानें? और किसके शास्त्र को शास्त्र न मानें?
मैं तो शास्त्र उसको मानता हूं जो समाधिस्थ व्यक्ति ने बोला हो। और
जो समाधिस्थ व्यक्ति का बोला हुआ नहीं मालूम पड़ता, उसकी जोर से आलोचना करूंगा। उसको टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। यही हरिकथा है। हरिकथा का अर्थ यह है कि समाधि को उभारना है, उघाड़ना है। जिस चीज से भी ढकी हो समाधि, उसको अलग करना है। यह कूड़ा-करकट अलग करना होगा।
तुमको लगती होगी निंदा, क्योंकि तुम्हारे अनुकूल कोई बात न पड़ती होगी। लेकिन तब सोच-विचार करो। तुम यहां चिंतन-मनन देखने आए हो, खुद तो थोड़ा चिंतन-मनन करो! मैं जो भी कह रहा हूं उसके पीछे कुछ बल है। मेरे अपने

अनुभव का बल है! सोचो, समझो, प्रयोग करो। और अगर हिम्मत हो तो ध्यान करो। और तभी तुम्हारे पास कसौटी होगी जांचने की कि जो मैंने कहा वह सार्थक था या नहीं। इतनी जल्दी लजाओ न। इतनी जल्दी मन को पीड़ा न दो। इतनी जल्दबाजी में कुछ हल न होगा।
तुम्हारे शास्त्र-पुराण।... हां, कभी-कभी उन शास्त्रों-पुराणों में कोई हीरा मिल जाता है, तो मैं उसे सिर पर उठा लेता हूं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि एक हीरे के कारण पूरा कूड़ा-करकट से भरा हुआ ट्रक भी ढोता फिरूं। हीरे को उठा लेंगे, कूड़े-करकट को तो आग लगा देंगे! पारखी की नजर चाहिए।
अब तुम्हारे पुराणों में क्या है? कपोल-कल्पनाएं! झूठी कथाएं! व्यर्थ
की बातें! बचकानी! ओछी! उनको कैसे हरिकथा कहें? लेकिन तुम्हें कठिनाई हो रही है कि ध्यान के नाम पर हो-हल्ला। स्वभावतः जिसको संगीत समझ में न आता हो, उसे संगीत में हो-हल्ला मालूम होगा। और जिसको मस्ती न आती हो, उसको नाचना-गाना ध्यान नहीं मालूम होगा।
लेकिन यहां ध्यान और मस्ती का समागम हो रहा है। यहां जो नाच रहे हैं
वे सिर्फ नाच नहीं रहे हैं, भीतर स्वयं को साध भी रहे हैं। बाहर नृत्य है और भीतर मौन है, सन्नाटा है, शून्य है। बाहर गीत है और भीतर गहन शून्य है, गहन प्रशांति है। मगर यह तो तुम संयुक्त होओगे तब। यह तो तुम बाहर से ही देख कर चले! यह तुम्हारा तो मन पीड़ा से भर गया है, अब क्या तुम सम्मिलित हो सकोगे!
तुम्हें लगता है कि नए के नाम पर सब चलता है। इस देश में तो तुम गलत ही बात कह रहे हो! यहां तो पुराने के नाम पर सब चलता है। और चलती का नाम गाड़ी, मगर पुराने के नाम पर सब चलता है। यहां नए के नाम पर कुछ तो चला कर देखो। छाती चाहिए नए के नाम पर कुछ चलाने को। पुराने के नाम पर कुछ दिक्कत नहीं है। पुराने के नाम पर सब चलता है। बस पुराने का उल्लेख भर कर दो कि सब चल जाता है।

अब एक मित्र ने पूछा हैः "ओशो, आप कहते हैं कि भगवत्ता है, भगवान नहीं। फिर आप तुलसीदास से सहमत क्यों नहीं हैं? वे भी तो कहते हैं, सियाराम मय सब जग जानी। उनका भी तो वही अर्थ है जो आपका। क्या उनका यह पद भगवत्ता की धारणा को सिद्ध नहीं करता?"

रामप्रवेश सिंह चौहान, तुलसीदास और मेरी बात में कोई तालमेल कहीं भी नहीं, दूर का भी नाता-रिश्ता नहीं है। तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया, यूं तो लिखते हैं कि सियाराम मय सब जग जानी, लेकिन जब उन्हें कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया तो वे कृष्ण की मूर्ति को झुके नहीं। उन्होंने कहा, मैं तो राम का भक्त हूं। जब तक धनुष-बाण हाथ में नहीं लोगे, मैं सिर न झुकाऊंगा। ये सब जग में सियाराम को देखते हैं! ये कृष्ण में भी सियाराम को नहीं देख पा रहे हैं। अच्छी-अच्छी बातें करना एक बात--सियाराम मय सब जग जानी! तो फिर यह कृष्ण भर को छोड़ दिया जगत के बाहर! क्यों कृष्ण के सामने सिर झुकाने में अड़चन आ रही है? अब कृष्ण कोई मोहम्मद भी तो नहीं, कृष्ण कोई जीसस भी तो नहीं, कोई मूसा भी तो नहीं, कोई महावीर भी तो नहीं, कोई जरथुस्त्र भी तो नहीं; उन्हीं हिंदुओं के अवतार हैं जिनके राम अवतार हैं। कृष्ण के सामने, सिर झुकाने में क्या अड़चन आ रही है? यही अड़चन आ रही है कि वे तो धनुष-बाण वाले राम के भक्त हैं और जब तक धनुष-बाण हाथ नहीं लेओगे, तुलसी झुके न माथ! यह तुलसी का माथा भी शर्त के साथ झुकता है!
और अगर सारे जगत में सिया और राम का ही प्रवेश है, तो फिर ये ढोल गंवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी, ये तुलसीदास क्या अफीम खा गए थे जब बोले? जब सब सियाराम मय ही है, तो ढोल, गंवार--ये भी सियाराम! शूद्र पशु नारी--ये भी सियाराम। और ये सब ताड़न के अधिकारी! रामचंद्र जी की पिटाई करोगे? ताड़ोगे, सताओगे?
रामप्रवेश सिंह चौहान, थोड़ी बुद्धि का उपयोग करो। मैं जिस भगवत्ता की बात कर रहा हूं, बेचारे तुलसीदास क्या करेंगे उस भगवत्ता की बात! ये तो लकीर के फकीर। मगर पुराने का नाम यहां चलता है, पुराने की साख यहां चलती है, नए की नहीं। नए को तो बड़ी अड़चन है।

और प्रेम को--तुमने पूछा है--कि क्या कभी नष्ट होता या नहीं?
शरीर का स्थिर होता है, क्योंकि होता ही नहीं। मन का नष्ट होता है, क्योंकि मन क्षणभंगुर है। लेकिन आत्मा का शाश्वत है, क्योंकि आत्मा शाश्वत है। जिस तल पर प्रेम होगा उस तल का ही होगा। शरीर के तल पर काम, मन के तल पर प्रेम और आत्मा के तल पर प्रार्थना। प्रार्थना शाश्वत है। तुम जिस प्रेम को अभी समझते हो, वह तो टिकने वाला नहीं।

कोई है
कोई भी तो नहीं
न हवा न रंग
न गुल न बू
अहसास--सिर्फ एक अहसास
धूप भी भूल गई हो रास्ता जैसे मेरे घर का जम्मे गफीर
यह खोखली सी भीड़,
हर लम्हा मुंजमिद
हर घड़ी साकित
न सुबह न शाम
न दिन न रात
अहसास--सिर्फ एक अहसास
मेरे जिस्म में चुभ रहा है
अजनबीपन हर नजर का
एक आवाज कोई तो दे दे
हाय एक दस्तक कोई तो दे दे

यह प्रेम तो जल्दी ही चला जाता है, कोई दस्तक देने वाला भी नहीं मिलता।

ख्यालो-शेर की दुनिया में जान थी जिन से
फिजाए-फिक्रो-अमल अरगवान थी जिन से
वो जिनके नूर से शादाब थे महो-अंजुमजुनू
ने-इश्क की हिम्मत जवान थी जिन से
वो आरजूएं कहां सो गई हैं मेरे नदीम!
वो नासबूर निगाहें, वो मुंतजिर राहें वो पासे-जब्त से दिल में दबी हुई आहें वो इंतजार की रातें, तवील, तीरह-व-तार वो नीम-ख्वाब शबिस्तां, वो मखमली बांहें कहानियां थीं, कहीं खो गई हैं मेरे नदीम! मचल रहा है रगे-जिंदगी में खूने-बहार उलझ रहे हैं पुराने गमों से रूह के तार चलो, कि चल के चिरागां करें दियारे-हबीब हैं इंतजार में अगली मोहब्बतों के मजार मोहब्बतें जो फना हो गई हैं मेरे नदीम! मेरे दोस्त, मेरे साथी! कहां खो गए वे दिन? ख्यालो-शेर की दुनिया में जान थी जिनसे
कविताओं में प्राण थे जिनसे!
फिजाए-फिक्रो-अमल अरगवान थी जिनसे
वो जिनके नूर से शादाब थे महो-अंजुम
जिनकी रोशनी से चांद-तारे चमकदार थे।
जुनूने-इश्क की हिम्मत जवान थी जिनसे
प्रेम का पागलपन, प्रेम की मस्ती जिनके कारण जवान थी।
वो आरजूएं कहां सो गई हैं मेरे नदीम!
मेरे मित्र, मेरे साथी, मेरे संगी! वे आकांक्षाएं कहां सो गईं, कहां खो गईं?

वो नासबूर निगाहें...
वे बेचैन निगाहें!
... वो मुंतजिर राहें
वो पासे-जब्त से दिल में दबी हुई आहें
वो इंतजार की रातें, तवील, तीरह-व-तार
वो नीम-ख्वाब शबिस्तां, वो मखमली बांहें
कहानियां थीं, कहीं खो गई हैं मेरे नदीम!
मन के जगत में तो सब कहानियां हैं, सब खो जाएंगी।
मचल रहा है रगे-जिंदगी में खूने-बहार उलझ रहे हैं पुराने गमों से रूह
के तारचलो, कि चल के चिरागां करें दियारे-हबीबहैं इंतजार में अगली मोहब्बतों के मजार
सब मजार बन जाते हैं, सब कब्रें हो जाती हैं मोहब्बतें!
मोहब्बतें जो फना हो गई हैं मेरे नदीम!
सब मोहब्बतें मर जाती हैं, सब प्रेम मर जाते हैं। जो जन्मता है वह मर जाता है। लेकिन एक ऐसा प्रेम भी है, जो जन्मता ही नहीं, जो तुम्हारे भीतर ही छिपा पड़ा है; जिस दिन तुम उसका आविष्कार कर लोगे, वही तुम्हारी आत्मा है, वही तुम्हारा परमात्मा है। तुम हो मंदिर! और तुम्हारे भीतर छिपा है प्रेम का एक सागर।
लेकिन उसके लिए गहरी डुबकी मारनी होगी ध्यान की। विचार से नहीं होगा, चिंतन-मनन से नहीं होगा, शास्त्र से नहीं होगा, साधु-संतों से नहीं होगा, मंदिर-मस्जिदों में घड़ियाल, अजानें देने से नहीं होगा, यज्ञ-हवन करने से नहीं होगा। सिर्फ एक ही कला है उस प्रेम को उघाड़ लेने की--जो अजन्मा है और अमृत है--और वह कला हैः ध्यान।
निर्विचार हो रहो, निर्विकल्प हो रहो। ऐसे शांत हो जाओ कि भीतर कोई चहलकदमी न रहे, कोई शोरगुल न रहे, कोई तरंग भी न उठे, निस्तरंग हो जाओ। अकंप जले तुम्हारी चेतना की लौ; जैसे दीया जले ऐसे घर में जहां हवा का कोई झोंका भी न आता हो। तब तुम खोज पाओगे अपने भीतर के शाश्वत स्वर को, शाश्वत संगीत को। वह प्रेम कभी नहीं मिटता है। उसकी ही तलाश है। और जब तक उसे हमने नहीं पा लिया है तब तक हमने कुछ भी नहीं पाया है।

दूसरा प्रश्नः ओशो,
बुल्लेशाह की सत्य के संबंध में एक काफी है--
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
सच कहां ता भांबड़ मचदा ए, झूठ आखां ता कुझ न बचदा ए।
दिल दोहां गलां तो मचदा ए, जच-जच के जीभा कहिंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
जिस भेद पाया कलंदर दा, राह खोजिया अपने अंदर दा।
ओह वासी है उस मंदर दा, जिथे चढ़दी है न लहिंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
ए शाह अकल तू आया कर, सानूं अदब अदाब सखाया कर।
मैं झूठी नूं समझाया कर, जो मूरख मांह नू कहिंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
एथे दुनिया विच हनेरा है, अते तिलकनबाजी वेहड़ा है।
अंदर वड़ के देखो केहड़ा है, बाहर खुफतान पई ढूढेंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
इक लाजम गल अदल दी है, सानूं बात मालूमी सभ दी है।
हर हर विच सूरत रब दी है, कहुं जाहर कहुं छपेंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
एथे लेखा पाओ पसारा है, इसदा वखरा भेद निआरा है।
इक सूरत दा चमकारा है, ज्यों चिंग दारू विच पैंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
जदों जाहर होए नूर होरीं, जल गए पहाड़ कोहतूर होरीं।
तदों दार चढ़े मनसूर होरीं, ओथे शेखी की मैं दी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।

जे जाहर करां तकसार ताईं, सभ भुल जावन इकरार ताईं।
फिर मारन बुल्ले यार ताईं, एथे मुकदी गल सुहेंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
असां पढ़िया इलम हकीकी है, उथे इक हरफ तहकीकी है।
होर झगड़ा सभ वधीकी है, ऐवें रौला पा पा बहिंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
बुलिया शौह असां थीं वख नहीं, बिना शौह थीं दूजा कख नहीं।
पर देखन वाली अख नहीं, ताहीं जान पई दुखड़े सहिंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
भगवान, निवेदन है कि बुल्लेशाह की इस काफी पर कुछ कहें।

चैतन्य कीर्ति, यह काफी तो सच में ही प्यारी है। एक-एक सूत्र को समझने
की कोशिश करो।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
सच कहां ता भांबड़ मचदा ए, झूठ आखां ता कुझ न बचदा ए।
दिल दोहां गलां तो मचदा ए, जच-जच के जीभा कहिंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
"अर्थात मुंह आई बात रुकती नहीं। सच कहूं तो तूफान खड़ा होता है, झूठ कहूं तो कुछ बचता नहीं। दिल को दोनों बातों से आग लगती है, इसलिए जबान सम्हाल-सम्हाल कर कहती है। फिर भी, मुंह आई बात रुकती नहीं।"
सत्य को जिसने जाना है, उसे कहना ही पड़ा है, कहना ही पड़ेगा। फूल खिलेगा
तो गंध उड़ेगी ही। दीया जलेगा तो रोशनी फैलेगी ही। सूरज उगेगा तो सुबह होगी ही।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
जब सत्य भीतर आता है तो रोका नहीं जा सकता; कोई उपाय नहीं। बहेगा, दूसरों तक पहुंचेगा; हालांकि खतरे हैं। और तुम जो यहां मेरे पास हो, खतरों को देख रहे हो।
"सच कहूं तो तूफान खड़ा होता है।"
सच कहां ता भांबड़ मचदा ए।
भांबड़ तूफान से भी प्यारा शब्द है। कैसा भांबड़ मचा हुआ है! अब ये पंडित लज्जाशंकर झा आ गए, क्या भांबड़ मचा रहे हैं! कहां भूले-भटके आ गए! कहीं यज्ञ-हवन करते, यहां कहां दीवानों की बस्ती में आ गए! लेकिन सारे देश में मुझे गालियां दी जा रही हैं। देश में ही नहीं, परदेश में भी।
सच कहां ता भांबड़ मचदा ए, झूठ आखां ता कुझ न बचदा ए।
और अगर झूठ कहूं तो भीतर की गवाही नहीं, आंख गवाही नहीं देती। जो दिखाई पड़ता है वही कहूंगा। जो दिखाई ही नहीं पड़ता वह कैसे कहूं? और सच कहूं तो मुसीबत खड़ी होती है, झगड़ा खड़ा होता है, तूफान उठता है, आंधी उठती है। और अगर झूठ कहूं तो कैसे कहूं? झूठ कहूं तो सच का कुछ उसमें बचता नहीं, आंखों की कोई गवाही नहीं रह जाती।
दिल दोहां गलां तो मचदा ए।
"और दिल है कि हर हाल में दुखता है। अगर सच कहूं तो चारों तरफ तूफान उठता है। नाहक लोग दुखी होने लगते हैं।"
अभी पंडित लज्जाशंकर झा के मन को बड़ी पीड़ा हो गई। सच कहो तो मुसीबत है। सच जीओ तो मुसीबत है।
दिल दोहां गलां तो मचदा ए, जच-जच के जीभा कहिंदी ए।
"तो कोशिश करता हूं," बुल्लेशाह कहते हैं, "कोशिश करता हूं सम्हल-सम्हल कर कहूं।"
मगर कितना ही सम्हल-सम्हल कर कहो, अरे सम्हल-सम्हल कर ही किसी की गर्दन काटो, फिर भी तो चीखेगा-चिल्लाएगा तो ही! सम्हल-सम्हल कर ही किसी के शास्त्रों में आग लगाओ, सम्हल-सम्हल कर ही किसी के हनुमान जी छुड़ाओ, किसी के गणेश जी को हटाओ, झंझट तो होने वाली है।
जिस भेद पाया कलंदर दा।

कहते हैं, "जिसने उस प्रभु का राज पा लिया, जिसने अपने भीतर की राह खोज
ली उसने पा लिया। वह उस मंदिर का वासी है जहां कोई उतार-चढ़ाव नहीं। मुंह आई बात रोकी नहीं जा सकती।"
पंडित लज्जाशंकर झा कहते हैं कि यहां न कोई मंदिर, न कोई पूजा। और बुल्लेशाह कह रहे हैं, जिस भेद पाया कलंदर दा--जिसने उस प्रभु का राज पा लिया--राह खोजिया अपने अंदर दा! अब वह क्या खाक मंदिरों की तलाश करे! उसे मंदिर मिल गया, अपने भीतर मिल गया। वह स्वयं मंदिर है। जहां बुद्धपुरुष बैठते हैं वहां मंदिर; जहां चलते हैं वहां तीर्थ; जहां ठहर जाते हैं क्षण भर को वहां काबा बन जाते हैं और काशी बन जाते हैं। काबा और काशी तो पागल जाते हैं; बुद्ध पुरुष अपने भीतर जाते हैं।
राह खोजिया अपने अंदर दा, ओह वासी है उस मंदर दा।
क्योंकि वहीं तो मालिक बसा हुआ है। क्या तुम मिट्टी-पत्थर के मकानों में उसे खोज रहे हो! कहां मंदिरों और मस्जिदों में खोज रहे हो!
ओह वासी है उस मंदर दा, जिथे चढ़दी है न लहिंदी ए।
वहां न कोई उतार है न कोई चढ़ाव है। वहां कोई परिवर्तन नहीं, वहां शाश्वतता है। वहां न कोई जन्म है न मृत्यु है।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
क्या करूं--बुल्लेशाह कहते हैं--मुंह में बात आई जा रही है, आई जा रही है, कहनी ही पड़ेगी। अब मंदिरों के मानने वाले नाराज हो जाएं और मस्जिदों के मानने वाले नाराज हो जाएं तो हो जाएं, किया क्या जा सकता है! सम्हल-सम्हल कर कह रहा हूं।
अब मैं भी कितने सम्हल-सम्हल कर कह रहा हूं! मगर कुछ भी करो, कितने ही सम्हल कर कहो, जिनके पक्षपात हैं उनको चोट तो पहुंचेगी ही।
ए शाह अकल तू आया कर, सानूं अदब अदाब सखाया कर।
कहते हैं कि ऐ बुल्लेशाह, तू जरा अकल से काम ले। ये मस्ती की बातें, ये दीवानगी की बातें, ये पागलपन की बातें यूं ही मत कह दे। बहुत भांबड़ मचेगा! ऐ बुल्लेशाह, जरा अकल को बुला! यह अकल कहां खो गई?
असल में अकल के पार कोई जब जाता है, तभी तो उसे पाता है; यह मुसीबत है। अकल के जो पार गए उन्होंने उसे पाया। और जब उसको पाया तो बेचारे खोजते हैं अकल को कि किसी तरह मिल जाए तो जरा सम्हल-सम्हल कर कह सकें। तू आ और अदब-आदाब समझा। अरे, जरा आ और जरा ढंग की बातें कहलवा! अदब-आदाब! शिष्टाचार! अब मैं भी लाख कोशिश करता हूं कि शिष्टाचार बरतूं, मगर क्या करूं! लफंगों को कैसे महात्मा कहूं? भांबड़ मचे तो मचे! बुल्लेशाह तो भले आदमी रहे होंगे; बेचारे कहते हैं कि बुलाता हूं अकल को, ऐ अकल आ और मुझे अदब-आदाब समझा। हालांकि मुझे पता है कि अकल आई नहीं, गई तो गई, फिर क्या आएगी! खुद ही तो राख कर आए, अब कहां से लाओगे? मगर भले आदमी हैं। मैं उतना भला आदमी नहीं। मैं अकल-वकल को बुलाता नहीं।
मेरे पिता के पिता, मेरे बाबा हमेशा पूछा करते थे, हरेक से पूछा करते थे, मगर मैंने उनका प्रश्न सदा के लिए समाप्त कर दिया। मोहल्ले भर के बच्चों से वे पूछा करते थे, अकल बड़ी कि भैंस? स्वभावतः सभी कहते, अकल बड़ी। वे कहते, ठीक कहता है!
मुझसे पूछा उन्होंने, अकल बड़ी कि भैंस?
मैंने कहा, भैंस।
उन्होंने कहा, क्या कहा तूने--भैंस!
मैंने कहा, निश्चित। क्योंकि अकल तो आपकी खोपड़ी के भीतर है, भैंस को
रख सकते हैं अपनी खोपड़ी के भीतर? अगर भैंस को रख कर बता दो, तो मैं मान लूं कि अकल बड़ी कि भैंस, साफ हो जाएगा।
फिर मैंने कहा, तुम पूछते हो अकल बड़ी कि भैंस, कोई भैंस नहीं पूछती। पूछती ही नहीं। जानती ही है कि कौन बड़ा, पूछना क्या है! अरे, प्रश्न वह पूछे जिसको पता नहीं। अकल को पता होता तो पूछती क्यों? भैंस को पता है, इसलिए चुप है।
फिर उन्होंने नहीं पूछा। फिर मैं उनसे कई बार कहता, आजकल पूछते नहीं
कि अकल बड़ी कि भैंस! वे कहते, चुप रह! बेकार की बातें न छेड़! कम से कम मेरे सामने उन्होंने फिर किसी से नहीं पूछा कि अकल बड़ी कि भैंस। क्योंकि वह

उनको दिक्कत खड़ी हो गई कि भैंस को सिद्ध करना पड़ेगा; इतनी छोटी-सी खोपड़ी में अकल!
तो मैं नहीं बुलाता अकल को। बुल्लेशाह कहते हैं, "अकल तू आ, अदब-आदाब समझा। इस झूठी मैं को समझा जो मुझे मूरख कहती है।"
वे यह कह रहे हैं कि यह मेरा अहंकार ही मुझे मूरख कहता है; कहता है कि क्यों इतना भांबड़ मचवा रहा है। अरे, चुप हो! लोग सम्मान करेंगे, चरणों में फूल चढ़ाएंगे, क्यों पत्थर खाने चला है? तो अकल को कहते हैं कि तू आ जा, कुछ मेरे इस अहंकार को भी समझा। यह पागल मुझसे कह रहा है कि अगर सम्मान पाना हो तो सत्य की बात न कह।
असल में अंधों की इस दुनिया में अगर आदर पाना हो तो कभी आंख की बात न करना। अंधों की दुनिया में महाअंधे पूजे जाते हैं। मुझे अनेक पत्र आए हैं कि मैंने मदर टेरेसा की आलोचना की। उन सभी पत्रों ने एक बात बार-बार दोहराई है कि मदर टेरेसा को सारी दुनिया में सम्मान मिला, एक अकेले आप हैं जो उसकी आलोचना कर रहे हैं। जो जगत-सम्मानित है, नोबल पुरस्कार विजेता है, भारत-रत्न की उपाधि जिसे मिली, जिसे हर देश में होड़ लगी हुई है कि हर देश जिसको सम्मान दे, उसके आप अकेले आलोचक!
इस दुनिया में महाअंधे हों कोई, तो अंधों की भीड़ उनको नोबल प्राइज भी देगी, भारत-रत्न भी देगी, जगह-जगह उनको सम्मान भी मिलेगा, पुरस्कार भी मिलेंगे। मैं इन पत्र लिखने वालों से पूछता हूंः क्या तुम सोचते हो जीसस को नोबल पुरस्कार मिल सकता था? तो फिर सूली क्यों मिली? जीसस को भारत-रत्न की उपाधि मिल सकती थी? असंभव! जीसस को पत्थर मिले। बड़ी भांबड़ मची! और मदर टेरेसा को पुरस्कार मिल रहे हैं! और मदर टेरेसा को लोग समझते हैं कि जीसस की अनुयायी है। भांबड़ मेरे पास मच रही है, तो जीसस का संगी-साथी कौन है, मैं हूं या मदर टेरेसा? सूली लगे तो मुझे लगेगी, मदर टेरेसा को नहीं लग सकती। मंसूर को सूली लगी, सरमद को सूली लगी। लेकिन किसी पंडित-पुरोहित को थोड़े ही लगती है; उसको सम्मान मिलता है; उसको पुरस्कार मिलते हैं, आदर मिलता है।
बुल्लेशाह ठीक कहते हैं, "इस दुनिया में अंधकार है, इसका आंगन फिसलन भरा है। भीतर प्रवेश करके देखो कौन है। बाहर व्यर्थ ढूंढ रहे हो। अब मुंह में बात आ गई है तो रुकती नहीं।"
वे कहते हैं कि कहना ही पड़ेगी। इस दुनिया में अंधकार है और तुम अंधे हो। इसका आंगन फिसलन भरा है। भीतर प्रवेश करके देखो कौन है! बाहर क्यों व्यर्थ ढूंढ रहे हो? ये मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे और गिरजे तो सब बाहर हैं। ये काबा और काशी और गिरनार, ये तो सब बाहर हैं। ये कृष्ण, ये महावीर, ये बुद्ध, ये सब तो बाहर हैं। अपने भीतर आओ, तो शायद तुम उसको पा सको जो पाने योग्य है।
"प्रत्येक चेहरे में परमात्मा की छवि है--कहीं छिपी है, कहीं प्रकट।"
बस इतना ही फर्क है। यह मैं तुमसे बार-बार कहा हूं। कहीं परमात्मा सोया है, कहीं जगा है; बस इतना ही फर्क है। बुद्ध में और तुममें कोई फर्क नहीं; इतना ही फर्क है कि बुद्ध ने आंखें खोल दीं और तुम आंखें बंद किए बैठे हो; कि बुद्ध ने अपने दरवाजे खोल दिए और तुम अपने दरवाजे अटकाए बैठे हो; बस इतना ही फर्क है, जरा-सा फर्क है।
"प्रत्येक चेहरे में परमात्मा की छवि है--कहीं छिपी है, कहीं प्रकट। सबके संबंध में हमें यह पता है और यह बात हर बुद्धिमान को भी मालूम है। मुंह में बात आ गई तो रुकती नहीं।"
ये बुद्धिमान, जिनको यह बात मालूम है, निश्चित ही स्वयं के अनुभव से मालूम नहीं है--उधार है। अब ये पंडित लज्जाशंकर झा आ गए हैं। ये बुद्धिमान आदमी मालूम होते हैं, पंडित हैं। अब इनको फिक्र पड़ी है कि यहां हरिकथा तो हो ही नहीं रही है। यहां तो कुछ और ही हो रहा है। यहां शास्त्रों के सत्कार और सम्मान में तो कुछ कहा नहीं जा रहा, यहां तो शास्त्रों की आलोचना हो रही है।
लेकिन बुल्लेशाह के सम्मान में मैं राजी हूं। बुल्लेशाह शाहों के शाह हैं। क्या तुम्हारे सड़े-सड़ाए पुराणों की मैं चर्चा करूं! अगर तुम खुद ही

उनको उठा कर देखोगे तो हैरान होओगे कि क्या-क्या गंदगी उनमें भरी है और कैसी-कैसी मूर्खतापूर्ण बातों का आडंबर!
जहां भी कोई बात सार्थक है, मेरा समर्थन है। मगर मेरा समर्थन तभी है
जब मेरे सत्य से वह अनुकूल पड़ती हो, और किसी कारण से मैं समर्थन नहीं देता। फिर किसी ने भी कही हो, कृष्ण ने कही हो, कि बुद्ध ने, कि महावीर ने, कि राम ने, कि मोहम्मद ने, अगर मैं उसके लिए अपने अनुभव में नहीं पाता हूं तो मैं राजी नहीं हो सकता। मेरी जिम्मेवारी, मेरा उत्तरदायित्व मेरी चेतना के प्रति है, किसी और के प्रति नहीं।
इक लाजम गल अदल दी है, सानूं बात मालूमी सभ दी है।
हर हर विच सूरत रब दी है, कहुं जाहर कहुं छपेंदी ए।।
कहीं छिपी, कहीं जाहिर। और यह बात सबको मालूम है। जिनको बुद्धिमान कहते हैं, उनको तो बहुत मालूम है। मगर बुद्धिमानों से ज्यादा बुद्धू इस दुनिया में कोई भी नहीं। क्योंकि असली बुद्धिमत्ता तो बुद्धि के पार जाने में है। बुद्धि तो कचरा इकट्ठा करने में लगी रहती है। पंडित तो तोते होते हैं।
"यहां सब उसी का विस्तार है। इसका अपना अनूठा रहस्य है। यहां उसी एक
की सूरत की चमक है। जैसे जंगल में चिनगारी लग जाए। मुंह आई बात रुकती नहीं।"
एथे लेखा पाओ पसारा है, इसदा वखरा भेद निआरा है।
इक सूरत दा चमकारा है, ज्यों चिंग दारू विच पैंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
जरा-सी चिनगारी जैसे सारे जंगल को आग लगा देती है, ऐसे एक व्यक्ति के भीतर भी परमात्मा का अनुभव जग जाता है तो आग लगनी शुरू हो जाती है, आग फैलनी शुरू हो जाती है। भांबड़ तो मचेगा! आग लगेगी तो भांबड़ तो मचेगा। अरे, बाहर की आग लगती है तो इतना भांबड़ मच जाता है; भीतर की आग लगेगी तो भांबड़ तो बहुत मचेगा! अरे, झूठा ही चिल्ला दो कि आग लग गई तो भांबड़ मच जाता है। आज ही रात जाकर किसी टाकीज में बैठ जाना और बीच में एकदम चिल्ला देनाः आग-आग! और देखना कैसा भांबड़ मचता है! शब्द ही भांबड़ मचा देगा।
और भीतर की आग तो निश्चित ही अहंकार को जलाएगी, ज्ञान को जलाएगी, तुम्हारे सब संस्कारों को जलाएगी, तो पीड़ा तो होगी। भीतर की आग तुम्हें मारेगी और नया जन्म देगी। तुम्हारा पुराना रूप तो जाएगा और तुम्हारा नया रूप प्रकट होगा। यह इतनी बड़ी क्रांति है कि तूफान तो मचेगा।
"जब नूर प्रकट हुआ तो कोहतूर पर्वत जल उठा। तब मंसूर सूली चढ़ गए। मैं
की अकड़ क्या? मुंह आई बात रुकती नहीं।"
बुल्लेशाह कहते हैं कि जब नूर प्रकट हुआ तो कोहतूर पर्वत जल उठा। कोहतूर पर्वत पर, तूर के पर्वत पर जीसस को परमात्मा के दर्शन हुए। सारा पर्वत ऐसा लगा कि जैसे आग लग गई है। जब परमात्मा का नूर प्रकट होता है तो आग तो लगती है, पर्वत तक जल उठते हैं। लेकिन कुछ लोगों की हालत तो पर्वतों से भी बिगड़ी है। उनके हृदय में तो पत्थर ही पत्थर हैं; पत्थर भी जल जाते हैं, मगर वे नहीं जलते। जल जाएं तो जीवंत हो जाएं।
कहते हैं कोहतूर पर्वत जल उठा! लेकिन जब किसी के भीतर यह पर्वत जलता
है और किसी के भीतर यह नूर प्रकट होता है तो उपद्रव होने वाला है। मंसूर को सूली इसीलिए तो लगी, भीतर नूर प्रकट हुआ। अंधों को बात जंची नहीं। अंधों को बहुत कठिनाई हो गई। मंसूर ने एक ही तो बात कही थी, बेचारे का कसूर क्या था! इतना ही तो कसूर था कि उसने घोषणा की अनलहक, कि मैं ईश्वर हूं, कि मैं सत्य हूं! बस इतनी ही उसके संबंध में शिकायत है कि उसने अपने भगवान होने की घोषणा कर दी, अहं ब्रह्मास्मि का उदघोष कर दिया। बस पर्याप्त कठिनाई शुरू हो गई।
मैंने जिस दिन से घोषणा की भगवत्ता की उस दिन से कठिनाई शुरू हो गई। उसके पहले सब ठीक था। मैं यही बातें तब भी कह रहा था, जरा सम्हल-सम्हल कर कह रहा था। फिर मैंने देखा कि क्या फायदा सम्हल-सम्हल कर कहने में, क्योंकि सम्हल-सम्हल कर कहने में लोगों की नींद ही नहीं खुलती। वे घुर्राते ही रहते हैं, घुर्राते ही रहते हैं। वे अपनी नींद में अल्ल-बल्ल बकते ही रहते हैं। तो मैंने फिर उनके ऊपर ठंडा पानी फेंकना शुरू कर दिया, झकझोर कर उनको

उठाना शुरू कर दिया, उनके कंबल-दुलाइयां छीननी शुरू कर दीं। उस काम की शुरुआत मैंने इस बात की घोषणा से की जो मंसूर ने की थी--अनलहक! बस कोहराम मच गया, भांबड़ मच गया।
अब मुझे लोग लिखते हैं, कल ही एक पत्र मुझे आया कि अगर आप भगवान हैं तो फिर अकाल क्यों पड़ता है? फिर गरीबी क्यों? फिर नदियों में बाढ़ क्यों आती है?
तो मैं इनसे पूछता हूं कि यही सवाल तुम राम से पूछते हो कि नहीं, कि सिर्फ मुझ से ही पूछते हो? यही सवाल कृष्ण से पूछते हो कि नहीं, कि मुझसे पूछते हो? यही सवाल बुद्ध से भी पूछो, महावीर से भी पूछो। यही सवाल जीसस से भी पूछो और यही सवाल मोहम्मद से भी पूछो। अगर ये सब इस सवाल का जवाब देने को राजी हों तो मैं तुमसे कहता हूं कि रोक दूंगा अकाल, रोक दूंगा गरीबी, रोक दूंगा तूफान! मगर इन्होंने किसी ने नहीं रोका तो मैं ही क्यों इस झंझट में पडूं? जब कोई इस झंझट में नहीं पड़ा और कोई इनसे नहीं पूछता... ।
मुझसे लोग पत्र लिख-लिख कर पूछते हैं कि अगर आप भगवान हैं तो आप गरीबों की सेवा क्यों नहीं करते, अस्पताल क्यों नहीं खोलते, स्कूल क्यों नहीं खोलते?
महावीर ने कितने स्कूल खोले? बुद्ध ने कितने अस्पताल चलाए? मोहम्मद
ने कितने विधवाश्रम और कितने अनाथालय चलाए? मुझसे ही ये सवाल क्या पूछने! भगवत्ता से इसका क्या लेना-देना है? लेकिन लोग बड़े अजीब हैं। ये सवाल वे बुद्ध से भी पूछते थे। ये सवाल वे महावीर से भी पूछते थे। अब नहीं पूछते; अब चुपचाप पूजा करते हैं। मुर्दों की पूजा की जाती है, जिंदों के साथ झंझट खड़ी हो जाती है। और केवल जिंदा व्यक्ति ही तुम्हारे जीवन में चिनगारी दे सकता है; मुर्दे तो क्या चिनगारी देंगे, वे तो खुद ही राख हो चुके! अभी जिस तूर पर्वत पर आग लगी हो उससे कुछ आग ले लो। मगर अभी तो भांबड़ में उलझे रहोगे।
"जब नूर प्रकट हुआ तो कोहतूर पर्वत जल उठा। तब मंसूर सूली चढ़ गए। मैं
की अकड़ क्या? मुंह आई बात रुकती नहीं।"
यह मैं तो जल जाएगा। अरे, मंसूर सूली चढ़ गए जब नूर प्रकट हुआ, यह तुम्हारा अहंकार तो राख हो जाएगा। मगर इसी अहंकार को बचाने की कोशिश में लगा रहता है, हर आदमी इसी कोशिश में लगा हुआ है।
"यदि मैं इसे साफ अभिव्यक्ति दूं, सब लोग अपने इकरार भूल जाते हैं। फिर वे बुल्ले को मारने दौड़ते हैं। यहां मरे हुए की बात की शोभा है। मुंह आई बात रुकती नहीं।"
जे जाहर करां तकसार ताईं, सभ भुल जावन इकरार ताईं।
फिर मारन बुल्ले यार ताईं, एथे मुकदी गल सुहेंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
बुल्ले कहते हैंः "यह बड़ी अजीब दुनिया है, यदि मैं साफ-साफ बात कहूं तो लोग भूल ही जाते हैं, शिष्टाचार भी भूल जाते हैं; एकदम गालियां देने को, मारने को उतारू हो जाते हैं। सामान्य जीवन-व्यवहार के नियम भी भूल जाते हैं, वे बुल्ले को मारने दौड़ते हैं। यहां मरे हुए की बात की शोभा है।" क्या प्यारी बात कही कि यहां मरे हुओं की बात की शोभा है! यहां बुद्ध
की बात की शोभा है। यहां महावीर की बात की शोभा है। यहां कृष्ण की बात की शोभा है। यहां जीसस की बात की शोभा है। तब नहीं थी जब वे जिंदा थे। तब महावीर पर लोगों ने पत्थर मारे, पागल कुत्ते छोड़े, कानों में खीले ठोंक दिए। जिंदा आदमी के साथ तुम कैसा सदव्यवहार करते हो!
इसलिए जब मुझे गालियां पड़ती हैं--और निरंतर पड़ती हैं, सब तरह की गालियां पड़ती हैं--तो मैं सोचता हूं कि अच्छे लक्षण हैं। मेरा सौभाग्य है। क्योंकि मेरे साथ ये वही व्यवहार कर रहे हैं जो इन्होंने बुद्ध के साथ किया, कृष्ण के साथ किया, महावीर के साथ किया, जीसस के साथ किया। मैं तो इसे ही पुरस्कार मानता हूं। नोबल पुरस्कार तो मुझे मिले तो मैं लेने से इनकार कर दूंगा, क्योंकि वह तो अपमान होगा। क्योंकि जीसस को मिला नहीं ऐसा कोई पुरस्कार, महावीर को मिला नहीं, बुद्ध को मिला नहीं। वैसे पुरस्कार को लेकर मैं क्या करूंगा? वह तो मैं अपनी जात से ही बाहर निकल जाऊंगा, कुजात हो जाऊंगा।

"हमने इल्म हकीकी पढ़ लिया है। वहां बस उस एक अक्षर की तहकीक है। बाकी
सब झगड़े फालतू हैं। व्यर्थ ही यह मैं, यह अहंकार झगड़ा खड़ा करता है। मुंह आई बात रुकती नहीं।"
असां पढ़िया इलम हकीकी है, उथे इक हरफ तहकीकी है।
बस एक अक्षर की बात है। अक्षर की! जो कभी क्षय न हो, जो कभी क्षर न हो,
जो कभी मरे नहीं, मिटे नहीं--उस एक अमृत को जान लेने की बात है।
होर झगड़ा सभ वधीकी है।
और सारा झगड़ा व्यर्थ है।
ऐवें रौला पा पा बहिंदी ए, मुंह आई बात न रहिंदी ए।
ये व्यर्थ अहंकार के झगड़े हैं। ये हिंदू के और मुसलमान के और ईसाई के
और सिक्ख के--ये सारे झगड़े व्यर्थ हैं।
बुल्लेशाह कहते हैंः "परमात्मा, शौहर हमसे अलग नहीं। बिना परमात्मा
के यहां कुछ भी नहीं। पर देखने वाली आंख नहीं है, इसलिए प्राण दुख देख रहे हैं, दुख पा रहे हैं। मुंह आई बात रुकती नहीं।"
पंडित लज्जाशंकर झा को याद दिला दूं। बुल्लेशाह कहते हैंः
बुलिया शौह असां थीं वख नहीं, बिना शौह थीं दूजा कख नहीं।
पर देखन वाली अख नहीं, ताहीं जान पई दुखड़े सहिंदी ए।।
मुंह आई बात न रहिंदी ए।
पंडित लज्जाशंकर झा कहते हैं कि यहां आकर मन को बड़ी पीड़ा पहुंची।
पहुंचेगी ही, क्योंकि देखने वाली आंख नहीं है, इसलिए प्राणों को पीड़ा पहुंचती है। परमात्मा एक है, किसी से अलग नहीं है। हम उसके अंग हैं; वह हमारा अंग है। हम उसमें हैं; वह हममें है। उसके सिवाय यहां कुछ भी नहीं है, पर देखने वाली आंख नहीं है; इसलिए प्राण दुख पा रहे हैं।
"मुंह आई बात रुकती नहीं है।"
कहनी ही पड़ेगी। मचे भांबड़, मचे तूफान, उठें आंधियां! सूली लगनी हो सूली लगे, लेकिन वह बात तो कहनी ही पड़ेगी।
हम परवरिशे-लौहो-कलम करते रहेंगे
जो दिल पे गुजरती है, रकम करते रहेंगे
असबाबे-गमे-इश्क वहम करते रहेंगे
वीरानी-ए-दौरां पे करम करते रहेंगे
हां, तल्खी-ए-अय्याम अभी और बढ़ेगी
हां, अहले-सितम मश्के-सितम करते रहेंगे मंजूर ये तल्खी, ये सितम हमको गवारा
दम है तो मुदावा-ए-अलम करते रहेंगे
बाकी है लहू दिल में तो हर अश्क से पैदा रंगे-लबो-रुख्सारे-सनम करते रहेंगे
इक तर्जे-तगाफुल है सो वो उनको मुबारक
इक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेंगे
जो भीतर जागा है वह तो प्रकट होगा ही होगा।
हम परवरिशे-लौहो-कलम करते रहेंगे
हम तो गीत गाते रहेंगे। हम तो गुनगुनाएंगे।
जो दिल पे गुजरती है, रकम करते रहेंगे
और जो भीतर घटती है उसे अभिव्यक्ति देते रहेंगे।
असबाबे-गमे-इश्क वहम करते रहेंगे
यह जो हमारा प्रेम है, इस प्रेम को प्रकट करने के लिए हम साधन जुटाते रहेंगे।
वीरानी-ए-दौरां पे करम करते रहेंगे
यह संसार की जो वीरानी है, इस पर जितनी कृपा हो सकेगी, करेंगे।
हां, तल्खी-ए-अय्याम अभी और बढ़ेगी
हमें मालूम है कि अभी जीवन की कटुता और बढ़ेगी, अभी अंधेरा और बढ़ेगा।
हां, तल्खी-ए-अय्याम अभी और बढ़ेगी
हां, अहले-सितम मश्के-सितम करते रहेंगे
यह भी हमें मालूम है कि अत्याचारी अत्याचार करेंगे, दुष्ट दुष्टता करेंगे।

हां, अहले-सितम मश्के-सितम करते रहेंगे
मंजूर ये तल्खी...
हमें यह कटुता स्वीकार है। हमें यह पत्थर स्वीकार है। यह पत्थर पुरस्कार है।
मंजूर ये तल्खी, ये सितम हमको गवारा
हमें ये अत्याचार भी स्वीकार हैं।
दम है तो मुदावा-ए-अलम करते रहेंगे
जो हम से बन सकेगा उतना इलाज करते रहेंगे।
मंजूर ये तल्खी, ये सितम हमको गवारा
दम है तो मुदावा-ए-अलम करते रहेंगे
बाकी है लहू दिल में तो हर अश्क से पैदा
एक आंसू भी बचा रहेगा तो उससे भी हम जो किया जाना चाहिए वही करेंगे। रंगे-लबो-रुख्सारे-सनम करते रहेंगे
तो उस प्यारे के ओंठों पर, कपोलों पर, उस एक बचे हुए आंसू से भी रंग भरते रहेंगे।
बाकी है लहू दिल में तो हर अश्क से पैदार
ं-लबो-रुख्सारे-सनम करते रहेंगे
इक तर्जे-तगाफुल है सो वो उनको मुबारक
एक उपेक्षा का ढंग है। यह संसार करे उपेक्षा... ।
इक तर्जे-तगाफुल है सो वो उनको मुबारक
इक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेंगे
और एक हमारा प्रेम का निवेदन है, वह हम करते रहेंगे। इक तर्जे-तगाफुल है सो वो उनको मुबारक
इक अर्जे-तमन्ना है सो हम करते रहेंगे
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
छठवां प्रवचन

विज्ञान और धर्म के बीच सेतु

पहला प्रश्नः ओशो, पड़ोसी देशों द्वारा किए जाने वाले शस्त्र-संग्रह
और उसके कारण बढ़ रहे तनाव के संदर्भ में देश की सुरक्षा की दृष्टि से श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा हाल ही एक भाषण में दी गई चेतावनी की आलोचना करते हुए महर्षि महेश योगी ने कहा है कि देश को इस प्रकार के भय और अनिश्चितता से छुड़वाने के लिए सरकार को उनके भावातीत ध्यान (टी.एम.) तथा टी.एम. सिद्धि कार्यक्रम का उपयोग करना चाहिए। अपनी ध्यान पद्धति को वैदिक ज्ञान का सार बताते हुए उन्होंने कहा है कि इसके प्रयोग द्वारा व्यक्ति अपने तनावों से मुक्त होकर अपनी चेतना को ऊपर उठाते हैं और समाज में सामंजस्य स्थापित करने में प्रभावशाली होते हैं। महर्षि महेश योगी के अनुसार उनकी ध्यान पद्धति अपनाने से सेना और शस्त्रों की जरूरत नहीं रह जाएगी और बहुत थोड़े-से खर्च में भारत की सुरक्षा हो सकेगी, उसकी समस्याएं हल हो सकेंगी तथा देश की चेतना में सत्व का उदय हो सकेगा।
ओशो, श्री महेश योगी द्वारा किए गए इस दावे में क्या कुछ सचाई है? साथ
ही आप जिस ध्यान को समझाते हैं तथा उसका प्रयोग करा रहे हैं, क्या वही ध्यान ऊपर बताई गई बातों के संदर्भ में अधिक प्रभावशाली और कारगर सिद्ध नहीं होगा? निवेदन है कि इस विषय में कुछ कहें।

सत्य वेदांत, भारत के दुर्भाग्यों में से यह एक बड़ी से बड़ी आधारशिला है। ऐसी ही मूढ़तापूर्ण बातों के कारण भारत सदियों से गरीब है, गुलाम रहा है, सब तरह से पददलित, शोषित, अपमानित। लेकिन फिर भी हम हैं कि अपनी जड़ता को दोहराए चले जाते हैं।
महर्षि महेश योगी ने जो कहा वह सिवाय शेखचिल्लीपन के और कुछ भी नहीं। पहली बात, उन्होंने कहा कि यह वैदिक ज्ञान का सार है--उनका भावातीत ध्यान। वेद के ऋषि क्या कर सके? अगर यह वैदिक ज्ञान का सार है तो वैदिक ऋषियों
के जमाने में तो अस्त्र-शस्त्रों की कोई जरूरत नहीं होनी चाहिए थी। लेकिन परशुराम भी, हिंदुओं के अवतार, स्वयं भगवान के अवतार हाथ में फरसा लिए जीवन भर क्षत्रियों की हत्या करते फिरे। अठारह बार पूरी पृथ्वी को क्षत्रियों से विनष्ट किया। भावातीत ध्यान ही काम कर देता, फरसे को लेकर घूमने की क्या जरूरत थी? एक मंत्र की मार से सारे क्षत्रिय मर जाते। लेकिन परशुराम फरसे के साथ इतने संयुक्त हो गए कि उनके नाम में भी फरसा जुड़ गया। परशुराम का अर्थ है--फरसे वाले राम।
और अगर भावातीत ध्यान ही अस्त्र-शस्त्रों के लिए परिपूरक हो सकता है।
तो यह धनुष-बाण लिए हुए रामचंद्र जी क्या भाड़ झोंक रहे हैं? रामचंद्र जी को भी यह पता नहीं था जो महर्षि महेश योगी को पता है? ये धनुर्धारी राम किसलिए बोझ ढोते फिरते हैं?
और अगर भावातीत ध्यान अस्त्र-शस्त्रों की जगह काम आ सकता है तो फिर महाभारत का युद्ध क्यों हुआ? कृष्ण भावातीत ध्यान ही समझा देते अर्जुन को, सस्ते में बात निपट जाती। कोई सवा अरब आदमी युद्ध में मरे। इतनी महान हिंसा न पहले कभी हुई थी न बाद में कभी हुई। जिनको हम आज विश्व-युद्ध कहते हैं वे सब तो बहुत छोटे मालूम पड़ते हैं। कृष्ण को भी भावातीत ध्यान का पता नहीं था! कृष्ण ने क्यों अर्जुन को युद्ध के लिए उत्सुक किया, आतुर किया? वह तो बेचारा भावातीत ध्यान में जाना चाहता था, उसके हाथ-पैर कंपने लगे थे, गांडीव छूट गया था। शस्त्र तो छूटे जा रहे थे। वह तो भावातीत ध्यान में जाने की तैयारी कर रहा था। लेकिन कृष्ण ने उसे फिर ललकारा और कहा, सम्हाल अपने गांडीव को। यह युद्ध तो होना ही है। यह युद्ध तो अपरिहार्य है।
और अगर कृष्ण भी कौरवों के मन को अपनी ध्यान की शक्ति से न बदल सके तो तुम सोचते हो ये महर्षि महेश योगी और इनके आस-पास इकट्ठे हो गए कुछ मूढ़जन ये कोकाकोला-कोकाकोला भज कर सस्ते में भारत की सुरक्षा का इंतजाम करवा देंगे?

मगर यह मूढ़ता पुरानी है; नई नहीं है, बड़ी पुरानी है। महमूद गजनवी ने भारत पर हमला किया। सोमनाथ का मंदिर उस समय का श्रेष्ठतम मंदिर था, सबसे ज्यादा धनी। जैसे आज दक्षिण में तिरुपति का मंदिर है, ऐसा सोमनाथ का मंदिर था, जहां हीरे-जवाहरातों के ढेर लग गए थे। महमूद गजनवी गजनी से चला था, नजर सोमनाथ के मंदिर पर थी। और जब सोमनाथ के मंदिर पर महमूद गजनवी पहुंचा तो देश के अनेक क्षत्रियों ने अपने जीवन को समर्पित करने की तैयारी दिखाई। उन्होंने कहा, हम तैयार हैं युद्ध के लिए, मंदिर की सुरक्षा के लिए। लेकिन वहां बारह सौ पुजारी थे मंदिर में--बारह सौ महर्षि महेश योगी! उन्होंने कहा कि तुम और हमारी रक्षा करोगे! तुम और भगवान के मंदिर की रक्षा करोगे! पागल हो गए हो! अरे भगवान, जो सबका रक्षक है, जिसने सारी पृथ्वी को, सारे अस्तित्व को धारण किया है, तुम उसकी रक्षा करोगे! जिसने तुम्हें बनाया और जो तुम्हें मिटा दे, जिसके इशारे की सारी बात है, उसकी तुम रक्षा करोगे! क्षत्रिय योद्धा आने को तैयार थे, अपने जीवन की आहुति देने को तैयार थे, लेकिन पुजारियों ने कहा कि इसकी कोई जरूरत नहीं है। हमारे वैदिक मंत्र पर्याप्त हैं।
और जब महमूद गजनवी पहुंचा तो वह भी हैरान हुआ, क्योंकि मंदिर में कोई सुरक्षा का आयोजन नहीं था, कोई तलवार न थी, कोई सैनिक न था। हां, बारह सौ पुजारी वैदिक मंत्रोच्चार जरूर कर रहे थे। वे वैदिक मंत्रोच्चार करते रहे और महमूद गजनवी ने उठाई गदा और मंदिर की प्रतिमा को खंड-खंड कर दिया। उस प्रतिमा के भीतर बहुमूल्य से बहुमूल्य हीरे थे। वह प्रतिमा टूटी तो सारे मंदिर में हीरे बिखर गए। और वे बारह सौ पुजारी मंत्रोच्चार करते रहे। उनके मंत्रोच्चार से इतना भी न हुआ--बारह सौ पुजारियों के मंत्रोच्चार से--कि एक महमूद गजनवी का हृदय बदल जाता।
लेकिन यह मूर्खता अब भी जारी है, अब भी वही बकवास, अब भी वही बेमानी बातें। और भारत का मन चूंकि सदियों से निर्मित हुआ है इन्हीं गलत संस्कारों में पला हुआ, ये बातें प्रभावित करती हैं। लगता है कि अहा, वैदिक ऋषि कैसा अदभुत विज्ञान हमें दे गए हैं! न अस्त्रों की जरूरत, न शस्त्रों की जरूरत! तो बाइस सौ साल तक तुम गुलाम क्यों रहे?
इस बाइस सौ साल में कितने तो ऋषि हुए, कितने महर्षि हुए--शंकराचार्य हुए, रामानुजाचार्य हुए, वल्लभाचार्य हुए, निम्बार्क हुए--इन सबमें से किसी की भी मंत्र की क्षमता इतनी न थी कि भारत की दासता को मिटा देता! छोटी- छोटी कौमें आईं, शक आए, हूण आए, जिनकी कोई कीमत न थी, जिनका कोई नामलेवा नहीं था, आज कोई नामलेवा नहीं है, छोटे-छोटे जत्थे आए और यह विराट देश गुलाम होता चला गया, क्योंकि इस विराट देश के पास मूर्खतापूर्ण बातों का अंबार है। यह उन्हीं पर भरोसा किए रहा। यह उन्हीं को छाती से लगाए बैठा रहा। इसने सोचा कि यह तो पुण्यभूमि है, धर्मभूमि है। स्वयं देवता यहां पैदा होने को तरसते हैं। वही करेंगे इसकी रक्षा। किसी ने कोई रक्षा न की। कोई रक्षा न हुई।
और आज भी बीसवीं सदी में इस तरह की शेखचिल्लीपन की बातें, सिर्फ इस बात की सूचक हैं कि यह देश अभी भी समसामयिक नहीं है।
पदार्थ और चेतना के अलग-अलग नियम हैं। ध्यान से व्यक्ति की चेतना रूपांतरित होती है, लेकिन पदार्थ पर उसका कोई परिणाम नहीं होता। पदार्थ पर परिणाम के लिए तो विज्ञान चाहिए। विज्ञान की कोई क्षमता मनुष्य की चेतना पर काम नहीं आती। और धर्म की कोई क्षमता पदार्थ पर काम नहीं आती। इस भेद को स्पष्ट समझ लेना चाहिए। यदि देश में गरीबी है तो विज्ञान से मिटेगी, धर्म से नहीं। धर्म से मिट सकती होती तो पैदा ही न होती। हजारों- हजारों साल से तो तुम धार्मिक हो, अब और क्या ज्यादा धार्मिक होओगे? इससे ज्यादा और क्या धर्म सम्हालोगे? बहुत तो सम्हाल चुके। महावीर और बुद्ध और कृष्ण और राम, इतनी विराटशृंखला है तुम्हारे पास धार्मिक पुरुषों की, लेकिन गरीबी तो न मिटी तो न मिटी। गरीबी तो विज्ञान से मिटेगी। उसके लिए तो आइंस्टीन चाहिए, न्यूटन चाहिए, एडीसन चाहिए, रदरफोर्ड चाहिए।
हां, यह सच है कि भीतर की गरीबी, आत्मा की गरीबी विज्ञान से न मिटेगी।
उसके लिए बुद्ध चाहिए, जरथुस्त्र चाहिए, जीसस चाहिए, लाओत्सु चाहिए।

और इन दोनों का हम स्पष्ट विभाजन समझ लें, इसमें कहीं भूल-चूक न हो। यही भूल-चूक हमें सता रही है, हमारे प्राणों पर भारी हो गई है। इसी भूल-चूक ने हमें मारा है। जब बीमारी हो तो चले तुम पुजारी के पास, चले तुम किसी ज्योतिषी के पास, चले तुम मंदिर किसी पत्थर की मूर्ति की प्रार्थना करने। जब बीमारी हो तो चिकित्सक के पास जाओ, तो औषधि की तलाश करो। और जब गरीबी हो तो तकनीक खोजो कि ज्यादा पैदावार कैसे हो। नहीं, लेकिन हम तकनीक न खोजेंगे, हम यज्ञ करेंगे, हवन करेंगे कि वर्षा हो जाए।
कितनी सदियों से तुम यज्ञ और हवन कर रहे हो, यह वर्षा कब होगी? बाढ़ आए
तो पूजा और पाठ, अकाल पड़े तो पूजा और पाठ। और तुम्हारे पूजा-पाठ का परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। निरपवाद रूप से तुम्हारा पूजा-पाठ व्यर्थ गया है। उतना ही समय तुमने, उतना ही श्रम तुमने अगर विज्ञान को दिया होता तो तुम आज पृथ्वी पर सर्वाधिक धनी देश होते। अमरीका की कुल उम्र तीन सौ साल है, तीन सौ साल में संपदा बरस गई। और हम तो कोई दस हजार वर्षों से इस देश में हैं, शायद ज्यादा समय से हों। दस हजार सालों में भी हम गरीब के गरीब रहे। हमारे सोचने में कहीं कोई आधारभूत भूल है, कहीं कोई बुनियादी, कोई जड़ की, कोई मूल की गलती है। और उस गलती को सुधारना जरूरी है।
हां, यह मैं कहूंगा कि कोई सोचता हो कि विज्ञान से आत्मा की शांति मिलेगी तो वह भी उतना ही गलत है जितना कोई सोचता हो कि ध्यान से और पेट की भूख बुझेगी। पेट के अपने नियम हैं और आत्मा के अपने नियम हैं। आंख देख सकती है, कान सुन सकता है। जो कान से देखने की कोशिश करेगा, वह पागल है। और जो आंख से सुनने की कोशिश करेगा, वह मूढ़ है। आखिर कुछ सीमाएं खींचना सीखो। कुछ जीवन के गणित की पहचान लो। भीतर के जगत का अपना नियम है। वहां ध्यान सहयोगी है। वहां गहरी से गहरी शांति पैदा होगी, मौन पैदा होगा, आनंद उभरेगा। लेकिन उससे रोटी पैदा नहीं होगी, न मशीनें चलेंगी।
भावातीत ध्यान से कारें नहीं चल सकतीं; उसके लिए पेट्रोल चाहिए। भावातीत ध्यान से उद्योग नहीं चल सकते; उसके लिए मशीनें चाहिए। भावातीत ध्यान से वर्षा नहीं होगी। बादलों को कुछ चिंता नहीं पड़ी है तुम्हारे भावातीत ध्यान की। पैदावार बढ़ नहीं जाएगी।
और महर्षि महेश योगी ने कहा है कि "देश को इस प्रकार के भय और अनिश्चितता से छुड़वाने के लिए सरकार को उनके भावातीत ध्यान तथा टी.एम. सिद्धि कार्यक्रम का उपयोग करना चाहिए।"
इन नासमझों को कहो कि बकवास बंद करो। इंदिरा गांधी को मैं कहूंगा कि
इस तरह की मूढ़ता की बातों में मत पड़ना। दिल्ली में इस तरह के मूढ़ रोज कुछ न कुछ उपद्रव करने में लगे हुए हैं। और ये क्यों दिल्ली में इकट्ठे होते हैं? महर्षि महेश योगी दिल्ली में अड्डा जमाए बैठे हैं कुछ महीनों से और भावातीत ध्यान का प्रयोग चल रहा है! दिल्ली ही क्यों? क्योंकि वहीं सत्ता है, राजनीति है। अब यह उन्होंने सोचा कि और अच्छी बात हुई कि अगर देश पर संकट आ रहा है तो शोषण करो इस अवसर का, इस मौके को चूको मत। इस अवसर का फायदा उठा लो।
ये सब अवसरवादी हैं और इनको सहारा देने वाले राजनीतिज्ञ हैं। क्योंकि
वे राजनीतिज्ञ भी तुम्हारी भीड़ से ही पैदा होते हैं; तुम्हारी भीड़ के ही मत से तो वे जिंदा होते हैं। वे तुम से गए-बीते होते हैं। तुम से गए-बीते होते हैं, तभी तो तुम उन्हें अपना नेता चुनते हो। अगर पागल किसी को नेता चुनेंगे तो महा-पागल को ही चुनेंगे; उनसे तो कुछ आगे होना ही चाहिए।
देश में अगर भय है तो उसके लिए अस्त्र-शस्त्र चाहिए, ध्यान नहीं। और देश में अगर अनिश्चितता है तो इस देश को अणुबम बनाने होंगे, उदजन-बम बनाने होंगे, इस देश को विज्ञान की सारी सुविधाओं का उपयोग करना होगा। नहीं तो यह देश फिर सोमनाथ के मंदिर की तरह टूटेगा और बरबाद होगा। और न महमूद गजनवी ने तुम्हारी बकवास सुनी और तुम्हारे मंत्र सुने और न पाकिस्तान सुनेगा और न चीन सुनेगा। खतरा कहां से है? इन दो मुल्कों से खतरा है--चीन से है और पाकिस्तान से है। दोनों के पास अणुबम की संभावना बढ़ती जा रही है। चीन के पास तो सुनिश्चित अणुबम है। और पाकिस्तान के लिए सारे मुसलमान देश उदजन बम बनाने के लिए संपत्ति देने को तैयार हो गए हैं। और यहां के ये

तथाकथित पोंगा-पंडित, ये समझा रहे हैं इंदिरा गांधी को कि भावातीत ध्यान से सब ठीक हो जाएगा, सब भय मिट जाएगा, सब अनिश्चितता मिट जाएगी।
इस तरह के गधों ने इस देश की छाती को बहुत रौंदा। इन गधों से छुटकारा चाहिए।
मैं ध्यान की क्षमता को स्वीकार करता हूं। ध्यान की अपूर्व संभावना है--लेकिन अंतर्लोक में। तनाव से मुक्ति मिलेगी ध्यान से, लेकिन यह मत सोचना कि तुम दूसरे को बदलने में समर्थ हो जाओगे। क्या तुम सोचते हो जीसस के पास इतना भी ध्यान नहीं था कि जिन्होंने उन्हें सूली दी उनका हृदय परिवर्तन कर सकते? सूली देने वाले तो चार ही लोग थे; जिन्होंने उनकी सूली गाड़ी और उनको सूली पर चढ़ाया और खीले ठोंके, चार आदमियों ने। इन चार आदमियों को भी जीसस न बदल सके! इतना भी ध्यान न था जीसस में! महर्षि महेश योगी के पास इससे बड़ा ध्यान है?
मंसूर के पास ध्यान न था कि एक हत्यारे ने पैर काट दिए, हाथ काट दिए, गर्दन काट दी और मंसूर का ध्यान कुछ भी सुरक्षा न जुटा पाया? सरमद के पास ध्यान नहीं था कि एक झटके में गर्दन काट दी गई? राम के पास ध्यान नहीं था कि रावण का हृदय रूपांतरित कर देते? महर्षि महेश योगी का यह तथाकथित भावातीत ध्यान न राम के पास था, न कृष्ण के पास था, न जीसस के पास था, न सरमद के पास, न मंसूर के पास! रावण का हृदय नहीं बदल सकते थे? क्या जरूरत थी युद्ध की? क्यों अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया?
और ये किस वैदिक ज्ञान के सार की बात छेड़ रहे हैं? तुम्हारे वेदों में इंद्र से प्रार्थना की गई है कि हमें शक्ति दो, अस्त्र-शस्त्र दो, दुश्मन पर विजय दो; हम दुश्मन का संहार कर सकें, इतना बल दो; हमारी गऊओं के थन में ज्यादा दूध आ जाए, ऐसी कृपा करो। भावातीत ध्यान से ही आ जाता। गऊओं के थन में दूध भी न बढ़ा! ये वैदिक ऋषि प्रार्थनाएं कर रहे हैं, यह वेद के ज्ञान का सार है! ये वैदिक ऋषि प्रार्थना कर रहे हैं कि हमारे खेत में ज्यादा उपज हो जाए और पड़ोसी के खेत में, जो कि हमारा दुश्मन है--पड़ोसी और दुश्मन अक्सर पर्यायवाची होते हैं--उसके खेत में बिल्कुल फसल ऊगे ही नहीं। भावातीत ध्यान ही कर लेते! जो भावातीत ध्यान ज्यादा करता उसकी फसल बड़ी होती। लेकिन ये सब पागलपन की बातें हैं। अब समय है... बहुत हो चुका। बहुत इस देश की छाती पर घूंघर मूती जा चुकी। अब इन सब व्यर्थ की बकवास करने वाले लोगों को विदा दो, अलविदा दो, सदा के लिए विदा कर दो। अब इस तरह का जहर और न फैलाया जाए।
पदार्थ के अपने नियम हैं और पदार्थ के नियम ध्यान से रूपांतरित नहीं होते। और ध्यान के अपने नियम हैं और ध्यान के नियम पदार्थ के विज्ञान से रूपांतरित नहीं होते। अलहिल्लाज मंसूर को तलवार काट सकती है, अलहिल्लाज मंसूर की शांति को नहीं काट सकती, अलहिल्लाज मंसूर के आनंद को नहीं काट सकती, उसकी समाधि को नहीं काट सकती। अलहिल्लाज मंसूर हंसता हुआ मरता है-- वही आनंद, वही मस्ती, वही आह्लाद! गर्दन तो कट जाती है, आंखें तो फोड़ दी जाती हैं, हाथ काट दिए जाते हैं, पैर काट दिए जाते हैं। इस तरह की हत्या कभी किसी की नहीं की गई जैसी मंसूर की की गई, एक-एक अंग काटा गया, बड़ी निर्ममता से काटा गया। लेकिन वही अनलहक का उदघोष उठता रहा। ध्यान की वही गरिमा रही। समाधि जरा भी डगमगाई नहीं। आंखों में वही मस्ती, वही खुमार, वही रोशनी। और आखिरी काम जो मंसूर ने किया वह यह, आकाश की तरफ देख कर खिलखिला कर हंसा। सारा शरीर लहूलुहान है, अंग कट कर गिर गए हैं, बस अब जबान कटने को है, उसके पहले वह खिलखिला कर हंसा। किसी ने भीड़ में से पूछा कि मंसूर क्या तुम पागल हो गए हो? तुम किस लिए हंस रहे हो?
मंसूर ने कहा, मैं इसलिए हंस रहा हूं कि मैं ईश्वर को कहना चाहता हूं
कि देख, तू किसी भी रूप में आए, मैं तुझे पहचान लूंगा। आज तू मौत की तरह आया है तो मुझे धोखा न दे सकेगा। यह मेरी हंसी तेरा जवाब है। और तू चाहे जिंदगी हो और चाहे तू मौत हो, मेरी खुशी वैसी की वैसी रहेगी।
तलवार शरीर को तो काटेगी। क्या तुम सोचते हो जापान पर जब हिरोशिमा पर एटम बम गिरा और नागासाकी पर एटम बम गिरा तो नागासाकी और हिरोशिमा में ध्यान करने वाले लोग न थे? सच तो यह है कि आज दुनिया में अगर सर्वाधिक

ध्यान की गहराइयों में उतरने वाले लोग कहीं हैं तो वह जापान है। क्योंकि बुद्ध की परंपरा का जो शुद्धतम रूप है, झेन, वह जापान में आज भी जिंदा है।
नागासाकी-हिरोशिमा दोनों नगरों में झेन फकीरों की बड़ी तादाद थी। उनके सुंदर आश्रम थे, जिनमें सुबह से लेकर सांझ तक लोग ध्यान में लीन थे। मगर जब एटम बम गिरा तो उसने कोई फर्क न किया कि ये ध्यानी हैं, इन्हें छोड़ दो; कि ये गैर-ध्यानी हैं, इन्हें मारो, दो गुना मारो! उसने न कुत्तों को देखा, न घोड़ों को देखा, न गधों को देखा, न वृक्षों को देखा, न इस बात की फिक्र की कि कौन बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है। उसने तो सभी को भस्मीभूत कर दिया।
जिन लोगों ने महावीर के कान में खीले ठोंके, महावीर उनका हृदय परिवर्तन न कर सके? इतना भी ध्यान न था? बुद्ध की मृत्यु विषाक्त भोजन से हुई। इतना भी ध्यान न था कि शरीर में विष का असर न हो, ऐसा उपाय कर लेते? कितने उल्लेख तुम्हें दिए जाएं? खुद कृष्ण की मृत्यु बाण के लगने से हुई। वे विश्राम करने को एक वृक्ष के नीचे लेटे थे और किसी शिकारी ने भूल से उनके पैर को समझा कि वह किसी पशु का पैर है, दूर झाड़ियों में छिपे हुए उसने तीर मार दिया। पछताया बहुत, लेकिन वह तीर विषाक्त था, कृष्ण की मृत्यु हो गई।
कृष्ण का ध्यान तीर से न बचा सका। और महर्षि महेश योगी, जो कृष्ण की ही गीता पर प्रवचन दे-देकर महर्षि हैं, इनको यह पागलपन सवार हुआ है! ये देश को और देश के प्रधान मंत्री को सुझाव दे रहे हैं कि कोई जरूरत नहीं है अस्त्रों-शस्त्रों की; बिना अस्त्रों-शस्त्रों के, सस्ता-सुगम उपाय, लोग भावातीत ध्यान कर लें। पंद्रह मिनट सुबह, पंद्रह मिनट शाम। पाकिस्तान और चीन के हृदय बदल जाएंगे!
इस पागलपन में न पड़ो। राम तो फिर भी धार्मिक व्यक्ति से लड़ रहे थे; रावण बहुत धार्मिक था, शिव का भक्त था। कहानी तो यह है कि इतना भक्त था कि अपनी गर्दन भी चढ़ा देता था। राम तो एक धार्मिक व्यक्ति से ही उलझ रहे थे, उसको भी न बदल सके! तुम चीन को बदल सकोगे, जो कि ईश्वर को मानते ही नहीं, आत्मा को मानते ही नहीं?
पहली दफा नास्तिकों के हाथ में देश है। चीन इस समय दुनिया का सबसे बड़ा देश है। एक अरब के करीब उसकी संख्या जल्दी ही पहुंच जाएगी। नब्बे करोड़ तो पहुंच ही गई। ये नब्बे करोड़ नास्तिकों का देश, जिसमें कोई ईश्वर को मानता नहीं, आत्मा को मानता नहीं, इनको भावातीत ध्यान से बदल सकोगे? कौरव कितने ही बुरे रहे हों, भगवान को तो मानते ही थे, आत्मा को तो मानते ही थे, नर्क और स्वर्ग से तो डरते ही थे। उनको भी कृष्ण न बदल सके! और कृष्ण ने अर्जुन को न समझाया कि बेटा, गांडीव छूट गया छूट जाने दे, यह ले भावातीत ध्यान, इससे सब हल हो जाएगा!
"न केवल देश की अनिश्चितता और भय से बचाने के लिए वे भावातीत और तथाकथित सिद्धि का प्रयोग बता रहे हैं... ।"
उनकी सिद्धि का प्रयोग क्या है? वे भी अभी तक कोई सामूहिक प्रदर्शन नहीं कर सके हैं। वह भी एक झूठी बकवास है। महर्षि महेश योगी की सिद्धि क्या है? सिद्धि है यह कि ध्यान करने वाला व्यक्ति एक फीट ऊंचा जमीन से उठ जाता है। चलो मान लिया जाए कि उठ जाए, तो भी क्या होगा? हवाई जहाज हजारों फीट ऊपर उठ रहे हैं। तुम्हारे सिद्धि को पहुंचे हुए लोग एक फीट ऊपर उठेंगे, हवाई जहाज ऊपर से बम गिराएंगे, ये वापस जमीन पर गिर जाएंगे। एक फीट ऊपर भी उठ गए तो क्या होगा? ऐसे तो उठने वाले भी नहीं एक फीट भी, क्योंकि महर्षि खुद ही क्यों नहीं प्रयोग करके दिखला देते एक फीट ऊपर उठकर?
हां, फोटो छापते हैं। और फोटो तो बहुत आसान मामला है। वह तो ट्रिक-फोटोग्राफी है। उसमें कुछ खास मामला नहीं। वह तो सिर्फ तरकीब है फोटोग्राफी की। वह तो होशियारी है सिर्फ फोटोग्राफर की। वे एक फीट ऊपर आदमी को बैठा हुआ बता देते हैं। इसमें तो कोई अड़चन नहीं है। औरों ने भी यह फोटोग्राफी करके दिखा दी है। उन्होंने भी छाप दिए हैं फोटो। लेकिन दूसरे कम से कम ईमानदार हैं, कम से कम उन्होंने साफ कह दिया है कि यह फोटोग्राफी है।

यह सिद्धि के नाम से जो बकवास चला रखी है कि आदमी भावातीत ध्यान में
जब जाता है तो एक फीट ऊपर उठ जाता है, इसका प्रदर्शन करो। कहते तो वे यह हैं कि लाखों लोग भावातीत ध्यान कर रहे हैं, चलो एकाध लाख आदमियों को एक फीट ऊपर उठा कर दिखा दो। सबको छोड़ो, कम से कम तुम ही ऊपर उठ कर दिखा दो।
और उठ भी गए तो क्या होगा? मैं यह भी नहीं कहता कि नहीं उठ सकते हो। उठ
भी गए मान लो, तो क्या होगा? एक ही फीट ऊपर उठोगे न, दो फीट ऊपर उठोगे, कितने फीट ऊपर उठोगे? और ऊपर फीट उठ जाने से क्या होने वाला है? जिसको तुम्हारी गर्दन काटनी है, फिर भी काटेगा। और एक फीट ऊपर रहे तो जरा बंदूक का निशाना ऊपर साधेगा, और क्या करेगा? इससे तो बेहतर था कि न ही जानते यह उठना, तो कम से कम किसी झाड़ी वगैरह में छिप जाते। अब झाड़ी में छिपा हुआ सिपाही और सिद्धि कर ले तो एक फीट ऊपर उठ जाए, तो दुश्मन को अलग दिखाई पड़ जाए कि ये रहे भावातीत ध्यान करने वाले, मारो! अल्ला हो अकबर! वहीं धड़ाम से नीचे गिरे।
और न केवल वे यह कह रहे हैं कि इससे युद्ध के संबंध में सहायता मिलेगी, बल्कि देश की सारी समस्याएं हल हो सकेंगी और देश की चेतना में सत्व का उदय हो सकेगा।
देश की समस्याएं क्या हैं? रोटी नहीं है, रोजी नहीं है, कपड़ा नहीं है। ध्यान से यह कैसे हल हो सकेगा? रोटी आकाश से बरसेगी? कपड़े जमीन से उगेंगे? पत्थर हीरे-जवाहरात बन जाएंगे? क्या होगा? हां, ध्यान से एक बात हो सकती है कि व्यक्ति इस दुख और दारिद्य्र को भी सहन करने में समर्थ रहे। और वही तो हम सदियों से कर रहे हैं। सहनशीलता बढ़ जाएगी, बगावत कम हो जाएगी। लोग बजाय इसके कि श्रम करते और जीवन को रूपांतरित करते, निठल्ले बैठे रहेंगे। और कहेंगे कि ठीक है, भूख है तो ठीक है और प्यास है तो ठीक है। अब जैसा परमात्मा को चाहिए वैसा उसने किया है! पिछले जन्म में किए होंगे बुरे कर्म, उनका फल भोग रहे हैं। और अब तो कोई बुरे कर्म न करें, नहीं तो अगले जन्म में फिर फल भोगने पड़ेंगे। तो सांत्वना मिल सकती है लोगों को, लेकिन रोटियां नहीं मिलेंगी, कपड़े नहीं मिलेंगे, छप्पर नहीं मिलेगा। और सांत्वना अफीम होगी। उससे लोग बेहोशी में पड़े रहे हैं, बेहोशी में पड़े रहेंगे।
और ये कहते हैं कि "भावातीत ध्यान से, जो कि वैदिक ज्ञान का सार है, देश
की चेतना में सत्व का उदय होगा।"
वेद को लिखे कितना समय हुआ? वैज्ञानिक ढंग से सोचने वाले लोग भी मानते हैं कि कम से कम पांच हजार वर्ष। और अवैज्ञानिक ढंग से सोचने वाले लोग, जैसे लोकमान्य तिलक, वे मानते हैं कि नब्बे हजार वर्ष। नब्बे हजार वर्ष या पांच हजार वर्ष, इतने हजार वर्षों में भी वैदिक ज्ञान का निरंतर पठन-पाठन होता रहा, गुरुकुल चलते रहे, ऋषि समझाते रहे और सत्व का उदय अब तक नहीं हुआ देश की चेतना में! जितनी इस देश की चेतना असात्विक है, शायद दुनिया में किसी देश की न हो। जितनी बेईमानी, जितनी घूसखोरी, जितनी रिश्वत, जितनी चार सौ बीसी इस देश में है, जितना पाखंड, जितनी अनैतिकता, उतनी शायद कहीं भी न हो। क्या हुआ? हम तो मान कर बैठ गए कि वेद हमारे पास हैं, गीता हमारे पास है, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हमारे पास हो चुके हैं, अब हमें क्या करना है? हम तो उनकी बपौती की ही पूजा करेंगे। हम तो दो फूल चढ़ा देंगे उनकी मजार पर और बस सत्व का उदय हो जाएगा!
सत्व का उदय नहीं हुआ। ऐसे कहीं सत्व का उदय नहीं होता।
और एक बात ख्याल में रहे कि ध्यान व्यक्ति को घटता है, समाज या देशों
को नहीं। क्योंकि चेतना व्यक्ति के पास है, समाज या देश के पास कोई चेतना नहीं होती। आत्मा व्यक्ति के पास है, समाज या देश के पास कोई आत्मा नहीं होती। तुम पूरे भारत में घूम जाओ, तुम्हें भारत कहीं भी नहीं मिलेगा। जहां मिलेगा कोई आदमी मिलेगा, कोई औरत मिलेगी, कोई बच्चा मिलेगा, कोई बूढ़ा मिलेगा, भारत नहीं मिलेगा। भारतमाता की कितनी ही तलाश करो, कई तरह की माताएं मिलेंगी, दुर्गा माता मिलेंगी, काली माता मिलेंगी, गोरी माता मिलेंगी, तरह-तरह की माताएं मिलेंगी, मगर भारतमाता नहीं मिलेगी। वह तो केवल तस्वीर में होती है। वह तो काल्पनिक है। और अगर भारतमाता मिल जाए तो बड़ी अपंग हालत में होगी। क्योंकि पाकिस्तान कट गया, बंगला देश कट गया, कभी

बर्मा भी इस देश का हिस्सा था, वे सब कटते चले गए। भारतमाता मिलेगी भी तो तुम पहचान न सकोगे। एक आंख नदारद, एक हाथ नदारद, एक टांग नदारद। मिलेगी भी तो कहीं सड़क पर भीख मांगती मिलेगी। और तुम भी नजर बचा कर निकल जाओगे। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन तेजी से चला जा रहा था। मैंने पूछा कि क्या हुआ, इतनी तेजी से कहां जा रहे हो? उसने कहा कि मुझसे गरीबी नहीं देखी जाती, मुझसे बिल्कुल नहीं देखी जाती। तो मैंने कहा कि फिर इससे तेजी से चलने का क्या संबंध है? उसने कहा कि एक गरीब आदमी भीख मांग रहा है, मुझसे नहीं देखा जाता। मैं तो दूसरी तरफ मुंह करके एकदम तेजी से निकल जाता हूं, मुझसे बरदाश्त ही नहीं होता। बड़ा कोमल हृदय है मेरा!
देशों की कोई चेतना नहीं होती, न कोई आत्मा होती है, न कोई व्यक्तियों
के जोड़ में आत्मा होती है। व्यक्ति में आत्मा होती है। व्यक्ति में चेतना होती है। ध्यान वैयक्तिक है, न तो राष्ट्रीय होता है, न सामाजिक होता है। यह तो व्यक्ति की ही क्रांति है।
हां, व्यक्ति की चेतना में जरूर सत्व का उदय होता है। और वह उदय भी सत्य वेदांत, महेश योगी द्वारा प्रचलित तथाकथित भावातीत ध्यान से नहीं हो सकता। क्योंकि उनका भावातीत ध्यान है ही क्या, सिर्फ मंत्र-जाप। जिसको तुम पहले मंत्र-जाप कहते थे, उसके लिए उन्होंने नया शब्द खोज लिया है-- भावातीत ध्यान।
करते क्या हैं भावातीत ध्यान में? कोई एक शब्द दे देंगे, जिसको तुम सतत दोहराओ। पंद्रह मिनट तक मौका ही न दो मन में किसी और चीज को आने का, दोहराए चले जाओ, राम-राम-राम दोहराए चले जाओ। या ओम-ओम दोहराए चले जाओ। इतनी तेजी से दोहराओ कि एक ओम पर दूसरा ओम चढ़ने लगे, जैसे मालगाड़ी टकरा जाएं और डब्बे पर डब्बे चढ़ जाएं, बीच में संध न छोड़ना। नहीं तो बीच संध में से ही गड़बड़ हो जाती है। कोई चेहरा झांक जाएगा, पड़ोसन स्त्री दिखाई पड़ जाएगी, रास्ते के किनारे पड़ा हुआ नोट दिखाई पड़ जाएगा, कि आज कौन सी फिल्म में जाना है यह ख्याल आ जाएगा, कि ये रहे विनोद खन्ना, एकदम दिखाई पड़ जाएंगे! बीच में संध आने ही मत देना। ओम को ओम के ऊपर चढ़ाए जाना, बीच में न रहेगी जगह, न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।
इस तरह सतत अगर एक शब्द को कोई दोहराता रहे तो उसका कुल परिणाम एक तरह
की तंद्रा होता है। यह एक सम्मोहन की विधि है। यह कोई ध्यान नहीं। जिसको महर्षि महेश योगी ध्यान कह कर प्रचारित कर रहे हैं, वह केवल आत्म-सम्मोहन है, आटो-हिप्नोसिस है। और यह काम तुम किसी भी शब्द से कर सकते हो, इसके लिए कोई वैदिक मंत्रों की जरूरत नहीं है। अपना ही नाम दोहराने लगो बार-बार, उसी को दोहराए चले जाओ, उसी से यह काम हो जाएगा। कुछ भी दोहराने लगो, बस एक शब्द पकड़ लो और उसको दोहराए चले जाओ। दोहराने का एक परिणाम होता है कि मन थक जाता है दोहराने से। थक जाता है तो थोड़ा विश्राम मांगता है।
जैसे किसी बच्चे को अगर तुम कहो कि बैठ चुपचाप एक कोने में, तो नहीं बैठेगा। और डर के मारे बैठ भी जाए तो करवटें बदलेगा, हाथ-पैर हिलाएगा, हां- हूं करेगा, गीत गुनगुनाएगा, इधर की चीज उधर रखेगा, सिर खुजलाएगा, कहीं पीठ खुजलाएगा, कुछ न कुछ करेगा, कमीज की बटनें खोलेगा-लगाएगा। मतलब उसके भीतर बेचैनी है, ऊर्जा है, शक्ति है।
अगर उसको शांत बिठालना है तो एक ही रास्ता है, उससे कहो कि जाओ, एक दर्जन पूरे घर के चक्कर लगाओ! दौड़ कर लगाना, जी-जान से लगाना। बारह चक्कर लगाने के बाद तुम्हें कहने की जरूरत नहीं रहेगी कि चुपचाप बैठ जाओ, वह चुपचाप खुद ही बैठ जाएगा। वह खुद ही एक कोने में शांति से बैठा रहेगा, न बटन खोलेगा, न सिर खुजलाएगा, कुछ भी नहीं करेगा, बैठा रहेगा।
और अगर उसको बिल्कुल ही बिठालना हो तो मैंने सुना कि मुल्ला नसरुद्दीन को ट्रेन पकड़नी थी, सो उसने एक लड़के से पूछा कि भई यह रास्ता तो बड़ा लंबा है और मुझे जल्दी पहुंचना है, कहीं ट्रेन चूक न जाऊं, तो कोई जल्दी पहुंचने का रास्ता बता दो। उस लड़के के पास एक कुत्ता था, उसने कुत्ते को कहाः लग-छू! मुल्ला भागा। कुत्ता उसके पीछे हो लिया।
जो रास्ता साठ मिनट में पूरा होता, दस मिनट में पूरा हो गया। मुल्ला मुझे कह रहा था कि गजब कर दिया उस लड़के ने; बताया ही नहीं रास्ता, पार ही करवा दिया! जवाब ही नहीं दिया, एकदम कहाः लग-छू! और मैं पहुंच गया। अभी

गाड़ी आने में तो कोई चालीस मिनट की देर थी, जाकर कैसा विश्राम किया है--ऐसा विश्राम जो कई वर्षों से नहीं जाना था! एकदम जाकर लेट ही गया कुर्सी में और ऐसी राहत पाई कि वाह रे लड़के, क्या गजब का रास्ता सुझाया! कुत्ते को पीछे लगा दिया।
ये मंत्र वगैरह जो हैं, कुछ नहीं बस लग-छू! दोहराए जाओ, दोहराए जाओ, कुत्ता पीछे लगा है। भागे जाओ, भागे जाओ। पंद्रह मिनट में परेशान हो जाओगे, पसीना-पसीना हो जाओगे, अपने आप बैठ जाओगे। उस अपने आप बैठ जाने को तुम ध्यान मत समझ लेना। यह कोई ध्यान नहीं है। यह तो केवल थकान से आई हुई एक तंद्रा है। एक झपकी आ जाएगी। एक तरह की मन में दौड़ बंद हो जाएगी। मगर यह दौड़ कितनी देर बंद रहेगी? यह फिर शुरू हो जाएगी। यह थोड़ी देर का खेल है। हां, थोड़ी देर को राहत की सांस ले लोगे। इससे ज्यादा भावातीत ध्यान का कोई मूल्य नहीं है।
और अगर यही वैदिक धर्म का सार है तो वैदिक धर्म में भी फिर कोई मूल्य नहीं है। और होना भी नहीं चाहिए ज्यादा मूल्य, क्योंकि महावीर ने विरोध किया वैदिक धर्म का, बुद्ध ने विरोध किया वैदिक धर्म का, नागार्जुन ने विरोध किया वैदिक धर्म का, वसुबंध ने विरोध किया, धर्मकीर्ति ने विरोध किया, चंद्रकीर्ति ने विरोध किया। परंपरा है लंबी वैदिक धर्म के विरोध की। और मैं कोई अकेला आदमी नहीं हूं, हजारों बुद्ध पुरुषों ने इसका विरोध किया है। और विरोध इसीलिए किया है कि वैदिक धर्म सिवाय पंडितों के पाखंड के और कुछ भी नहीं है। यह पुरोहितों के शोषण का जाल है। यह आदमी को कैसे बंधनों में बांधे रखना, आदमी को कैसे नए-नए जालों में ग्रसित रखना--इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है।
तो मैं सोचता हूं कि होगा वैदिक ज्ञान का सार ही होगा यह भावातीत।
तुमने पूछा, सत्य वेदांत, कि आप जिस ध्यान को समझाते हैं तथा उसका प्रयोग करा रहे हैं, क्या वही ध्यान ऊपर बताई गई बातों के संदर्भ में अधिक प्रभावशाली और कारगर सिद्ध नहीं होगा?
बिल्कुल नहीं। ध्यान से इन बातों का कोई संबंध ही नहीं है। मैं बहुत स्पष्ट प्रत्येक चीज के संबंध में वक्तव्य देना चाहता हूं। मेरा ध्यान तुम्हारी आंतरिक शांति, सौमनस्य, तुम्हारे आंतरिक आनंद-उत्सव में जरूर प्रगाढ़ता लाएगा, लेकिन इससे तुम्हारे बाहर की दुनिया में कोई बहुत फर्क होने वाला नहीं है।
हां, अगर बहुत लोग इस ध्यान को करेंगे तो बाहर के वातावरण में थोड़ा फर्क आएगा, लेकिन वह फर्क बहुत लोगों के ध्यान करने से आएगा। आएगा तो उन बहुत लोगों के जीवन-व्यवहार में, लेकिन चूंकि बहुत लोग करेंगे तो स्वभावतः वे एक-दूसरे से संबंधित होंगे, उनके बाहर के व्यवहार में भी फर्क आएगा।
लेकिन इससे कुछ युद्ध समाप्त नहीं हो जाएंगे। क्योंकि कौन तय करेगा
कि पाकिस्तान भी ध्यान करे? कौन तय करेगा कि चीन भी ध्यान करे? ये महर्षि महेश योगी यहां तो उपद्रव करते रहेंगे भारत में, ये जाकर अमरीका को भी इसी तरह की मूर्खतापूर्ण बातें समझाते रहेंगे; लेकिन रूस को कौन समझाएगा? चीन को कौन समझाएगा? वहां तो इस तरह की बकवास नहीं चलने दी जाएगी। और खतरा वहां से है। पाकिस्तान में कौन इनके भावातीत ध्यान को करने को राजी होगा? और खतरा वहां से है। जिनसे खतरा है उनको कौन समझाने जाएगा?
हां, अगर सारी दुनिया ध्यान करने लगे तो निश्चित ही अस्त्र-शस्त्रों
की जरूरत न रह जाएगी, क्योंकि लोग इतने आनंदपूर्ण होंगे कि कौन किसकी हिंसा करना चाहेगा! लेकिन सारी दुनिया कब ध्यान करेगी? इसकी कोई आशा है? आज तो नहीं होने वाला, कल तो नहीं होने वाला। और सवाल अभी है। भारत पर हमला आज हो सकता है, कल हो सकता है।
और मैं मानता हूं, ज्यादा देर नहीं लगेगी हमला होने में। क्योंकि चीन
और अमरीका रोज-रोज करीब होते जा रहे हैं। और रोनाल्ड रीगन के सत्ता में आ जाने के बाद चीन और अमरीका के बीच संबंध बहुत गहरे हो जाने वाले हैं। इस बात की बहुत संभावना है कि निक्सन को चीन में राजदूत बना कर भेजा जाए। निक्सन के समय में चीन पहली दफा अमरीका के करीब आया और अब निक्सन को ही राजदूत बना कर भेजे जाने की संभावना है। अब रीगन के पीछे से निक्सन ही काम

करेंगे। रीगन तो केवल बाहर का दिखावा रहेंगे, पीछे निक्सन और किसिंगर का जाल चलेगा।
चीन के साथ अमरीका का गठबंधन भारत के लिए सबसे खतरनाक सिद्ध होने वाला है, क्योंकि चीन और अमरीका का गठबंधन रूस के खिलाफ है। और अगर चीन और अमरीका बहुत करीब आते हैं तो भारत को अनिवार्यरूपेण रूस के खेमे में खड़ा होना पड़ेगा। और एक बात ख्याल रखना कि अमरीका और रूस कभी सीधे लड़ने वाले नहीं हैं। इतनी मूर्खता वे नहीं करेंगे; दोनों समझदार हैं। दोनों में से कोई इतना पागलपन नहीं करेगा कि सीधा युद्ध करे। वे हमेशा किसी और की भूमि पर लड़ेंगे। युद्ध होगा तो चीन और भारत में होगा।
और चीन ने जो जमीन पर कब्जा कर लिया है भारत की, वह यूं ही नहीं कर लिया है। वह खास उस जमीन पर कब्जा किया है जिसके माध्यम से वह पाकिस्तान से जुड़ गया है। चीन ने इस बीच पाकिस्तान तक रास्ते बना लिए हैं। जिस जमीन पर कब्जा किया उस पर कब्जा करने का कारण ही यही था, ताकि पाकिस्तान और चीन के बीच रास्ते का संबंध हो जाए। अब चीन और पाकिस्तान जुड़े हुए हैं। और अमरीका और चीन जुड़ेंगे तो भारत के लिए खतरा सुनिश्चित है।
मैं इंदिरा गांधी को कहूंगा कि इस खतरे से अगर बचना हो तो जितनी शीघ्रता से हो सके उतनी शीघ्रता से, व्यर्थ की बकवास में न पड़ कर, अणु- शस्त्रों उदजन-शस्त्रों और नए-नए प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण करना हमें शुरू करना ही होगा।
और यह जल्दी किया जाना चाहिए, क्योंकि चीन के पास अणु-शस्त्र हैं और जापान अणु-शस्त्रों की खोज में काफी आगे निकल गया है। पाकिस्तान को सारे मुसलमान देश अरबों-खरबों डालर दे रहे हैं कि वे उदजन बम को बना लें। जिस दिन पाकिस्तान के पास उदजन बम होगा उस दिन वह अपने अपमान का बदला लेगा। भारी अपमान उसका हो गया है बंगला देश के टूट जाने से। और बंगला देश के टूट जाने में भारत ने सहायता दी है, इस बात को भूल मत जाना। इसलिए भारत से बदला लेना जरूरी है।
और इस तरह की बातें जो महर्षि महेश योगी जैसे लोग कर रहे हैं, इनसे सावधान रहना। ये खतरनाक लोग हैं, ये दुश्मन हैं। इन्हीं तरह के नासमझों ने इस देश को अब तक बर्बाद किया है, इसी तरह के नासमझ आगे भी इस देश को बर्बाद कर सकते हैं।
इसलिए मैं तो इंदिरा गांधी को चेतावनी देता हूं कि इस तरह के गुरगों
के जाल में मत फंसना, इस तरह की बातों को भी मत सुनना। पदार्थ के नियम पदार्थ के नियम हैं, उन्हें विज्ञान से हल किया जा सकता है; और आत्मा के नियम आत्मा के नियम हैं, उन्हें धर्म से हल किया जा सकता है। और दोनों को एक-दूसरे में कभी मिश्रित मत करना, अन्यथा कोई बहुत बड़ा दुर्भाग्य भारत को घेर ले सकता है।

सैकड़ों अस्री मसाइल में उलझ कर रह गए
वर्ना "ताबां" हसरते-तामीर भी रखते हैं हम
आज की मजबूरियां, माजूरियां अपनी जगह
दिल में फर्दा की हसीं तस्वीर भी रखते हैं हम
इल्मो-दानिश बेहकीकत दस्ते-मेहनत के बगैर
ख्वाब भी रखते हैं हम, ताबीर भी रखते हैं हम अहले-दिल करते हैं जिनसे माहो-परवीं को शिकार
अपने तरकश में कुछ ऐसे तीर भी रखते हैं हम
रफ्ता-रफ्ता जो बदल दे खुद जमाने का मिजाज
शौक के जज्बों में वो तासीर भी रखते हैं हम
अपने कातिल आप हैं, अपने मसीहा आप हैं
जहर भी रखते हैं हम, इक्सीर भी रखते हैं हम
हम अपने ही तो हत्यारे हैं और हम अपने ही उपचारक भी हैं। अपने कातिल आप हैं, अपने मसीहा आप हैं
जहर भी रखते हैं हम...
हमारे भीतर जहर भी है।
... इक्सीर भी रखते हैं हम

और अमृत भी, और वह रामबाण औषधि भी। लेकिन किसका कहां प्रयोग, इसका ध्यान रखना जरूरी है। कभी तो अमृत भी जहर हो जाता है--गलत हाथों में, गलत प्रयोग से। और कभी जहर भी अमृत हो जाता है ठीक हाथों में, ठीक प्रयोग से। अस्त्र-शस्त्रों में कुछ बुराई नहीं है। हमारे पास भीतर की सजगता चाहिए, होश चाहिए। फिर हाथ में तलवार भी फूल हो जाती है। होश से भरे हाथों में तलवार चाहिए। हां, बेहोश हाथों में तलवार खतरनाक है। मगर मजा यह है कि बेहोश हाथों में तलवार है और होश जिनके पास हो उनके हाथ में तलवार नहीं। मेरे पास जापान से किसी ने एक प्रतिमा भेजी थी। बुद्ध की प्रतिमा थी, बहुत अदभुत प्रतिमा थी, बहुत प्यारी थी। आधी प्रतिमा एक तरफ से देखने में यूं लगती थी जैसे अर्जुन की प्रतिमा हो--हाथ में तलवार और उस तलवार की चमक आधे चेहरे पर। और वही रौनक जो अर्जुन के चेहरे पर रही हो। और दूसरी तरफ से आधी मूर्ति पर बुद्ध की शांत ध्यान-अवस्था, समाधि। एक हाथ में तलवार और उसकी चमक आधे चेहरे पर, दूसरे हाथ में एक छोटा-सा दीया और उस दीए की ज्योति, धीमी-धीमी, चेहरे के दूसरे हिस्से पर। एक तरफ से देखो तो बुद्ध और दूसरी तरफ से देखो तो अर्जुन। यह एक समुराई की प्रतिमा थी। यह समुराई के संबंध में जापान की धारणा रही है कि उसके पास ध्यान तो होना चाहिए बुद्ध जैसा और हाथ में तलवार होनी चाहिए अर्जुन जैसी।
मैं तो इस देश को यही सिखाना चाहूंगा।
अपने कातिल आप हैं, अपने मसीहा आप हैं
जहर भी रखते हैं हम, इक्सीर भी रखते हैं हम
हमें दोनों की तैयारी चाहिए। और जहां जिस चीज की जरूरत होगी, हम उसका उपयोग करेंगे।
महात्मा गांधी को भी यह वहम था। इस तरह के वहम हमारे सभी महात्माओं को होते हैं। हमारे महात्माओं से ज्यादा वहमी इस दुनिया में लोग खोजने मुश्किल हैं। महात्मा गांधी को यह वहम था कि जब भारत आजाद हो जाएगा तो अस्त्र-शस्त्रों की कोई जरूरत न रह जाएगी।
उनसे जब पूछा गया था उन्नीस सौ पैंतालीस में आजादी के पहले कि आजादी
के बाद सैनिकों का क्या होगा? उन्होंने कहा, सेनाएं विसर्जित कर दी जाएंगी। क्या जरूरत? अहिंसा की शक्ति इतनी है कि हमें अस्त्र-शस्त्रों की क्या जरूरत? अरे, राम का नाम लेंगे! राम के नाम में तो इतनी शक्ति है! ब्रह्मचर्य साधेंगे! और ब्रह्मचर्य में तो इतनी शक्ति है कि क्या करेंगे अस्त्र-शस्त्रों का? फौजों को विदा कर देंगे।
फिर भारत आजाद हुआ, लेकिन न तो फौजें विदा हुईं, न अस्त्र-शस्त्र विदा हुए। उलटे जिस राम की शक्ति पर उनको भरोसा था, जिसके बल से वे सोचते थे अस्त्र-शस्त्रों की कोई जरूरत न रह जाएगी, एक पूना निवासी नाथूराम गोडसे ने एक गोली से उनको मार डाला। राम का भरोसा था, नाथूराम आ गए! क्या मजाक हुआ! गहरा मजाक हो गया न! जब गोली लगी तो उन्होंने कहा, हे राम! जल्दी में होंगे, क्योंकि अब खतम ही हो रहे थे। अगर थोड़ी फुर्सत होती तो वे कहते, हे नाथूराम गोडसे! कहना तो चाहते होंगे नाथूराम, लेकिन जल्दी में थे, सो राम ही कह पाए। लेकिन एक गोली पार कर गई। कहां गई सब अहिंसा की शक्ति? और जीवन भर का आत्मबल और जीवन भर का ब्रह्मचर्य और भजन-कीर्तन और अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, बस एक गोली सबको पार कर गई!
मैं इस तरह की बेहूदगियों में भरोसा नहीं करता। गोली तो गोली से ही निपटी जाएगी। तलवार हो तो ढाल चाहिए। और तलवार हो तो और बड़ी तलवार चाहिए। यह राम-राम जपने से कुछ भी न होगा। अभी गांधी को तुमने मरा हुआ देखा, फिर भी अकल नहीं आती! ये जिंदगी भर भजन-कीर्तन करते रहे, इनको भावातीत ध्यान नहीं लगा? ये जिंदगी भर राम-राम का उच्चारण करते रहे और एक गोली भी... कम से कम इतना तो हो जाता कि गोली इनकी छाती के पास से कहती कि नहीं-नहीं, और लौट जाती, कि यहां नहीं, अरे ये तो महात्मा गांधी हैं! कि लौट कर नाथूराम गोडसे को ही लग जाती, कि कमबख्त कहां गोली चलाता है। कि यहां तो अदृश्य ध्यान की दीवार है!
क्या तुम सोचते हो मुझे कोई गोली मारे तो लौटेगी? कभी नहीं। लगेगी। लगनी ही चाहिए। क्योंकि प्रकृति के नियम प्रकृति के नियम हैं और प्रकृति के नियमों का कोई अपवाद नहीं होता।

महर्षि महेश योगी को ऐसा करो कि पोटेशियम साइनाइड पिला दो और कहना कि देखें, भावातीत ध्यान और टी.एम. सिद्धि अगर बचा लें तो हम समझेंगे कुछ। तत्क्षण चारों खाने चित हो जाएंगे। या कहना कि चलो एक छुरा ही मार कर देख लें! हम मारें छुरा और भीतर से निकले दूध की धार, तो मान लेंगे कि भावातीत ध्यान में कुछ खूबी है।
ध्यान की अपनी खूबियां हैं। हां, मुझे कोई गोली मारेगा तो मैं इसी समाधि अवस्था में जाऊंगा जिसमें हूं, इसमें कुछ भेद न पड़ेगा। लेकिन शरीर तो गोली को मानेगा। शरीर थोड़े ही ध्यान को मानेगा। शरीर का थोड़े ही ध्यान होता है। शरीर तो मिट्टी है, मिट्टी के नियम से चलेगा। तुम किसी घड़े के भीतर बैठ कर ध्यान करो, इसका क्या यह मतलब हुआ कि घड़े को कोई डंडा मारे तो घड़ा फूटे ही नहीं! घड़ा तो फूटेगा, घड़ा तो मिट्टी है। यह शरीर तो घड़ा है, इससे ज्यादा नहीं, मिट्टी की देह है। इसको बचाने के लिए तो अस्त्र-शस्त्र चाहिए होंगे।
मैं विज्ञान और धर्म के बीच एक जोड़ चाहता हूं, एक सेतु चाहता हूं। पूरब परेशान रहा है अकेले धर्म के कारण; पश्चिम परेशान है अकेले विज्ञान के कारण। और दोनों ही आनंदित हो सकते हैं, अगर यह जोड़ बन जाए, अगर यह धर्म और विज्ञान का मिलन हो जाए।
सैकड़ों अस्री मसाइल में उलझ कर रह गए
समय की समस्याएं बड़ी हैं। कितने लोग उलझ कर नहीं रह गए हैं!
वर्ना "ताबां" हसरते-तामीर भी रखते हैं हम
इरादे तो अच्छे होते हैं, कि निर्माण करेंगे। मगर जिंदगी की समस्याएं बड़ी हैं। अगर सूझ-बूझ साफ न हो तो तुम भटक जाओगे जिंदगी की समस्याओं में। आज की मजबूरियां, माजूरियां अपनी जगह
कितनी विवशताएं हैं! कितनी तकलीफें, कितनी चिंताएं हैं!
आज की मजबूरियां, माजूरियां अपनी जगह
दिल में फर्दा की हसीं तस्वीर भी रखते हैं हम
लेकिन इरादा तो कल का है, भविष्य का है। अच्छी तस्वीर रखते हैं, सुंदर तस्वीर रखते हैं। मगर आज की समस्याएं हल होंगी तो आज से ही तो कल पैदा होगा। वर्तमान की समस्याएं हल होंगी तो भविष्य का जन्म होगा। इल्मो-दानिश बेहकीकत दस्ते-मेहनत के बगैर
ज्ञान व्यर्थ है, जब तक कि परिश्रमी हाथों का उसको जोड़ न मिले। इल्मो-दानिश बेहकीकत दस्ते-मेहनत के बगैर
ख्वाब भी रखते हैं हम, ताबीर भी रखते हैं हम
सपने तो ठीक हैं, मगर उन सपनों को ताबीर देना, उन सपनों को यथार्थ में बदलना, उसकी कला भी जाननी चाहिए। जरूर हमारे पास है, सभी के पास है, लेकिन न मालूम किस तरह के मूढ़ों ने हमें भरमाया है और भटकाया है। और सदियां हो गईं और अब भी हम जागते नहीं। हमारे पास भी हाथ हैं और हमारे हाथों में भी निर्माण की कला है। और हमारे पास विवेक भी है और विज्ञान भी हो सकता है। सच तो यह है कि सबसे पहले दुनिया में विज्ञान हम ही ने खोजा। गणित हमने खोजा और गणित के ऊपर सारा विज्ञान खड़ा हुआ है। लेकिन ये महर्षि महेश योगी जैसे लोग हमारे विज्ञान को विकसित न होने दिए। ये महात्मा गांधी जैसे लोग हमसे तकलियां चलवाते रहे, चरखे चलवाते रहे, राम-नाम जपवाते रहे। अहले-दिल करते हैं जिनसे माहो-परवीं को शिकार
अपने तरकश में कुछ ऐसे तीर भी रखते हैं हम
हमारे तरकश में भी तीर हैं, मगर जंग खा गए हैं, बहुत सदियों की जंग खा
गए हैं।
रफ्ता-रफ्ता जो बदल दे खुद जमाने का मिजाज
शौक के जज्बों में वो तासीर भी रखते हैं हम
आकांक्षाएं भी हैं, भावनाएं भी हैं, उन भावनाओं को प्रभावित करने की क्षमता भी है। सृजन की हम में बड़ी ऊर्जा भी है। सच तो यह है कि दुनिया में सबसे ज्यादा ऊर्जा हमारे पास है। इसलिए है कि जैसे किसी खेत को बहुत दिनों तक खेती-बाड़ी के काम में न लाया जाए, तो जिन खेतों में खेती-बाड़ी होती रही उनके तत्व तो समाप्त हो जाते हैं; लेकिन जो खेत बंजर पड़ा रहा, जिसमें कोई खेती-बाड़ी न हुई, उसमें अगर आज खेती की जाए तो दोगुनी फसल आएगी। कोई पांच

हजार वर्षों से हमने अपनी चेतना में कोई खेती ही नहीं की है, विज्ञान को जन्म नहीं दिया, कला को जन्म नहीं दिया। आज मौका है कि हम चाहें तो आज सारी पृथ्वी पर सबसे ज्यादा चमत्कार पैदा कर सकते हैं।
रफ्ता-रफ्ता जो बदल दे खुद जमाने का मिजाज
शौक के जज्बों में वो तासीर भी रखते हैं हम
अपने कातिल आप हैं, अपने मसीहा आप हैं
जहर भी रखते हैं हम, इक्सीर भी रखते हैं हम।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
सातवां प्रवचन

जीवन चुनौती है, खतरा है

पहला प्रश्नः ओशो, आपके कल के ओजस्वी प्रवचन से ऐसा स्पष्ट आभास हुआ
कि आप भारत को उसकी अनंत क्षमताओं के प्रति जगा रहे हैं। भारत का यह परम सौभाग्य है कि उसे आप जैसा मार्गदर्शक उपलब्ध है, फिर भी वह आपकी बातों को अपनाता क्यों नहीं? और क्यों नहीं सर्वांगीण विकास के पथ पर अग्रसर होता? वरन आपका तिरस्कार और उपेक्षा क्यों करता है?
ओशो, निवेदन है कि कुछ कहें।

भारत भूषण, भारत के दुर्भाग्य की कथा बहुत पुरानी है। भारत की जड़ें विषाक्त हो गई हैं। साधारण औषधियों से भारत की चिकित्सा नहीं हो सकती; शल्य-क्रिया करनी होगी। और मवाद जब भीतर गहरे पहुंच गया हो तो उसे निकालने में कष्ट भी होता है, पीड़ा भी होती है। इसीलिए मेरा तिरस्कार है, उपेक्षा है। मेरा सम्मान हो सकता है, समादर हो सकता है; लेकिन तब मुझे भारत की उन्हीं विषाक्त जड़ों को जल देना होगा, जो उसके दुर्भाग्य का कारण हैं। मेरे लिए तो आसान होगा यही कि उन्हीं जड़ों को जल दे दूं, लेकिन भारत के लिए उससे बड़ी और कोई बदकिस्मती नहीं हो सकती।
तो मैंने यही चुना कि अपमान मिले, तिरस्कार मिले, उपेक्षा मिले, लेकिन गलत जड़ों को काटना ही है। और मुझे फर्क नहीं पड़ता अपमान से, उपेक्षा से या तिरस्कार से। थोड़ी भी जड़ें काट सका, थोड़े भी संस्कार पोंछ सका, थोड़ी भी भारत के मन को स्वच्छता दे सका, स्वास्थ्य दे सका, तो सूर्योदय दूर नहीं। माना कि अभी रात बहुत अंधेरी है और हम इस अंधेरी रात में इतने लंबे अर्से से रह रहे हैं कि हमने भरोसा भी खो दिया है कि सुबह होती है। हम तो रात के लिए राजी हो गए हैं। हमने तो रात को ही जीवन समझ लिया है। इसलिए जब कोई सुबह की बात करता है तो हमें बेचैनी होती है, क्योंकि वह फिर हमें परेशानी में डाल रहा है। हम किसी तरह बामुश्किल समझा-बुझा कर रात को ही अपना घर बना लिए हैं और फिर किसी ने टेर दे दी सुबह की और फिर किसी ने आह्वान किया और चुनौती दी। उससे हमारी नींद टूटती है। उससे हमारे सपने छिन्न-भिन्न होते हैं। हम नाराज न हों तो क्या करें? इसलिए लोगों की मेरे प्रति नाराजगी स्वाभाविक है। फिर भी मुझे जो करना है, वह मैं करूंगा।
न उनकी यह रीत नई, न अपनी यह प्रीत नई।
न उनकी यह हार नई, न अपनी यह जीत नई।।
मेरे तिरस्कार में, मेरे अपमान में, मुझे दी गई गालियों में सिर्फ वे अपनी हार की घोषणा कर रहे हैं। जब हम हार जाते हैं विचार से तो हम गालियों पर उतर आते हैं। जब हमें कुछ भी नहीं सूझता-बूझता, जब हम उत्तर देने में असमर्थ हो जाते हैं, तो हम पत्थर फेंकने लगते हैं। यह हार का सबूत है। यह अच्छा सबूत है। ये लक्षण बुरे नहीं। इससे लगता है कि मेरी बात से खलल पैदा हो रही है; कहीं न कहीं किसी न किसी की नींद में अड़चन आ रही है। वही मेरी जीत है। कुछ लोगों की भी नींद टूट जाए तो हम इस पूरे देश की नींद को तोड़ दे सकते हैं।
तुम पूछते हो, क्यों मेरा तिरस्कार, क्यों उपेक्षा? जब कि मैं जो कह रहा हूं वह सर्वांगीण विकास के लिए मार्ग बन सकता है।
कुछ बातें समझनी होंगी। पहली बातः भारत की पूरी जीवन-दृष्टि नकारात्मक है। और मेरी मजबूरी है कि मुझे सच ही तुमसे कहना होगा। कितना ही सम्हल कर कहूं, लेकिन सच तो कहना ही होगा। यह नकारात्मक दृष्टि को निर्माण करने वालों में तुम्हारे महापुरुषों का हाथ है। छोटे-छोटे आदमी तो देशों की जीवन-दृष्टि निर्धारित कर भी नहीं सकते। जब भी कसूर होता है तो हम छोटे लोगों पर टाल देते हैं और जब भी कोई महत्वपूर्ण बात होती है तो हम महापुरुषों का गुणगान करते हैं। हमारा गणित बड़ा अजीब है! जब भी देश में कोई स्वर्ण-शिखर उठता है तो हम कहेंगे महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य का देश! और जब देश में सड़ांध पैदा होगी और जब देश में बीमारी फैलेगी और देश की

आत्मा रुग्ण होगी, तब हम नहीं कहते कि बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य का देश! तब हम कहते हैंः महापुरुष तो ठीक ही कहते रहे, लोग सुने नहीं, समझे नहीं, माने नहीं।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि चाहे भला हो और चाहे बुरा हो, उस सबके नियंता तुम्हारे महापुरुष ही होते हैं। साधारणजन तो लकीर का फकीर होता है। वह तो चल पड़ता है पीछे। वह तो भरोसा कर लेता है।
भारत की नकारात्मक दृष्टि में बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य जैसे लोगों का हाथ है, क्योंकि ये सभी पलायनवादी हैं। और पलायनवाद जिस देश की छाती पर बैठ जाए उसकी आत्मा को कैंसर लग गया समझो। और शरीर के कैंसर का तो शायद कभी न कभी कोई इलाज खोज लिया जाएगा, लेकिन आत्मा के कैंसर का इलाज बहुत मुश्किल है।
नकारात्मक दृष्टि का अर्थ है जीवन-विरोधी दृष्टि--यह जीवन बुरा है, जंजाल है; इस जीवन को त्यागना है, इस जीवन से भागना है। और जब तुम जीवन को त्यागोगे और भागोगे तो कैसे उसे सुंदर बनाओगे? कौन उसे सुंदर बनाएगा? जब जीवन ही गर्हित है, कुत्सित है, निंदित है, तो क्या सजाना इसे, क्याशृंगार देना इसे, क्यों समृद्ध बनाना इसे? सड़ने दो! यह तो इसकी नियति है! यह तो होना ही है! इससे बचने का कोई उपाय ही नहीं है!
ऐसी निराशा, ऐसी हताशा सदियों से तुम्हें सिखाई गई है। यह तुम्हारे रक्त में, मांस में, मज्जा में प्रविष्ट कर गई है। यह बात स्वीकार ही कर ली गई, अब इस पर कोई संदेह ही नहीं उठाता। अब कोई जवां मर्द पुनर्विचार के लिए ललकारता भी नहीं कि हम फिर से एक बार तो सोच लें--क्यों हम गरीब हैं? क्यों हम गुलाम रहे? क्यों हम दीन हैं? इतनी समृद्ध भूमि, जिसके पास करीब-करीब दुनिया की सभी ऋतुएं हैं, जिसके पास सभी तरह के मौसम हैं, जिसके पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो न हो, फिर क्या हुआ? भूमि के साथ कुछ भूल नहीं है, न ऋतुओं के साथ कोई भूल है, न नदियों की कमी है, न पहाड़ों की, न जमीन की। मगर आदमी में कुछ गलत हो गया, कुछ तिरछा हो गया। इस पर पुनर्विचार की जरूरत है।
और पुनर्विचार में कष्ट तो होता है, क्योंकि हजारों साल की मानी हुई धारणा हमारा मंदिर बन गई है। वहीं हमने पूजा के फूल चढ़ाए, वहीं हमने आरती उतारी, वहीं हमने धूप-दीप जलाए। और आज अचानक मैं तुमसे कहूं कि फिर से सोचो, कि मनु ने, महावीर ने, बुद्ध ने, शंकराचार्य ने जो तुम्हें जीवन को देखने का ढंग दिया है, कहीं उसमें कुछ भूल-चूक तो नहीं? संसार को माया कहोगे तो कैसे विज्ञान का जन्म होगा? संसार को माया कहोगे और कामिनी- कांचन को गालियां दोगे... ।
रामकृष्ण जीवन भर यही करते रहे। बस ये दो शब्दों पर ही उनका सारा उपदेश टिका हुआ हैः कामिनी-कांचन का त्याग! अब इन दो शब्दों को ठीक से समझ लो। अगर सोना मिट्टी है तो क्यों पैदा करना? अगर सोना मिट्टी है तो क्यों निर्मित करना? और सोना निर्मित किया जाता है, पैदा किया जाता है। संपदा आकाश से नहीं बरसती; मनुष्य के श्रम और प्रतिभा से पैदा होती है। मनुष्य को उसकी कला ईजाद करनी होती है। विज्ञान वही है--संपदा को जन्म देने का एक सुनियोजित,शृंखलाबद्ध आयोजन है।
लेकिन कांचन तो छोड़ना है, धन तो व्यर्थ है, असार है! अगर धन असार है तो फिर दरिद्र रहोगे। फिर रोते क्यों हो? फिर परेशान क्यों होते हो? फिर झींकते क्यों हो? फिर क्यों भीख मांगते फिरते हो दुनिया भर में? फिर गरीबी के लिए प्रसन्न होओ, आनंदित होओ, कि प्रभु की बड़ी कृपा है कि उसने तुम्हें धन के जाल से पहले से ही बचा रखा है।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः धन असार नहीं है। धन को पकड़ने में अधर्म है, लेकिन धन का उपयोग करने में कोई अधर्म नहीं। लोभ में अधर्म है, लेकिन धन में कोई अधर्म नहीं। लोभ में भी अधर्म का कारण मेरा है; वही नहीं है जो तुम परंपरा से सुनते रहे हो। मैं लोभ को इसलिए अधर्म कहता हूं कि लोभ के कारण धन की गति रुकती है।
हम यहां अगर दो हजार लोग मौजूद हैं और सब अपने-अपने धन को पकड़ कर बैठे रहें तो धन की गति नहीं होगी। लेकिन लोग धन को जीएं, भोगें, उसका व्यय करें, विनियोग करें, खरीदें चीजें, बेचें चीजें, तो धन जितना चलेगा उतना ज्यादा हो जाता है। पांच रुपए मेरे पास हों और जब मैं किसी दूसरे को देता हूं तो

दस हो गए। क्योंकि मैंने पांच का उपयोग कर लिया और अब उसको मौका मिला पांच का उपयोग करने का। उसने जब तीसरे को दिए तो पंद्रह हो गए और जब चौथे को दिए तो बीस हो गए और जब पांचवें को दिए तो पच्चीस हो गए। क्योंकि प्रत्येक ने पांच का उपयोग किया और दूसरे के पास फिर पांच पहुंच गए।
अंग्रेजी में शब्द है धन के लिएः करेंसी। वह शब्द बड़ा ठीक है। जो चले
वह धन, करेंसी यानी करेंट। जो धार की तरह बहे वह धन। लोभ अटकाता है, जैसे कि झरने पर कोई पत्थर को रख दे। झरना बुरा नहीं है, पत्थरों का रखना बुरा है। मगर तुम्हें सदियों से सिखाया गया है कि झरना बुरा है।
मैं तुमसे कहता हूंः पत्थर हटा दो। धन को भोगने की कला सीखो। जब तुम
धन को भोगने की कला सीखोगे तो धन को पैदा करने की कला भी सीखनी पड़ेगी।
और न ही मैं कामिनी के विरोध में हूं। क्योंकि जो व्यक्ति पुरुष है और स्त्रियों के विरोध में है, उसकी जिंदगी में से सारा रस, सारा सौंदर्य, सारा प्रेम सूख जाएगा। सूख ही जाएगा। जो स्त्री पुरुषों के विरोध में है, उसके जीवन में कैसे काव्य के फूल लगेंगे? असंभव। जहां प्रेम सूख गया वहां आदमियत मर जाती है। फिर यह देश क्या है? मुर्दों का एक ढेर हो गया।
प्रेम के प्रति हमारे मन में घृणा है, क्योंकि प्रेम को हमने बंधन कहा। मैं तुमसे फिर कहना चाहता हूंः प्रेम बंधन नहीं है। मोह बंधन है। अपनी भाषा बदलो। पूरी वर्णमाला नई करनी है, तब कहीं इस देश में सूर्योदय हो सकता है। धन नहीं, लोभ। और प्रेम नहीं, मोह। हां, मोह गलत है। मगर मोह के लिए तो हम सब राजी हैं और प्रेम के हम विरोध में पड़ गए हैं।
मोह भी इसलिए गलत है कि वह प्रेम को नुकसान पहुंचाता है; जैसे लोभ धन
को नुकसान पहुंचाता है। जैसे लोभ के पत्थर धन के झरने को रोक लेते हैं ऐसे ही मोह के पत्थर प्रेम के झरने को रोक लेते हैं। मोह का मतलब हैः यह मेरा; यह मेरी पत्नी, यह किसी और के साथ बैठ कर हंसे भी तो मुझे बेचैनी, तो मुझे नजर रखनी है, मुझे चारों पहर ध्यान रखना है। और पत्नी को भी यही काम है कि पति पर नजर रखे। दफ्तर भी जाता है तो दिन में चार-छह दफे फोन कर लेती है कि कहां हैं, क्या कर रहे हैं। कहीं हंसी-बोल तो नहीं चल रहा है! कहीं किसी स्त्री से मैत्री तो नहीं चल रही है!
यह जो मोह है, यह मार डालता है। प्रेम भी प्रवाह मांगता है। जितना ज्यादा लोगों से तुम प्रेम कर सको उतना ही तुम्हारे जीवन में रसधार होगी। जितने तुम्हारी मैत्री के नए-नए आयाम होंगे, जितने तुम्हारे संबंधों में नई-नई शाखाएं निकलेंगी, नए पत्ते लगेंगे, उतना तुम्हारे जीवन में रस होगा। और इसे तुम अपने अनुभव से भी जानते हो, मगर तुम अनुभव की नहीं मानते, तुम शास्त्रों की मानते हो। तुम अपने अनुभव से जानते होः जब तुम्हारे जीवन में प्रेम का पदार्पण होता है, एकदम फूल खिल जाते हैं, वसंत आ जाता है। पतियों को और पत्नियों को साथ-साथ देखो, दोनों उदास चले जा रहे हैं। एक-दूसरे पर पहरा लगाए हुए। दोनों चोर हैं, दोनों पुलिस वाले हैं। पति यहां-वहां नहीं देख सकता।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी के साथ एक लिफ्ट में सवार हुआ। साथ ही
एक नवयौवना, बड़ी सुंदर स्त्री भी लिफ्ट में थी। मुल्ला की नजर स्वभावतः उस पर अटक गई। कुछ पाप नहीं। अगर सुबह के सुंदर सूरज को देख कर तुम्हारी आंखें ठिठक जाएं और अगर गुलाब का फूल खिले और तुम्हारी आंख एक पल को रुक जाए तो किसी स्त्री के सौंदर्य को देख कर न रुके, यह बात कैसे होगी? यह होनी ही चाहिए। न हो तो कुछ गलत है।
तो मुल्ला लाख उपाय करे यहां-वहां देखने का, लेकिन छोटा-सा तो लिफ्ट
और जल्दी ही उसकी मंजिल भी आ जाएगी, तो ज्यादा समय भी नहीं है कि यहां-वहां देखे। सो घूर-घूर कर उसी युवती को देख रहा था। बचना भी चाहता था क्योंकि पत्नी साथ थी, इधर-उधर भी देखता था, मगर देखता उसी को था।
हमारे पास एक शब्द हैः लुच्चा। लुच्चा का मतलब समझते हो? लोचन से बना है, आंख। लुच्चे का अर्थ होता है, जो किसी को घूर-घूर कर देखे। और इसमें कोई खराब बात नहीं है। इसी से आलोचक शब्द भी बना है। दोनों का मतलब एक ही होता है--आलोचक और लुच्चा--दोनों घूर-घूर कर देखते हैं।

उस युवती ने थोड़ी देर बाद उठाया हाथ और तड़ाक से मुल्ला के चेहरे पर मारा। झल्ला गया मुल्ला, लेकिन अब कुछ कर भी न सका। और वह स्त्री बोली, शर्म नहीं आती? इस उम्र में और चिकोटी काटते हो?
अब मुल्ला कुछ कहे भी तो क्या कहे! जब लिफ्ट से उतरा अपनी पत्नी के साथ
तो उसने कहा कि फजलू की मां, मैं अल्लाह की कसम खाकर कहता हूं कि मैंने चिकोटी नहीं काटी थी।
फजलू की मां ने कहा, मुझे मालूम है। चिकोटी मैंने काटी थी। मगर घूर-घूर कर कौन देख रहा था? तुम्हें व्यर्थ अल्लाह की कसम खाने की कोई जरूरत नहीं, मुझे पक्का पता है कि चिकोटी किसने काटी थी। मैंने काटी थी। मगर काटनी पड़ी, नहीं तो चांटा कैसे पड़ता!
प्रेम में कुछ बुराई नहीं है। सौंदर्य के स्वीकार में कुछ बुराई नहीं है। हां, मोह में बुराई है। लेकिन हम मोह के भय से प्रेम को ही काट गए। अंग्रेजी में कहावत है न कि बच्चे को नहलाओ तो फिर गंदे पानी के साथ बच्चे को मत फेंक देना। लेकिन हमने गंदे पानी के साथ बच्चे को भी फेंक दिया। हमने प्रेम को फेंक दिया मोह के डर में, क्योंकि प्रेम रहेगा तो कहीं मोह पैदा न हो जाए। और हमने धन को फेंक दिया लोभ के डर में, कि कहीं धन हुआ तो लोभ न पैदा हो जाए। मगर तब फिर हम सूख गए। न प्रेम रहा, न संपदा रही। बाहर की संपदा भी गई और भीतर की संपदा भी गई। प्रेम भीतर की संपदा है और धन बाहर की संपदा है। दोनों गंवा कर हम बैठे हैं।
और इसलिए मैं अगर आज तुमसे कहूं कि रामकृष्ण के इन उपदेशों से मैं राजी नहीं, तो बेचैनी होती है, क्योंकि रामकृष्ण तुम्हारे लिए परमहंस हैं। वे जो कहें सो परम वाक्य है। अगर मैं आज तुमसे कहूं कि मैं राजी नहीं हूं महावीर का महल को छोड़ कर जाना या बुद्ध का राजपाट छोड़ना, इससे मैं राजी नहीं हूं।
मैं तो पसंद करता कि महावीर रुके होते महलों में और राज्य को रूपांतरित किया होता। क्षमता थी उनके पास, प्रतिभा थी उनके पास। चाहते तो उस राज्य को जिसकी मालकियत उन्हें मिली थी, संपदा से भर देते, विज्ञान से भर देते। मगर वह तो न किया, छोड़ कर भाग गए। इससे गरीबों की गरीबी न मिटी, दुखियों का दुख न मिटा। बुद्ध छोड़ कर चले गए।
इस देश में जिसके पास प्रतिभा थी वह छोड़ कर भाग गया। बुद्धू दुकानों
पर बैठे हैं। बुद्धू राजनीति में बैठे हैं। बुद्धू संसार चला रहे हैं। बुद्धिमान हिमालय की गुफाओं में चले गए। दुनिया में इससे उलटा हुआ। बुद्धिमान दुनिया में रहे। और स्वभावतः इसका लाभ हुआ दुनिया को।
थोड़ी देर सोचो, आइंस्टीन अगर महावीर की तरह छोड़ कर जंगल में भाग जाए
तो माना कि जरूर थोड़ी शांति अनुभव करेगा वहां। लेकिन संसार का कितना अहित हो जाएगा, इसका कुछ हिसाब है? अगर एडीसन भाग गया होता दुनिया से तो बिजली न होती, रेडियो न होता, टेलीफोन न होता। एक हजार आविष्कार किए एडीसन ने। लेकिन एडीसन को तुम उतना आदर नहीं दोगे जितना महावीर को दोगे, क्योंकि महावीर ने क्या किया--नग्न खड़े हो गए! जो नग्न खड़ा हुआ, उसने तुम सबको भी नग्न कर दिया। और जरूरत थी वस्त्रों की। जिसने छप्पर छोड़ दिया, उसने तुम्हारे छप्पर भी गिरा दिए। और जरूरत थी छप्परों की।
हमें अपने मूल्यांकन बदलने होंगे। और चूंकि मैं मूल्यांकन बदलने की बात करता हूं, इसलिए मुझे महावीर पर भी चोट करनी पड़ेगी, मनु पर भी चोट करनी पड़ेगी, शंकराचार्य पर भी चोट करनी पड़ेगी, रामकृष्ण पर भी चोट करनी पड़ेगी। और यह तुम्हारे समादृत पुरुषों की परंपरा है। तुम कैसे मुझे गालियां देने से अपने को रोक पाओगे? तुम मुझे जिंदा छोड़ रहे हो, यह भी आश्चर्य है। तुम तो अपने पुराने ढंग से ही सोचोगे।

एक आदमी पर
सरकारी वकील ने
आरोप लगाते हुए कहा--
मी लार्ड,
इसके पास नहीं है
राशन कार्ड!

इसे गेहूं और शक्कर की फिक्र नहीं है इसकी बातों में कहीं भी
महंगाई और सरकार का
जिक्र नहीं है
इतना ही नहीं,
यह हमेशा हंसता और मस्त रहता है
इस पर भी देखिए
अपने आप को हिंदुस्तानी कहता है
इसके चेहरे पर
चिंता की एक भी रेखा नहीं है
जरूर यह विदेशी जासूस मालूम होता है।

भारत में तो हमने आज तक ऐसा आदमी देखा ही नहीं है। यहां तो मस्त होना, आनंदित होना, प्रफुल्लित होना पाप हो गया है। यहां उदास होना, गंभीर होना संतत्व का लक्षण हो गया है। यहां जितना मुर्दा आदमी हो, जितना सड़ा-सड़ाया हो, उतने ही ज्यादा सम्मान का पात्र हो जाएगा।
तुम सम्मान भी किनको देते हो? कोई उपवास कर रहा है, इसलिए सम्मान देते हो। इसके उपवास से क्या हो जाएगा? ऐसे ही भारत में आधे लोग उपवास कर रहे हैं, भूखे मर रहे हैं। जो आदमी नग्न खड़ा हो जाता है, इसको सम्मान देते हो। यूं ही भारत में कितने लोगों के पास कपड़े हैं? लंगोटी भी तो न बची। कहते हैं--भागते भूत की लंगोटी भली। वह लंगोटी भी न बची, भूत को भागे भी न मालूम कितने हजार साल हो गए! ढूंढोगे भी तो लंगोटी पाना मुश्किल है। मगर कोई आदमी अगर नग्न खड़ा हो जाए तो तुम्हारे समादर का पात्र हो जाता है। तुम गदगद हो जाते हो। तुम फूल की मालाएं लेकर तत्काल स्वागत के लिए राजी हो जाते हो। तुम्हारे हृदय में एकदम सुस्वागतम लिख जाता है। तुम्हारे हृदय के पट एकदम से खुल जाते हैं, कि पधारो महाराज, अन्न-जल शुद्ध, पधारो, विराजो! तुम गलत जीवन-दृष्टि में इतने ज्यादा रंग गए हो कि आज मैं तुमसे जो कह रहा हूं वह तुम कुछ का कुछ समझ लेते हो।

शिष्या को समझा रहे, त्रिगुणाचार्य त्रिशूल,
डैडी कहने की प्रथा, संस्कृति के प्रतिकूल।
संस्कृति के प्रतिकूल, लाड़ली लड़की भोली,
करके नीची नजर मंद्र सप्तक में बोली, कहूं,
पिताजी तो यह कठिनाई आती है,
टकराते हैं ओंठ, लिपिस्टिक हट जाती है। उसके अपने सोचने का ढंग है!

मांटेसरी के छोटे छात्र
हाफ टाइम में नाश्ता करते-करते
बताने लगे अपने पापा की पोजीशन,
पहले ने कहा--हमारे पापा लखपति हैं,
दूसरा बोला--मेरे फादर करोड़पति हैं,
तीसरे ने मुंह खोला--हमारे डैडी तो मम्मी के पति हैं।

होली का गुलाल मलते हुए बोले
एक हीरो छाप देवर,
हम तुम इक कमरे में बंद हों
और खो जाए चाबी,
तो क्या होगा भाभी?
होगा क्या लाला,
तुड़वाना पड़ेगा तीन रुपए का ताला।

मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ सुनोगे। और कसूर तुम्हारा भी क्या! तुम्हारी भाषा निर्णीत हो गई है; तुम्हारे संस्कार सुस्थिर हो गए हैं, जड़ हो गए हैं।
ये पानी पर खींची लकीरें न रहीं, पत्थर पर लिखावटें हो गई हैं।

प्रभु मेरे मैं नहिं रिश्वत खाई।
जबरन नोट भरे पाकिट में, करके हाथापाई।
मोहि फंसाइके, सफा निकसि गयौ, सेठ बड़ो हरजाई।
भोजन-भजन न कछू सुहावै, आई रही उबकाई।
देउ दबाय केस को भगवन, कर लेउ आध बटाई।
कहं काका तब बिहंसि प्रभु ने, लियो कंठ लिपटाई।
प्रभु मेरे मैं नहीं रिश्वत खाई।

तुम भजन भी करोगे तो भी तो तुम्हारी ही दृष्टि से निकलेगा। तुम गीत भी गुनगुनाओगे तो भी तो तुम्हारे ही प्राणों से उठेगा।
इसलिए भारत भूषण, मैं जो कह रहा हूं वह तो सर्वांगीण विकास का पथ है। लेकिन तुम जो सुन रहे हो, तुम तो समझोगे अपनी ही शैली से। तुम्हारी तो बंधी हुई धारणाएं हो गई हैं। यह भारत की नकारात्मक दृष्टि बदलनी होगी, इसे विधायकता देनी जरूरी है। जीवन को निराशा से हटाना है और आशा देनी जरूरी है। कहो कि संसार उतना ही सत्य है जितनी आत्मा, देह उतनी ही सत्य है जितनी चेतना। तब विज्ञान और धर्म दोनों साथ-साथ चल सकते हैं; साथ-साथ ही चलने चाहिए। जैसे पक्षी उड़े तो दो पंख चाहिए। दो पंखों के बिना पक्षी न उड़ सकेगा। दो पंख होंगे तो ही उड़ेगा। एक पंख होगा तो कैसे उड़ेगा? लाख तड़फे, उड़ना चाहे, मगर गिरेगा।
पश्चिम के पास भी एक पंख है--विज्ञान का। वह भी बुरी तरह परेशान है। और हमारे पास भी एक पंख है--धर्म का। हम भी बुरी तरह परेशान हैं। यह समय है जब हम एक-दूसरे से सीख लें। पूर्व और पश्चिम मिल जाने चाहिए। विज्ञान और धर्म जुड़ जाने चाहिए। भविष्य इस पर ही निर्भर होगा--इसी योग पर। इसको मैं महायोग कहता हूं--विज्ञान और धर्म का मिल जाना। और तभी तुम भीतर भी आनंद को उपलब्ध होओगे और बाहर भी। दोनों आनंदों में विरोध नहीं है। सच पूछो तो दोनों आनंदों में सामंजस्य है। बाहर का आनंद भीतर के आनंद के लिए भूमिका बनता है।
इसलिए मैं तुम्हें संसार छोड़ने को नहीं कहता; संसार को जीने की कला सीखने को कहता हूं। मेरा संन्यास त्याग नहीं है, भोग की कला है। चौंकोगे तुम, क्योंकि सदियों से तुमने सुना संन्यास यानी त्याग। और मैं कहता हूं संन्यास यानी भोग की कला। हां, अगर बिना कला के भोगो तो पशु जैसे हो जाते हो। और बिना कला के भागो तो सिर्फ कायर हो। जिसको कला आती है उसको भागना भी नहीं पड़ता और पशु भी नहीं होना पड़ता; उसके जीवन में महाक्रांति घटित होती है। वह जल में कमलवत। यहीं संसार में, इसकी पूरी समृद्धि में यूं जीता है जैसे कुछ भी न छूता हो। माना कि यह काजल की कोठरी है, लेकिन इससे गुजरने का ढंग भी है। कबीर गुजरे तो तुम भी गुजर सकते हो। मैं गुजर रहा हूं तो तुम भी गुजर सकते हो।
कबीर ने कहाः ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी रे कबीरा।
जरा भी मैली न होने दी। काजल लग ही न पाया। इसमें क्या खूबी है कि भाग गए, काजल की कोठरी से ही न निकले और वस्त्र सफेद रहे? इसमें क्या कला है? इसमें क्या प्रतिभा है? और काजल की कोठरी से निकले, कपड़े ही काले न हुए, खुद भी काले हो गए--इसमें भी कोई कला नहीं। कला तो इसमें है कि काजल की कोठरी से निकलो और जरा-सा भी दाग न लग पाए, बेदाग निकल आओ। और तभी मैं कहता हूं कि तुम इस योग्य होओगे कि परमात्मा ने तुम्हें जो जीवन दिया था उसको धन्यवादपूर्वक वापस कर सको; कह सको कि धन्यवादी हूं कि तुमने एक अपूर्व अवसर दिया--जागने का, होश सम्हालने का, ध्यान का।
तुमने पूछा कि आप भारत को उसकी अनंत क्षमताओं के प्रति जगा रहे हैं। जगाने में ही तो अड़चन है। किसी सोए आदमी को जगाओ, और वह नाराज होगा। यह
भी हो सकता है कि कह कर सोया हो कि सुबह मुझे उठा देना, कि मुझे जल्दी ट्रेन

पकड़नी है। मगर वही सुबह उठाने में अड़चन डालेगा। वही कंबल खींच-खींच कर कहेगा, जरा पांच मिनट और। जरा एक करवट और ले लूं। अभी क्या जल्दी पड़ी है? और भारतीय गाड़ियां हैं, कोई समय पर आने वाली हैं! क्यों मेरे पीछे पड़े हो? और अगर वह कोई सुंदर सपना देख रहा हो कि किसी राजमहल में निवास कर रहा हो सपने में, तब तो और भी नाराज हो जाएगा।
तुम सपने देख रहे हो स्वर्गों के, जो कहीं भी नहीं हैं; बैकुंठ के, जो कहीं भी नहीं हैं; गोलोक, जो कहीं भी नहीं हैं। तुम सपने देख रहे हो सुंदर। और तुम्हारे ऋषि-मुनि तो और भी सुंदर सपने देख रहे हैं, क्योंकि उनको ख्याल है चूंकि वे उपवास करते हैं, धूनी रमा कर बैठे हैं, वस्त्र त्याग कर दिया है, जंगल में आ गए हैं--तो स्वर्ग के पाने के अधिकारी हो गए हैं।
अब धूनी रमाए बैठे हो, इस अभ्यास से तो इतना ही तय होता है कि तुम्हें नरक भेजा जाना चाहिए। क्योंकि नरक में धूनी लगी हुई है, धू-धू करके जल रही है अग्नि, कड़ाहे चढ़े हुए हैं। स्वभावतः जो लोग ठीक गहरे अभ्यासी हैं, उनको ही भेजा जाएगा। गैर-अभ्यासियों को वहां भेज कर क्या करोगे? यह तो सीधा गणित है कि अगर तुम इंजीनियर हो तो इंजीनियर का काम मिलेगा, अगर डाक्टर हो तो डाक्टर का काम मिलेगा। पढ़ो तो इंजीनियरी और हो जाओ डाक्टर, तो जान लोगे लोगों की। खुद भी मुसीबत में पड़ोगे, लोगों को भी मुसीबत में डालोगे।
जो धूनी रमाए बैठे हैं, धूप में अपने को सता रहे हैं, कांटे बिछा कर लेटे हैं, अगर कहीं कोई नरक होगा तो उसी का तो अभ्यास कर रहे हैं। इनको स्वर्ग भेजने की कोई जरूरत भी नहीं है। ये स्वर्ग में करेंगे क्या? मैंने सुना है, एक आदमी सरकस में काम करता था। उसका काम ही यही था कि खीलों के बिस्तर पर सोता था। नुकीले खीले कि हाथ को छू जाएं तो लहूलुहान कर दें। वह उस पर सोता था। उसकी भी कला है, क्योंकि तुम्हारी पीठ में इस तरह के बिंदु हैं जहां कोई संवेदना नहीं होती। अगर भरोसा न हो तो घर में किसी को भी, अपनी पत्नी को कहना--उसको भी थोड़ा मजा आएगा--कि सुई लेकर तुम्हारी पीठ में चुभाए। जहां-जहां तुम्हें पीड़ा मालूम हो, कहना राम-राम! और जहां-जहां पीड़ा तुम्हें पता ही न चले कि सुई चुभाई गई है, वहां वह निशान लगाती जाए। तुम्हारी पीठ पर ऐसे बहुत-से बिंदु हैं जहां तुम्हें अनुभव ही नहीं होगा कि सुई चुभाई गई। वहां कोई संवेदनशीलता नहीं है। बस उन्हीं बिंदुओं को सम्हालने की बात होती है। कांटे उन्हीं बिंदुओं को छूते हैं। बिस्तर ऐसा बनाना पड़ता है कि कांटे उन्हीं बिंदुओं को छुएं।
अब यह आदमी रोज यही धंधा करता था सरकस में। एक दिन छुट्टी पर आराम कर रहा था घर। उसकी पत्नी देख कर हैरान हुई, क्योंकि वह कांटों का बिस्तर लगा रहा था--वही खीले का बिस्तर। पत्नी ने कहा, क्या कर रहे हो? आज तो छुट्टी है।
उसने कहा, छुट्टी तो है, मगर मैं सोऊं कैसे? अभ्यास जो हो गया है। जब
तक इस खीलियों वाले बिस्तर पर लेटूंगा नहीं, मैं सो नहीं पाऊंगा।
अभ्यास बड़ी चीज है।
तुम्हारे ऋषि-मुनियों को तो नरक भेजा ही जाना चाहिए। अगर कहीं कोई नरक है तो निश्चित ही ऋषि-मुनियों के लिए बनाया गया है। इतना बेचारे अभ्यास कर रहे हैं! यह सब बेकार ही अभ्यास जाएगा पानी में? स्वर्ग में ये करेंगे क्या, वहां जाकर कांटे बिछाएंगे। स्वर्ग में जाकर धूनी रमाएंगे। स्वर्ग में जाकर नंगे घूमेंगे। स्वर्ग में इनकी क्या जरूरत है?
अगर स्वर्ग में जाना है तो स्वर्ग का थोड़ा अभ्यास करो। उमर खय्याम ने ठीक कहा है। मुसलमानों की धारणा है कि स्वर्ग में, बहिश्त में शराब के चश्मे बहते हैं। यहां शराब वर्जित है, यहां शराब पीना पाप है।
जब मिर्जा गालिब को अंग्रेजों ने पकड़ लिया और दिल्ली को तहस-नहस कर दिया और अंग्रेज मिर्जा गालिब को पकड़ कर ले चले कारागृह की तरफ, तो रास्ते में उन्होंने पूछा, मुसलमान हो? तो मिर्जा गालिब ने कहा, हुजूर, आधा।
वे थोड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा, आधा! बहुत मुसलमान पकड़े, बहुत हिंदू पकड़े, तुम पहले आदमी हो। यह क्या कहते हो? आधा मुसलमान यानी क्या मतलब? तो मिर्जा गालिब ने कहा, आधा इसलिए कि सुअर नहीं खाता, शराब पीता हूं। पूरा कैसे कहूं?

यहां शराब पीना वर्जित है और मजा यह है कि जो यहां शराब न पीएंगे उनके लिए बहिश्त में शराब के झरने बहाए गए हैं। यह कौन-सा गणित है? उमर खय्याम का गणित ज्यादा साफ मालूम पड़ता है। उमर खय्याम एक अदभुत सूफी फकीर था। उसने बात पते की कही। उसने कहा, यहां पीने दो, अभ्यास तो करने दो जी! यहां कुल्हड़ से भी न पीया और वहां एकदम जाकर झरनों में पीएंगे तो मरेंगे नहीं! ऐसा अंधाधुंध नशा चढ़ेगा कि भगवान सामने खड़े होंगे तो शैतान नजर आएगा। सब उलटा-सीधा हो जाएगा। अभ्यास करने दो। यहां पीने दो। यहीं का अभ्यास तो वहां काम आएगा।
तुम्हारे ऋषि-मुनि क्या खाक पीएंगे! और अगर स्वर्ग में शराब ही शराब
के चश्मे हैं, पानी मिले ही न, तो ऋषि-मुनियों की हालत तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगी। उनको तो नरक जाना पड़ेगा। उनको स्वर्ग में कहां जगह!
न कोई स्वर्ग है, न कोई नरक है। यहीं तुम नरक बनाते हो। अगर तुम जीवन
को नकारात्मक ढंग से लेते हो, नरक बन जाता है। जीवन को नकार से देखना नरक है और जीवन को विधायकता देना स्वर्ग है। फूल चुनो, क्या कांटों के बिस्तर बना रहे हो? फूलों के बिस्तर बन सकते हैं तो फिर क्यों कांटों पर मरे जा रहे हो?
लेकिन कुछ कारण हैं। कुछ कारण हैं, क्यों लोग नकारात्मक हो गए? कारण
यह है कि सुख की चाह स्वाभाविक है। आनंद की आकांक्षा सभी के भीतर है। ऐसा कौन है जो आनंद न चाहे? आनंद की अभीप्सा स्वाभाविक है। और हम आदर उसको देते हैं जो कुछ असाधारण काम करके बताए। जैसे कोई सिर के बल खड़ा हो तो वहां भीड़ लगेगी। तुम पैर के बल कितनी ही देर खड़े रहो, कोई न आएगा।
पैर के बल तुमको परमात्मा ने खड़ा किया है। लेकिन जो आदमी सिर के बल खड़ा है, मूर्खतापूर्ण कृत्य कर रहा है; क्योंकि खड़े होने के लिए परमात्मा ने पैर दिए हैं, सिर नहीं। सिर के दूसरे काम हैं। लेकिन सिर के बल खड़े आदमी के आस-पास भीड़ इकट्ठी हो जाएगी, क्योंकि वह कुछ अनूठा कर रहा है, कुछ नया कर रहा है, कुछ बेजोड़ काम कर रहा है। जहां सारे लोग पैरों पर खड़े हैं, वहां वह सिर पर खड़ा है। जहां सारे लोगों को दो दफा भोजन चाहिए, जो आदमी दस-दस दिन, पंद्रह-पंद्रह दिन का उपवास करेगा उसको सम्मान मिलने लगेगा। वह कुछ विशिष्ट काम कर रहा है।
हालांकि कुछ खास काम नहीं है; सिर्फ भूखा मरने का अभ्यास कर रहा है।
और अभ्यास तो किसी भी चीज का हो सकता है। और तीन-चार-पांच दिन के बाद तो भूख मरनी शुरू हो जाती है, क्योंकि मनुष्य के शरीर में ऐसी व्यवस्था है कि तीन महीने तक के लिए शरीर भोजन जुटा कर रखता है। इसलिए तो चर्बी इकट्ठी होती है।
स्त्रियों के शरीर में ज्यादा चर्बी इकट्ठी होती है पुरुषों की बजाए, क्योंकि उनको जब बच्चे को जन्म देना होता है तो नौ महीने तक अड़चन आती है-- भोजन करना मुश्किल, वमन हो जाता है, भूख नहीं लगती। पेट में बच्चा इतनी जगह ले लेता है कि अब भोजन को जगह कहां बचे? तो स्त्रियों के पास प्रकृति ने ज्यादा चर्बी दी है, इसलिए स्त्रियां एक तरह के अनुपात में होती हैं। एक गोलाई होती है उनकी देह में। पुरुष की देह में वैसी गोलाई नहीं होती। लेकिन पुरुष की देह में भी, स्वस्थ देह हो तो तीन महीने तक भोजन चल सके, इतनी चर्बी इकट्ठी होती है।
तो जब तुम उपवास करते हो तो अगर ठीक से समझना चाहो वैज्ञानिक अर्थों में तो तुम मांसाहार कर रहे हो, अपना ही मांस पचा रहे हो। एक दिन के उपवास में एक किलो वजन कम होता है। तुमने कभी सोचा, एक किलो वजन गया कहां? एक किलो वजन तुम पचा गए। तीन महीने तक आदमी, अगर पूरी तरह स्वस्थ आदमी हो, तो मजे से उपवास कर सकता है। और तीन दिन, पांच दिन के बीच में कभी रूपांतरण हो जाता है। पेट फिर बाहर से भोजन नहीं मांगता; उसके पास एक वैकल्पिक व्यवस्था है, वह तत्क्षण अपना ही मांस पचाना शुरू कर देता है। और जब अपना मांस पचाना शुरू कर देता है, बाहर से भोजन की जरूरत नहीं रह जाती।
इसलिए जो लोग लंबे उपवास करते हैं, तुम यह मत सोचना कि कोई बहुत मेहनत
का काम कर रहे हैं। असली मेहनत तीन-चार दिन में ही होती है, शुरू के तीन-चार दिनों में। इसके बाद तो फिर तुम्हारा शरीर नए ढर्रे पर चलने लगता है, नई प्रक्रिया पकड़ लेता है।

मगर जो आदमी उपवास करेगा... महावीर ने, कहते हैं, बारह वर्षों में सिर्फ एक वर्ष भोजन किया, ग्यारह वर्ष भूखे रहे। इकट्ठे नहीं। इकट्ठे रहते तो कभी के खतम हो गए होते। लेकिन ग्यारह दिन उपवास करते और बारहवें दिन भोजन करते। ऐसा कर-करके उन्होंने बारह वर्ष गुजारे।

स्वभावतः खूब सम्मान मिला। जहां लोग एक बार का भोजन नहीं छोड़ सकते, जहां दिन-रात भोजन ही भोजन सिर पर सवार रहता है--सुबह नाश्ता, फिर भोजन, फिर दोपहर को थोड़ा फलाहार, फिर शाम का भोजन, फिर रात को सोते-सोते दुग्धाहार-- इन्होंने जब देखा कि महावीर ग्यारह-ग्यारह, बारह-बारह दिन उपवासे रह जाते हैं, है चमत्कार!
नकारात्मक लोगों को आदर मिल सका इसलिए कि वे बड़े इक्के-दुक्के थे। लेकिन उनको आदर मिलने के कारण तुम्हारा चित्त विकृत हो गया। जो लोग धन को छोड़ कर भाग गए, तुम्हारे मन में उनके प्रति सम्मान उठा, क्योंकि तुम सब तो धन की तरफ भाग रहे हो और वे छोड़ कर भाग गए। क्या गजब का त्याग, महात्याग! लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि चाहे तुम धन की दुनिया में ही क्यों न रहो, तुम्हें अपने ही प्रति ग्लानि पैदा हो गई कि तुम पाप कर रहे हो। तुम चाहे संसार में रहो चाहे संसार के बाहर, हर हाल में संसार की निंदा तुम्हारे मन में गहरी हो गई। और जिस चीज की निंदा हमारे मन में गहरी हो जाती है, हम उसे सजावट देना बंद कर देते हैं।
और मैं जिस सर्वांगीण विकास की बात कर रहा हूं, वह स्वभावतः जीवन को सजाने की बात है। उसे रंग देने की बात है। जीवन को इंद्रधनुष बनाने की बात है।

तमाम उम्र कटी एक बेनवा की तरह
चमन में खाक उड़ाते फिरे सबा की तरह
चिराग हसरते-पा-बोस का जलाए हुए
तुम्हारी राह में हम भी हैं नक्शे-पा की तरह
दिलों का दर्द कभी लब पे आ ही जाता है
किसी पुकार की सूरत किसी सदा की तरह निशाने-राह न पाया तो दश्ते-गुरबत में
हम अपनी राह बनाते चले हवा की तरह गमे-शिकस्त ने हर-हर कदम पे साथ दिया
किसी रफीक, किसी दर्द-आश्ना की तरह
इलाही गम की हवाएं किसी के दामन तक
पहुंच न पाएं मेरे दस्ते-नारसा की तरह
खुशी का नाम तो अक्सर सुना किए "ताबां"
मगर वुजूद न पाया कहीं हुमा की तरह
उर्दू कविता में हुमा पक्षी नाम के एक काल्पनिक पक्षी की चर्चा है। कहते हैं कि हुमा पक्षी की छाया भी किसी पर पड़ जाए तो उसके जीवन में सौभाग्य का उदय हो जाता है, अशर्फियां बरस जाती हैं। लेकिन हुमा पक्षी काल्पनिक है, उसकी छाया कहां से पड़ेगी?
खुशी का नाम तो अक्सर सुना किए "ताबां"
नाम तो बहुत सुना खुशी का, आनंद का।
मगर वुजूद न पाया कहीं हुमा की तरह
उसका अस्तित्व कहीं न मिला। हुमा पक्षी की तरह बहुत खोजा, मगर उसे कहीं पाया नहीं।
और ऐसे ही यह देश आनंद की बातें तो कर रहा है सदियों से, मगर पाया कहां? अरे, बाहर का भी न पा सके तो भीतर का क्या पाओगे? बाहर का तो भौतिकवादी भी पा लेते हैं, वह भी न पा सके, तो भीतर का आनंद तो बहुत बड़ी बात है। बाहर के आनंद के सोपान पर चढ़ कर ही तो भीतर का आनंद पाया जाता है। बाहर कुछ सीढ़ी बनाओ, ताकि भीतर पहुंच सको। बाहर और भीतर में विरोध नहीं है; वे परिपूरक हैं। जैसे दिन और रात में विरोध नहीं। जैसे जवानी में और बुढ़ापे में विरोध नहीं। जैसे जिंदगी में और मौत में विरोध नहीं। जैसे सर्दी में और गर्मी में विरोध नहीं। वे दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं।

बाहर और भीतर में दुश्मनी न ठानो। उनकी दुश्मनी ने ही हमें मार डाला, हमें अपंग कर दिया, हमें लंगड़ा कर दिया। मैं उसी दोस्ती की तरफ इशारा कर रहा हूं। और स्वभावतः मेरा इशारा तुम्हारे तथाकथित अवतारों के विपरीत जाएगा। तो तुम मुझसे नाराज होओगे। तुम मुझ पर क्रोधित हो जाओगे।
हुजूम दर्द का इतना बढ़े असर गुम हो
मिले वो रात कि जिस रात की सहर गुम हो
मजा तो जब है कि आवारगाने-शौक के साथ
गुबार बन के चले और रहगुजर गुम हो
हमारी तरह खराबे-सफर न हो कोई
इलाही यूं तो किसी का न राहबर गुम हो चले हैं हम भी चिरागे-नजर जलाए हुए
ये रोशनी भी कहीं राह में अगर गुम हो तलाशे-दोस्त है दिल को मगर खुदा जाने
कहां-कहां ये भटकता फिरे, किधर गुम हो
चमन-चमन है वो नश्वो-नुमा के हंगामे
गुलों को ढूंढने जाए तो खुद नजर गुम हो
सुखन की जान है हुस्ने-बयां मगर "ताबां"
न यूं कि लफ्ज ही रह जाएं फिक्रे-तर गुम हो
हमारे पास शब्द ही रह गए हैं, शब्दों का अर्थ कभी का खो चुका है। आनंद, आत्मा, मोक्ष--बस शब्द रह गए, इन शब्दों का अर्थ कब का खो चुका है।
सुखन की जान है हुस्ने-बयां मगर "ताबां"
काव्य का तो प्राण ही है--कहने का ढंग, कहने की सुंदरता।
सुखन की जान है हुस्ने-बयां मगर "ताबां"
मगर ध्यान रहे!
न यूं कि लफ्ज ही रह जाएं फिक्रे-तर गुम हो
कहीं ऐसा न हो कि बयान ही बयान रह जाए, हुस्ने-बयां रह जाए, कहने का ढंग
और सलीका ही रह जाए और भीतर के सारे अर्थ खो जाएं।
वही दुर्भाग्य इस देश के साथ हुआ है। हमारे पास शब्द तो सुंदर हैं, बड़े सुंदर हैं, बड़े प्यारे हैं, मगर उन शब्दों का अनुभव, उन शब्दों की प्रतीति, उन शब्दों का साक्षात्कार बहुत समय हो चुका गुम हो गया है।
मैं तुम्हारे शब्दों को प्राण देना चाहता हूं। तुम्हारे शब्दों में श्वासें फूंकना चाहता हूं। तुम्हारी बंद हो गई हृदय की धड़कन को धड़कन देना चाहता हूं। लेकिन तुम इतनी सदियों से मुर्दा हो कि अब तुम जिंदगी की तकलीफ नहीं लेना चाहते। अब तुम जिंदगी की झंझट में नहीं पड़ना चाहते। जिंदगी तो चुनौती है। और जिंदगी तो खतरा है। ख्याल रखना।
कनफ्यूशियस से उसके एक शिष्य ने--मैन्शियस ने--पूछा कि मैं शांति चाहता हूं, परम शांति, ऐसी शांति कि कहीं कोई बाधा न पड़े। कनफ्यूशियस ने उसे गौर से देखा और कहा, ठहर, जब तू मर जाए तो कब्र में क्या करेगा? वहीं उस शांति को पा लेना। फिर कोई बाधा न पहुंचेगी। अभी तो जिंदा है। अभी तो जिंदगी देख ले। फिर मौत आएगी, जरूर आएगी, निश्चित आती है, अपरिहार्यरूपेण आती है। फिर कब्र में शांत रहना, सुरक्षित रहना; फिर कोई बाधा न डालेगा। कोई कितना ही बैंड-बाजा बजाए, तुझे कुछ सुनाई न पड़ेगा। लेकिन अभी तो जिंदा रह ले। जब जिंदगी है तो जिंदगी को पूरी तरह जी लो।
और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जिंदगी को इस ढंग से जीया जा सकता
है कि जिंदगी में नाच भी हो, गीत भी हो, संगीत भी हो और शांति भी हो। जीवन में सुख भी हो, संपदा भी हो, आनंद भी हो। जीवन में देह का स्वास्थ्य भी हो और आत्मा का ध्यान भी हो। इन दोनों में कोई विरोध नहीं।
मगर हम सदियों से कब्र की सुरक्षा में पड़े हुए हैं। यह मुर्दों का टीला है देश। इसमें मुर्दों को जगाने में झंझट तो होगी। कुछ मुर्दे नाराज होंगे कि हम कहां शांति से सो रहे थे और तुमने आकर दखल दे दी! वे पत्थर भी मारेंगे, गालियां भी देंगे, अपमान भी करेंगे, उपेक्षा भी करेंगे। यह सब स्वाभाविक है।
भारत भूषण, लेकिन मुझे जो करना है वह मैं जारी रखूंगा। न उनके पत्थर रोक सकते हैं, न उनकी गालियां रोक सकती हैं, न उनका अपमान रोक सकता है।

क्योंकि मुझे तो सिर्फ इस बात में ही इस देश का भविष्य दिखाई पड़ता है कि यह बाहर और भीतर के सामंजस्य को उपलब्ध हो जाए। उन्हें उनका काम करने दो, मैं अपना काम जारी रखूंगा।
न उनकी यह रीत नई, न अपनी यह प्रीत नई। न उनकी यह हार नई, न अपनी यह जीत नई।।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं एक कवि हूं और जीवन में सबको प्रेम बांटना चाहता हूं। लेकिन संसार की समस्याओं को देखता हूं तो सोचता हूं कि पहले इन समस्याओं को तो हल कर लूं। इन समस्याओं के रहते तो प्रेम एक विलास ही होगा न!

विष्णुदास राठी, पहले भी लोगों ने अगर ऐसा सोचा होता तो कभी कोई प्रेम
कर ही न पाता। समस्याएं तो सदा रही हैं और समस्याएं सदा रहेंगी। यह और बात है कि समस्याओं के तल बदलते जाएं। कभी शरीर की समस्याएं होंगी, कभी मन की समस्याएं होंगी, कभी आत्मा की समस्याएं होंगी। समस्याएं तो होंगी। हां, समस्याएं ऊंची होनी चाहिए। रोटी-रोजी की सबसे छोटी समस्याएं हैं। ध्यान की, समाधि की सबसे ऊंची समस्याएं हैं।
लेकिन इस भ्रांति में मत रहना कि समस्याएं सदा के लिए समाप्त हो जाएंगी, ऐसा भी कोई दिन आएगा। अगर कोई भी समस्या न होगी तो यही समस्या खड़ी हो जाएगी कि अब क्या करें। कोई भी समस्या नहीं! मारे गए! बुरे मारे गए! करने को ही कुछ न बचा। जिंदगी तो समस्याओं का नाम है। और जिंदगी की समस्याओं को हल करना प्रतिभा के निखारने का उपाय है। लेकिन इस कारण भोजन तो करना बंद नहीं कर दिया; कि जिंदगी समस्याओं से भरी है, अभी कैसे भोजन करें, यह तो विलास होगा। सांस लेनी तो बंद नहीं कर दी, कि अभी कैसे सांस लें! जिंदगी तो इतनी समस्याओं से भरी है, दंगे-फसाद, कहीं तालाबंदी, कहीं हड़ताल, कहीं रास्ता रोको, कहीं घिराव, कहीं डकैतियां, कहीं बलात्कार, कहीं हत्याएं, कहीं युद्ध के बादल! इतनी समस्याएं हैं और तुम सांस ले रहे हो! शर्म नहीं आती?
विष्णुदास राठी, कुछ तो सोचो। क्या विलास कर रहे हो? अभी भी सोते हो? अभी भी सुबह उठ कर स्नान करते हो? कोई लाज नहीं, कोई शर्म नहीं, कोई शिष्टाचार नहीं! सिर्फ प्रेम के लिए यह सवाल उठा रहे हो। तब तो फिर कोई भी कभी प्रेम नहीं कर सकता था।
समस्याएं कब न थीं? राम के समय में न थीं? खुद की सीता गंवा बैठे, और समस्याएं न थीं? समस्याएं ही समस्याएं थीं। कृष्ण के समय में न थीं? तो महाभारत कैसे हुआ? अकारण, यूं ही खेल-खेल में! कबड्डी थी क्या? कबड्डी, कबड्डी, कबड्डी! या खो-खो! सवा अरब आदमी मरे और समस्या न थी?
और तुम्हारे ऋषि-मुनि प्रार्थना निरंतर करते रहे कि हे प्रभु, अंधकार
से प्रकाश की तरफ ले चलो, मृत्यु से अमृत की तरफ ले चलो, असत्य से सत्य की तरफ ले चलो। समस्याएं न थीं? बुद्ध चालीस साल समझाते रहे लोगों को--चोरी न करो, बलात्कार न करो, बेईमानी न करो, धोखाधड़ी न करो। समस्याएं न थीं, तो पागल थे, दिमाग खराब था, किसको समझा रहे थे? जो लोग चोरी नहीं करते थे उनको समझा रहे थे कि चोरी न करो? जो लोग बलात्कार करना जानते ही नहीं थे, उनको समझा रहे थे कि हे भाई, बलात्कार न करो! तो वे लोग खड़े होकर पूछते कि साईं पहले यह भी तो बताओ कि बलात्कार क्या होता है! पहले बलात्कार करना तो सिखाओ!
एक ईसाई स्कूल में पादरी समझा जा रहा था बच्चों को कि परमात्मा को पाने के लिए क्या करना होता है। पश्चात्ताप करना होता है, प्रायश्चित करना होता है।
खूब समझाने के बाद उसने बच्चों से पूछा कि परमात्मा को पाने के लिए क्या करना होता है? एक छोटे-से बच्चे ने खड़े होकर कहा, पाप करना होता है। उसने कहा, हद हो गई! यह तो मैंने बात ही नहीं की थी। मैं समझा रहा प्रायश्चित, पश्चात्ताप, अरे दुष्ट! और तू कहता है पाप करना होता है।

उसने कहा, अगर पाप न करेंगे तो प्रायश्चित किसका करेंगे? और पश्चात्ताप किसका करेंगे? अरे, पहले पाप करना तो सिखाओ। पाप करें तो फिर प्रायश्चित करें। फिर प्रायश्चित करें तो परमात्मा मिले।
लड़के ने बात तो समझदारी की कही, पादरी से कहीं ज्यादा अकल की कही।
एक गांव में नया-नया पादरी आया और दो महिलाएं एक चर्चा कर रही थीं कि नया पादरी कैसा है, तुम्हारा क्या ख्याल है? उस दूसरी महिला ने कहा, बड़ा गजब का है! अरे, जब तक आया नहीं था, हमें मालूम ही नहीं था कि पाप क्या चीज है। जब से आया है तब से पता चला कि पाप क्या चीज है।
तो बुद्ध किसको समझा रहे थे बलात्कार न करो? महावीर किसको समझा रहे थे हिंसा न करो? अहिंसा परमो धर्मः! अहिंसकों को? जिन्होंने बेचारों ने कभी मच्छर न मारा, कभी खटमल न मारा, इनको समझा रहे थे अहिंसा परमो धर्मः? तो लोग कहते, अब बस बकवास बंद करो। यहां कोई है ही नहीं हिंसा करने वाला, किसको समझा रहे हो?
खलील जिब्रान की प्रसिद्ध कहानी है। एक कुत्ता बाकी कुत्तों को समझाता था कि देखो भौंको मत, बेकार मत भौंको। बेकार भौंकने के कारण ही कुत्तों की जाति बरबाद हुई। और जब तक हम बेकार ही भौंकते रहेंगे, शक्ति व्यय होगी। और जब शक्ति भौंकने में ही व्यय हो जाएगी तो और क्या खाक करोगे? अरे, पिछड़े जा रहे हो! आदमियों तक से पिछड़े जा रहे हो!
कुत्तों को बात तो जंचती, कि बात तो सच है; मगर बेचारे कुत्ते आखिर कुत्ते हैं, बिना भौंके कैसे रहें। एकदम चांद निकल आए और कुत्ते बिना भौंके रह जाएं! सिपाही निकले और कुत्ते बिना भौंके रह जाएं! पोस्टमैन निकले, एकदम खरखरी उठती है। संन्यासी को देख लें... । कुत्ते वर्दी के खिलाफ, बड़े दुश्मन! वर्दीधारी देखा कि फिर उनसे नहीं रहा जाता। फिर सब संयम का बांध टूट जाता है। यम-नियम-प्राणायाम इत्यादि सब भ्रष्ट हो जाते हैं। फिर तो वे कहते, अब देखेंगे कल, अभी तो भौंक लें। अभी तो ऐसा मजा आता है भौंकने में!
मगर यह कुत्ता भी ठीक कहता था। इसको लोग पूजते थे कि यह अवतारी पुरुष है। ऐसा कुत्ता ही नहीं देखा जो खुद तो भौंकता ही नहीं, दूसरों को भी नहीं भौंकने देता। अदभुत है!
ऐसे वर्षों आए और गए और उपदेशक समझाता रहा और सुनने वाले सुनते रहे सिर झुका कर कि अब क्या करें, मजबूरी है, पापी हैं हम! मगर यह आदमी तो बड़ा पहुंचा हुआ है! यह कुत्ता कोई साधारण कुत्ता नहीं। यह तो सीधा आकाश से ही आया है, ईश्वर का ही अवतार होना चाहिए। न भौंके। कभी नहीं किसी ने उसको भौंकते देखा। उसका आचरण बिल्कुल शुद्ध था, विचार के बिल्कुल अनुकूल था। जैसा बाहर वैसा भीतर। संतों में उसकी गिनती थी।
लेकिन एक रात कुत्तों ने तय किया कि अपना गुरु कितना समझाता है और अब उसका बुढ़ापा भी आ गया है, एक दफा तो अपन ऐसा करें कि एक रात तय कर लें। अमावस की रात आ रही है कल। कल रात चाहे कुछ भी हो जाए, कितनी ही उत्तेजनाएं आएं और शैतान कितना ही हमारे गले को गुदगुदाए, कि कितने ही निकलें पुलिस वाले और सिपाही और संन्यासी, मगर हम आंख बंद किए, अंधेरी गलियों में छिपे हुए, नालियों में दबे हुए पड़े रहेंगे। एक दफा तो अपने गुरु को यह भरोसा आ जाए कि हमने भी तेरी बात सुनी और मानी।
गुरु निकला शाम से, जो उसका काम था कि कोई मिल जाए कुत्ता भौंकते हुए
और वह पकड़े, दे उपदेश, पिलाए वही घोंटी। मगर कोई न मिला, बारह बज गए, रात हो गई आधी, सन्नाटा छाया हुआ है! सदगुरु बड़ा परेशान हुआ। उसने कहा, हरामजादे गए कहां! कमबख्त! कोई मिलता ही नहीं।
वह तो बेचारा समझा-समझा कर अपनी खुजलाहट निकाल लेता था। आज समझाने को
भी कोई न मिला। एकदम गले में खुजलाहट उठने लगी। जब कोई कुत्ता न दिखा और सब कुत्ते नदारद, तो पहली दफा उसकी नजर सिपाहियों पर गई, पोस्टमैनों पर गई, संन्यासी चले जा रहे! बड़े जोर से जीवन भर का दबा हुआ एकदम उभर कर आने लगा। बहुत रोका, बहुत संयम साधा, बहुत राम-राम जपा, मगर कुछ काम न आए। नहीं रोक सका, एक गली में जाकर भौंक दिया।
उसका भौंकना था कि सारे गांव में क्या भुकभाहट मची, क्योंकि बाकी कुत्तों ने सोचा कोई गद्दार दगा दे गया। जब एक ने दगा दे दिया, हम क्यों

पीछे रहें? अरे, हम नाहक दबे-दबाए पड़े हैं! सारे कुत्ते भौंकने लगे। ऐसी भौंक कभी नहीं मची थी। और सदगुरु वापस लौट आया! तीर्थंकर वापस आ गया! उसने कहा, अरे कमबख्तो! कितना समझाया, मगर नहीं, तुम न मानोगे। तुम अपनी जात न बदलोगे। तुम्हारा रोग न जाएगा। फिर भौंक रहे हो। इसी भौंकने में कुत्ते की जातियों का ह्नास हुआ। इसी में हम बरबाद हुए। नहीं तो आज आदमी के गले में पट्टे बांध कर घूमते होते। आ गया कलियुग! क्यों भौंक रहे हो?
फिर बेचारे कुत्ते पूंछ दबा कर चले कि क्या करें! परमहंस देव, क्या करें! छूटता ही नहीं। आज तो बहुत पक्का कर लिया था छोड़ने का, लेकिन कोई गद्दार दगा दे गया। पता नहीं कौन गद्दार है, किस धोखेबाज ने, किस बेईमान ने भौंक दिया!
तुम जो यह कह रहे हो कि समस्याओं के रहते प्रेम विलास ही होगा न! समस्याएं तो सदा रहेंगी। कुत्ते हैं तो भौंकेंगे। आदमी है तो समस्याएं खड़ी होंगी। हां, तुम न रहोगे, समस्याएं रहेंगी। समस्याएं शाश्वत हैं। तुम अभी हो, अभी नहीं। अभी नहीं थे, अभी फिर नहीं हो जाओगे। तुम इन समस्याओं में अपना समय खराब न करो।
और समस्याएं तुम क्या हल कर लोगे? और समस्याएं हल करने का प्रेम के अतिरिक्त और क्या उपाय है? ये समस्याएं ही इसीलिए हैं कि इतनी घृणा है। ये समस्याएं इसीलिए हैं कि इतनी हिंसा है। ये समस्याएं इसीलिए हैं कि इतना द्वेष है, इतनी ईर्ष्या है। और तुम प्रेम से ही बच रहे हो! और तुम कह रहे हो कि प्रेम तो विलास ही होगा न!
और तुम कहते हो, मैं एक कवि हूं।
पता नहीं किस तरह के कवि हो! नाम से तो मारवाड़ी मालूम होते हो-- विष्णुदास राठी। मारवाड़ी और कविता में कोई संबंध है? करते होओगे कविता कुछ इस तरह कीः

कूटनीति मंथन करी, प्राप्त हुआ यह ज्ञान,
लोहे से लोहा कटे, यह सिद्धांत प्रमान।
यह सिद्धांत प्रमान, जहर से जहर मारिए
चुभ जाए कांटा, कांटे से ही निकालिए।
कहें काका कवि, कांप रहा क्यों रिश्वत लेकर
रिश्वत पकड़ी जाए छूट जा रिश्वत देकर।
मारवाड़ी हो, और क्या करोगे? अरे, कांपना क्या? रिश्वत में पकड़े गए, रिश्वत दो और बाहर निकलो!

छात्रों से कहने लगे, दादा ऊधम सिंग,
मजा किरकिरा हो गया, बंद हुई रैगिंग।
बंद हुई रैगिंग, समझ में बात न आई,
एक वर्ग रह गया, उसे क्यों बख्शा भाई?
खतरे में भोले-भाले पतियों की लाइफ,
बेचारों की डेली रैगिंग करती वाइफ।
कहें काका, सरकार! रहम हम पर भी खाओ
पत्थर-हृदय काकियों पर प्रतिबंध लगाओ।
कविता क्या करते होओगे तुम? जब तुम प्रेम से ही डर रहे हो तो तुम्हारी कविता में और क्या होगा? माना कि समस्याएं हैं, निश्चित समस्याएं हैं। लेकिन समस्याओं के कारण प्रेम तो नहीं छोड़ा जा सकता।
और यह भी सच है कि प्रेम विलास है। इस जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, सभी विलास है। फूल भी विलास हैं, और चांद-तारे भी विलास हैं। लेकिन क्या चाहते हो समस्याएं ही समस्याएं बचें, न फूल बचें, न पक्षी गीत गाएं, न कोयल पुकारे, न पपीहा गीत गाए, न मोर नाचे, न मोर के पंख हों, न आकाश में इंद्रधनुष उगें, न सूर्योदय का आनंद, न सूर्यास्त का सौंदर्य, न चांद-तारों से भरा हुआ आकाश। यह सब विलास ही तो है समस्याओं से भरे जगत में। क्या चाहते हो आकाश में सिर्फ अखबारों की सुर्खियां छपी हुई मिलें, कि जहां देखो वहीं हत्याएं, जहां देखो वहीं रिश्वत, जहां देखो वहीं बलात्कार,

कि जहां देखो वहीं कुछ उपद्रव। अखबार पढ़ने से जी नहीं भरता विष्णुदास राठी?
माना कि समस्याएं हैं और समस्याएं जरूर मुश्किल खड़ी करती हैं, प्रेम करना मुश्किल हो जाता है। लेकिन पहली तो बात यह है कि प्रेम तुम्हारे जीवन में है? तुम कहते हो, मैं सबको प्रेम बांटना चाहता हूं। बांटने के पहले होना भी तो चाहिए। नहीं तो हालत हो जाए यूं कि नंगा नहाए, निचोड़े क्या? मैंने सुना, एक नंगा नहाता ही नहीं था। तब यह कहावत बनी। लोगों ने पूछा, भई नहाते क्यों नहीं?
उसने कहा, नहा तो लूं, लेकिन निचोडूंगा कहां? और कपड़े कहां सुखाऊंगा? कपड़े थे ही नहीं जिनके सुखाने की चिंता में वह नहाता नहीं था।
तुम कह रहे हो, सबको प्रेम बांटना चाहता हूं। लेकिन बांटोगे क्या खाक? खाक ही बांटो, विभूति नाम रख दो! प्रेम होना भी तो चाहिए। और प्रेम बिना ध्यान के नहीं होता। लोग सिर्फ इस ख्याल में जीते हैं कि प्रेम है। और तभी तो समस्याएं पर्याप्त हो जाती हैं प्रेम को मारने में। वह नोन-तेल-लकड़ी, समस्याओं की दुनिया आई कि प्रेम मरा। प्रेम बचता नहीं इसीलिए कि वस्तुतः पहले से ही नहीं था, सिर्फ ख्याल था।

मुझसे पहली-सी मोहब्बत मेरी महबूब न मांग!
मैंने समझा था कि तू है तो दरख्शां है हयात,
तेरा गम है तो गमे-दहर का झगड़ा क्या है!
तेरी सूरत से है आलम में बहारों को सबात
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है!
तू जो मिल जाए तो तकदीर निगूं हो जाए
यूं न था, मैंने फकत चाहा था यूं हो जाए। मुझसे पहली-सी मोहब्बत मेरी महबूब न मांग! और भी दुख हैं जमाने में मोहब्ब्त के सिवा, राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा, अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्म रेशमो-अतलसो-कमख्वाब के बुनवाए हुए जा-ब-जा बिकते हुए कूचा-ओ-बाजार में जिस्म खाक में लिथड़े हुए, खून में नहलाए हुए। जिस्म निकले हुए अमराज के तन्नूरों से, पीप बहती हुई गलते हुए नासूरों से।
मुझसे पहली-सी मोहब्बत मेरी महबूब न मांग।
लौट जाती है उधर को भी नजर, क्या कीजै?
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न, मगर क्या कीजै?
और भी दुख हैं जमाने में मोहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
मुझसे पहली-सी मोहब्बत मेरी महबूब न मांग।
माना कि समस्याएं हैं, माना कि दुख हैं, माना कि तकलीफें हैं, लेकिन ये सदा से हैं और ये सदा रहेंगी। इस कारण प्रेम से अपने को बचा लेना खतरनाक है, महंगा है। क्योंकि जो प्रेम से बचा वह प्रार्थना से बच जाएगा। क्योंकि प्रार्थना प्रेम के ही फूल की सुगंध है। और जो प्रार्थना से बचा वह क्या खाक परमात्मा को समझ पाएगा! क्योंकि उस सुगंध में ही परमात्मा का पहला अनुभव होता है।
रहने दो समस्याएं। प्रेम की धारा तो बहने दो। प्रेम की धारा समस्याओं
को मिटाने में सहयोगी होगी। बिल्कुल मिटा देगी, ऐसा तो नहीं। हां, नया तल देगी, नया आयाम देगी। और ख्याल रखना सदा, नीचे तल की समस्याओं से ऊंचे तल की समस्याएं बेहतर होती हैं। जैसे मैं यह पसंद करूंगा कि आदमी को शरीर की समस्याएं न रह जाएं, मिट सकती हैं, क्योंकि अब विज्ञान पर्याप्त है। आदमी की शरीर की समस्याएं मिट सकती हैं, लेकिन तब मन की समस्याएं खड़ी होंगी। लेकिन भारतीय तथाकथित साधु-संत जो सारी दुनिया में चक्कर मारते फिरते हैं, और सारी दुनिया को अध्यात्म का उपदेश देते फिरते हैं--पता नहीं इनको किसने यह ठेका दिया है, इनको यह वहम है कि भारत को सारी दुनिया का

सदगुरु होना है--तो ये दुनिया में यह कहते फिरते हैं कि हमारा देश गरीब है, लेकिन फिर भी वहां पागलपन कम होता है। हमारा देश गरीब है, लेकिन लोग मानसिक तनाव से पीड़ित नहीं हैं।
इन पागलों को पता नहीं कि मानसिक तनाव और पागलपन और विक्षिप्तता और आत्मघात भूख से बड़ी समस्याएं हैं, ऊपर की समस्याएं हैं। पहले पेट तो भरा हो, तब आदमी के मन में तनाव हो सकता है। अभी पेट ही तना हो तो मन में कहां से तनाव होगा? अभी पेट ही भूखा हो तो मन की चिंताएं कैसे हो सकती हैं?
और जब मन की भी सारी समस्याएं हल हो जाती हैं तो और नई समस्याएं खड़ी होंगी, और बड़ी--आत्मा की समस्याएं, अस्तित्व की समस्याएं, जीवन के अर्थ की समस्याएं। समस्याओं की ऊंचाई सभ्यता की ऊंचाई बताती है। समस्याओं की नीचाई सभ्यता की नीचाई बताती है। भारत बहुत नीचे तल पर जी रहा है। लेकिन हम बड़े होशियार हैं।
और विष्णुदास राठी, तुम तो मारवाड़ी हो, तो मारवाड़ी की ही भाषा समझोगे।
यह चंदूलाल मारवाड़ी का अपनी प्रेमिका गुलाबो को लिखा हुआ पत्र तुम्हारे सामने निवेदन करता हूं। तेरह सूत्रीय पत्र है--
मेरी इकलौती हृदय की देवी गुलाबो, जैसी कि तुम्हें खबर होगी ही कि हर साल की तरह इस साल भी हमारी सरकार ने देश की गौरवमयी परंपरा का पालन करते हुए सभी आवश्यक एवं अनावश्यक वस्तुओं की कीमतें बढ़ा दी हैं, इसलिए ऐ मेरी जान से प्यारी सोने की बुलबुल, तुझे यह समाचार लिखते हुए मेरे कलेजे में छुरा-सा चुभ रहा है कि आगे से मैं तुझे अब बहुत कम पत्र लिख पाऊंगा, क्योंकि डाक-दरों में हुई वृद्धि से मेरा प्रेम-पत्र लिखने का उत्साह लगभग पूर्णतः ठंडा हो गया है। अतः भविष्य में पत्रों के नाम पर केवल व्यापार-संबंधी काम-काजी चिट्ठियां ही लिखा करूंगा। लेकिन फिर भी मान लो कभी साल, दो साल में अथवा जन्म-जन्मांतरों में कोई अत्यंत जरूरी कारण आ बना तो भले ही कितने भी पैसे खर्च हो जाएं फिक्र नहीं, लिफाफा अंतर्देशीय न सही, पोस्टकार्ड ही हो, मगर सच कहता हूं तुम्हें लव-लेटर अवश्य लिखूंगा। यद्यपि स्थानाभाव के कारण मैं ऐसी बहुत-सी बातें न लिख पाऊंगा जो मैं अब तक डाक की दरें सस्ती होने के कारण मुहब्बत की फिजूलखर्ची के रूप में लिखता रहा हूं। अतः तुमसे प्रार्थना है कि मेरी मजबूरियों को ध्यान में रखते हुए उन बहुत-सी अलिखित बातों को, ऐ मेरी समझदार सपनों की रानी, तुम लिखा हुआ ही समझ लेना! वे बहुत-सी बातें इस प्रकार हैं; इस बार आखिरी बार लिखे दे रहा हूं, क्योंकि अभी डाक की दरें वही की वही पुरानी हैं। एक तारीख से बदलाहट होने वाली है।
पहलीः पत्र के प्रारंभ में प्राण प्यारी, हृदय सम्राज्ञी, या दिल की रानी जैसे निरर्थक संबोधन लिखकर पोस्टकार्ड में व्यर्थ जगह न भरूंगा। लिखूं दिल की रानी और निकले आंखों से पानी, यह ठीक नहीं।
दूसरीः प्रेम, प्यार, नमस्कार, चुंबन आदि बेमतलब शब्द अनावश्यक स्थान घेरते हैं, अतः आने वाले समय में इन शब्दों का उपयोग कतई न किया जाएगा। तीसरीः अत्र कुशलम तत्रास्तु लिखना तो इस युग में बेवकूफी ही है। भला
इस महंगाई के जमाने में कोई कैसे सकुशल रह सकता है! "आशा है तुम भी सपरिवार कुशलतापूर्वक होओगी"--मान लो मैं यह लिखूं और तुम्हारे यहां किसी को बुखार चढ़ा हो तो सोचो फिर तुम पर क्या गुजरेगी? इसलिए अब मेरी चिट्ठियों में तुम ऐसी बेहूदी बकवास लिखी हुई न पाओगी।
चौथीः "तुम्हारा पत्र मिल गया, धन्यवाद" या "मेरा पिछला पत्र तुम्हें मिल चुका होगा" जैसी आकाश-कुसुम बातें लिखने में भी अब मेरा विश्वास नहीं रहा है, क्योंकि ऐसा करना भारतीय डाक-तार विभाग के साथ गद्दारी करना होगा, जो मेरे जैसा देश-भक्त नागरिक कभी नहीं चाहेगा। हां, कभी जरूरी हुआ तो "पांच साल पहले का लिखा हुआ तुम्हारा प्रेम-पत्र प्राप्त हुआ" ऐसा एकाध वचन अवश्य लिख दिया करूंगा।
पांचवींः "तुम्हारी बहुत याद आती है" जैसे वाक्य लिखने का जोखिम भी भविष्य में नहीं लूंगा, क्योंकि इधर मैं लिखूं कि विरह-अग्नि में जला जा रहा हूं और उधर याद के साथ तुम खुद भी चली आओ तो इस महंगाई के जमाने में बतौर मुहावरा मेरा तो दिवाला ही निकल जाएगा।

छठवींः "अपने स्वास्थ्य का ख्याल रखना" जैसी उपदेशात्मक बातें लिख कर मैं अपने पत्र को स्वास्थ्य विज्ञान की पोथी नहीं बनाना चाहता। वैसे भी जो सलाह मैं तुम्हें देता हूं तुम कभी मानती नहीं, बल्कि और भी उलटी-उलटी चलती हो। अतः यदि मैं तुम्हें सेहत का ख्याल रखने का मशविरा दूं और वहां तुम अपनी सेहत बिगाड़ने पर तुल जाओ तो परिणाम उलटा ही निकलेगा। इस कारण लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट की जानकारी रखने वाला तुम्हारा यह मनोवैज्ञानिक प्रेमी चंदूलाल मारवाड़ी अब कभी तुम्हारे लिए शुभकामनाएं करने का कष्ट न करेगा। सातवींः भविष्य में प्रेम-व्रेम की चर्चा नहीं होगी, क्योंकि मैं पहले ही बता चुका हूं कि लिफाफे की जगह पोस्टकार्ड का उपयोग करूंगा और मैं नहीं चाहता कि मेरे दिल के गहन भावों को और हृदय के उदगारों को हर कोई ऐरा- गैरा नत्थू-खैरा सड़क-छाप पोस्टमैन पढ़े अथवा तुम्हारे घर के लोग पढ़कर नाजायज फायदा उठावें।
आठवींः "शेष तुम स्वयं समझदार हो" जैसी बात लिख कर मिथ्यावाद को प्रोत्साहन देने में भी मेरी रुचि अब नहीं। अतः मेरे अगले पत्रों में इस तरह की कोई भी बेसिर-पैर की बात तुम्हें न मिलेगी।
नौवींः "अब समाप्त करता हूं" लिखना मुझे बहुत अखरेगा। अरे, पत्र में जगह न बचने पर पत्र को अगर समाप्त न करूंगा तो भला क्या करूंगा? क्या शुरू करूंगा? फिर ऐसी बात लिखने में तुक ही क्या है?
दसवींः "पत्रोत्तर देना" यह लिखना मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई किसी को खाने पर बुला कर अगले दिन उसके घर पहुंच जाए और कहे, कल हमने तुम्हें खाना खिलाया था, अब तुम हमें खिलाओ। अतः ऐसे वाक्य भी अब कभी न लिखूंगा। तुम्हारी इच्छा हो तो खाने पर बुलाना, वरना कोई जबरदस्ती नहीं है। मैं एक खानदानी मारवाड़ी हूं, कोई भुखमरा नहीं।
ग्यारहवींः पत्र के अंत में तुम्हारा प्रेमी, तेरा प्यारा या बस सिर्फ तेरा जैसे बेमतलब के शब्दों के प्रयोग का भी मुझे कोई औचित्य नजर नहीं आता। जब शुरू में ही दिल की रानी नहीं लिखा तो अब यह कैसी औपचारिकता? नीचे दस्तखत की भी अब कोई जरूरत नहीं। मेरी सड़ियल खाते-बही वाली मुनीम-छाप लिखावट से तुम खुद ही समझ जाओगी कि खत किसका है।
बारहवीं महत्वपूर्ण बातः कि पोस्टकार्ड पर कभी टिकट न चिपकाऊंगा। अरे, जब मैंने स्याही खर्च करके और पेन की निब घिसकर इतना प्रेम प्रकट किया, तो क्या तुम मेरी बैरंग चिट्ठी छुड़ा कर कुछ अपनी मुहब्बत का प्रदर्शन न करोगी?
तेरहवीं और अंतिम बातः ख्याल रखना, यदि जगह बची तो पता लिखूंगा, वरना पता न लिखने के लिए माफी मांग लूंगा।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
आठवां प्रवचन

आपने आपनूं समझ पहले

पहला प्रश्नः ओशो, संत बुल्लेशाह ने आत्म-परिचय पर जोर देते हुए इस प्रकार गाया है--
आपने आपनूं समझ पहले, कि वस्त है तेरड़ा रूप प्यारे।
बाझ अपने आपदे सही कीते, रहियों विच विश्वास दे दुख भारे।
होर लख उपाओ न सुख होवे, पुछ वेख सियानने जग सारे।
सुख रूप अखेड़ चेतन है तू, बुल्लाशाह पुकार दे वेद सारे।
अर्थात हे प्यारे, पहले अपने आप को समझ कि तेरा यह रूप क्या है, किसलिए है?
बिना अपने आप की पहचान किए विश्वासों में जीना भारी दुख है।
और लाख उपाय करो, सुख न होगा, सारे जगत के सयाने लोगों से पूछ कर देख ले।
सुख-रूप तो केवल तेरा चैतन्य है, बुल्लेशाह कहते हैं कि समस्त वेद यही पुकारते हैं।
ओशो, बुल्लेशाह की इस काफी पर कुछ कहें।

विनोद भारती, जीवन को जानने वाले लोग जगत में बहुत थोड़े-से हुए हैं-- इतने थोड़े कि अंगुलियों पर गिने जा सकें। अधिकतर लोग तो तोतों की भांति बासे और उधार ज्ञान को दोहराते रहते हैं। उन अभागे लोगों को यह भी पता नहीं चलता कि वे जो कह रहे हैं उनका अपना नहीं है। और जो अपना नहीं है। वह है ही नहीं, सिर्फ उसकी भ्रांति है।
सत्य का तो स्वाद लेना होता है। सत्य तो अमृत है। पीओ तो जानो। अमृत शब्द के संबंध में कितना ही समझ लो, न प्यास बुझेगी, न जीवन में वसंत आएगा, न शाश्वत के फूल खिलेंगे, न आनंद की वर्षा होगी। नहीं कोई दीया जलेगा ज्योति का। नहीं बंधन कटेंगे। वरन बंधन और मजबूत हो जाएंगे। अज्ञान के बंधन इतने मजबूत नहीं, लेकिन थोथे ज्ञान के बंधन बहुत मजबूत होते हैं। अज्ञानी तो कभी भूले-चूके से परमात्मा तक पहुंच भी जाए, तथाकथित ज्ञानियों की कोई संभावना नहीं।
मैंने सुना है, एक पंडित मरा और स्वर्ग पहुंचा। जिस दिन वह मरा उसी दिन एक अदभुत फकीर भी मरा था। रहा होगा बुल्लेशाह जैसा। दोनों एक ही साथ स्वर्ग के द्वार पर पहुंचे। पंडित का तो बहुत स्वागत किया गया, बैंड-बाजे बजे, फूल बरसाए गए, स्वर्ग के सारे देवी-देवता आरती उतारे। फकीर खड़ा एक कोने में यह सब देखता रहा। थोड़ा हैरान भी हुआ। इस पंडित को भलीभांति जानता था। यह तो निपट पोपट था। इसने जाना तो कभी कुछ था नहीं। लेकिन, यद्यपि अपनी आंखों पर भरोसा न आ रहा था, लेकिन बात तो हो ही रही थी। फिर भी सोचा शायद यह स्वर्ग का नियम ही हो कि जो भी आए उसका स्वागत हो।
जब पंडित प्रवेश कर गया और फकीर के प्रवेश का समय आया तो न तो बैंड-बाजे बजे, न फूल झरे, न देवी-देवताओं ने आरतियां उतारीं, न जय-जयकार हुआ। ऐसे ही भीतर ले लिया, जैसे कोई धर्मशाला में ठहरने आया हो। अब तो और भी ज्यादा चौंका। उसने पहरेदार से पूछा कि क्या एक जिज्ञासा कर सकता हूं? पंडित का तो इतना स्वागत, जिसे मैं जानता हूं कि निपट थोथा था। कुछ मुझे स्वागत की आकांक्षा नहीं है कि मेरे लिए बैंड-बाजे बजें। कुछ इसकी पीड़ा भी नहीं है कि क्यों नहीं बजे। सिर्फ जिज्ञासा है कि यह राज क्या है? पहरेदार हंसने लगा। उसने कहा, राज कुछ भी नहीं। राज सीधा और साफ है। तुम जैसे फकीर तो हमेशा स्वर्ग आते रहे, यह तो तुम्हारा घर है। लेकिन पंडित यह पहली दफा आया है। कैसे आ गया, हम भी चकित हैं। और फिर कभी आएगा इस तरह का पंडित, इसकी कोई आशा नहीं। दफ्तर की कोई भूल-चूक होगी। इसलिए स्वागत का यह मौका छोड़ देना उचित नहीं है। कभी आया नहीं; कभी आएगा इसकी संभावना नहीं। यह पहला मौका है। तुम जैसे फकीर तो सदा आते रहे, सदा आते रहेंगे।

ज्ञान की जंजीरें महंगी हैं, भारी हैं। क्यों? क्योंकि ज्ञान अहंकार
को भरता है। ज्ञान की जंजीरें यूं हैं जैसे किसी ने सोने की जंजीरें बना ली हों, हीरे-जवाहरात जड़ दिए हों। इतनी बहुमूल्य हैं कि छोड़ने का मन ही नहीं होता, तोड़ने का सवाल ही नहीं उठता। इतनी प्यारी हैं कि कोई जंजीरें कहे उन्हें तो नाराजगी पैदा होती है। हम तो उन्हें आभूषण मानते हैं। वे तो हमाराशृंगार हैं। तो जिसे तुमने अपनाशृंगार समझा उसे कैसे छोड़ोगे? और जिसे तुमने मंदिर समझा, अगर कारागृह है, तो तुम उससे क्यों निकलोगे? अज्ञान अहंकार को नहीं भरता, पांडित्य अहंकार को भरता है। इसलिए अज्ञानी होना ज्यादा सौभाग्यशाली! क्योंकि अज्ञान तो काटता है, चुभता है कांटे की भांति। लगता है कैसे छूटूं, कब छूटूं, क्यों इतनी देर हुई जाती है? तथाकथित पांडित्य को, थोथे ज्ञान को तो आदमी छाती से लगाता है कि कोई चुरा न ले, कोई छीन न ले, कहीं खो न जाए, कहीं भूल न जाऊं।
पंडित तो बहुत हुए और पंडित बहुत हैं और पंडित बहुत होते रहेंगे, क्योंकि पांडित्य सस्ता है, मुफ्त मिलता है। चार किताबें जुड़ा लीं कि पंडित हो जाते हो। थोड़ी सूचनाएं इकट्ठी कर लीं कि जानने का दंभ पैदा हो जाता है। जाना कुछ भी नहीं, सिर्फ माना है। और ध्यान रखना, मानना जानना नहीं है। मानता तो अंधा आदमी भी है कि रोशनी है। लेकिन मानता ही है, जानता नहीं। मानता तो बहरा भी है कि संगीत होता है, कि कोयल कूकती है, कि सुबह पक्षी गीत गाते हैं, मगर मानता है। स्वर तो कभी उसके कानों तक पहुंचे नहीं।
पंडित अंधा है, बहरा है, गूंगा है, संवेदनशून्य है। पंडित यूं समझो कि मुर्दा है। इतनी किताबें उसके चारों तरफ इकट्ठी हो गई हैं कि उन्हीं किताबों ने उसकी कब्र बना दी है। और किताबों से जितनी अच्छी कब्र बनती है उतनी किसी और चीज से नहीं बनती। लेकिन जिन्होंने जाना है वे बहुत थोड़े-से लोग हुए।
बुल्लेशाह उन थोड़े-से लोगों में एक हैं। बुल्लेशाह की यह काफी प्यारी है। इस काफी को काफी की तरह ही चुस्कियां लेना। यह गरम-गरम है और ताजी है। यह जीवंत स्रोत से आई है। जीवंत स्रोत से जब भी कोई चीज आती है तो अगर आंखें हों तो पहचानने में देर नहीं लगती। इसका एक-एक शब्द प्यारा है। सबसे पहले तो बुल्लेशाह तुम्हें संबोधित करते हैं तो कहते हैं-- प्यारे!
आपने आपनूं समझ पहले, कि वस्त है तेरड़ा रूप प्यारे।
सच्चा गुरु गुरु नहीं होता, मित्र होता है; शिष्य से ऊपर नहीं होता, शिष्य का संगी-साथी होता है; शिष्य को छाती लगाता है। शिष्य भला उसके पैर छुए, यह शिष्य की तरफ से उचित, लेकिन गुरु की तरफ से अनुचित। गुरु तो उसे अपना प्रिय मानता है।
लेकिन तथाकथित मिथ्या गुरुओं ने दंभ के ऐसे सिंहासन बनाए हैं कि उनके समक्ष खड़े होओ तो कीड़े-मकोड़े मालूम होओगे। हालांकि तुम्हें कीड़े-मकोड़े सिद्ध करने की उनकी तरकीबें इतनी सूक्ष्म हैं, इतनी बारीक हैं कि शायद तुम पकड़ भी न पाओ। तुम जो कुछ कर रहे हो, सबकी निंदा। तुम जो कर रहे हो, उस सबसे तुम सिर्फ अपने नरक का मार्ग तय कर रहे हो। तुम्हारे भीतर जो है, सब गलत। तुम्हारे जीवन की सारी चर्या भ्रांत। तुम पशु हो। तुमको क्या मिथ्या गुरु प्यारे के संबोधन से पुकारेंगे!
विवेकानंद ने अमरीका में हो रहे विश्व धर्म सम्मेलन में जो सबसे महत्वपूर्ण बात कही थी, वह शायद तुम्हारी समझ में भी न आए। जिस बात से उनको सम्मान मिला वह यूं बड़ी साधारण बात थी। यहां तो हर कोई कहता है। यहां तो हर नेता भाषण देता है तो वही कहता है। लेकिन उनके पहले जो और बहुत-से पादरी और पुरोहित और पंडित बोले थे, उनकी पृष्ठभूमि में विवेकानंद का उदघोषण, विवेकानंद का संबोधन लोगों के हृदय को छू गया।
और विवेकानंद कोई पहुंचे हुए व्यक्ति नहीं थे। कोई सिद्ध पुरुष नहीं थे। हां, एक सिद्ध पुरुष के चरणों में जरूर बैठे थे। उन्हीं चरणों की कुछ धूल बटोर ली थी। लेकिन वह धूल स्वर्ण से भी बहुत बहुमूल्य थी। विवेकानंद जब बोलने को खड़े हुए अमरीका की उस विशाल सर्व धर्म सभा में तो उनके पहले संबोधन पर ही सारे लोग खड़े हो गए और मिनटों तक तालियों पर तालियां बजती

रहीं। उनका बोलना मुश्किल हो गया। उन्होंने ऐसी क्या बात कह दी थी? उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा था--भाइयो एवं बहनो! ब्रदर्स एंड सिस्टर्स! यह तो इस देश के गधे से गधे नेता कह रहे हैं। हालांकि जब कोई नेता तुमसे भाइयो एवं बहनो कहे तो फौरन उसे रोकना कि चुप, उल्लू के पट्ठे, हम को भी अपने में गिने ले रहा है! होंगे उल्लू के पट्ठे तेरे भाई और बहन! जा गधों की सभा में बोल! आदमियों को भाइयो और बहनो कहते हुए शर्म नहीं आती? अरे, चुल्लू भर पानी में डूब मर बदतमीज! कमबख्त! हमीं मिले तुझे भाई और बहन कहने को? इतने निकट के नाते-रिश्ते बना रहा है!
लेकिन विवेकानंद का यह सीधा-सादा संबोधन... उन्होंने तो सोचा भी नहीं था। यह तो इस मुल्क की आदत है--भाइयो एवं बहनो। लेकिन वे जो पादरी और पुरोहित पहले बोले थे, उनका तो ढंग हमेशा यह होता है कि हम पवित्र, तुम अपवित्र; हम पुण्यात्मा, तुम पापी; हम स्वर्ग के यात्री, तुम नरक के यात्री; हममें तुममें क्या लेना-देना! वे आसमान से बोलते हैं, बदलियों से बोलते हैं। और तुम कहां जमीन पर रेंगते हुए कीड़े-मकोड़े! तो जब विवेकानंद ने भाइयो एवं बहनो कहा, वह तो सिर्फ आदतवश कहा, वह तो भारतीय शैली थी, लेकिन लोग एकदम खड़े हो गए; लोग रुकें ही न, तालियों पर तालियां पिटीं। विवेकानंद खुद ही चौंके कि अभी तो मैंने कुछ कहा ही नहीं। अभी तो बात ही शुरू की थी। यह तो बाद में ही उन्हें ख्याल आया कि लोगों को इतनी-सी बात इतनी गहरी क्यों उतर गई, इतनी मार्मिक क्यों हो गई!
लेकिन भाइयो एवं बहनो से भी काम नहीं चलता। वह औपचारिक है। बुल्लेशाह कहते हैंः प्यारे। वे जो संबंध जोड़ते हैं, भाई और बहन का नहीं; भाई और बहन का संबंध तो पारिवारिक है। जरूरी नहीं कि प्रेम का हो। अब बहन तुम्हारी कितनी ही कुरूप हो, असुंदर हो, लूली हो, लंगड़ी हो, तो भी बहन है। और भाई तुम्हारा कैसा ही बुद्धू हो तो भी भाई है। वह संबंध तुमने निर्णीत नहीं किया है। वह संबंध तो सांयोगिक है। नदी-नाव संयोग है। यह संयोग की बात है कि तुम भी उसी मार्ग से आए हो जिससे वह आया है--उसी मां से, उसी पिता से। और तो क्या नाता है? और तो क्या संबंध है? खून का भी कोई नाता होता है? लोग कहते हैंः खून का नाता पानी से बहुत गाढ़ा होता है। गाढ़ा भला होता होगा, मगर खून का भी कोई नाता होता है? नाता तो तब होता है जब स्वेच्छा से चुना जाता है।
बुल्लेशाह ने कहाः प्यारे।
गौतम बुद्ध ने कहा है, जब मैं पहली बार अपने पिछले जन्म में एक बुद्ध पुरुष के दर्शन करने को गया तो बहुत चौंका था। झुक कर मैंने उनके चरण छुए थे। और मैं उठ भी न पाया था कि वे झुके और उन्होंने मेरे चरण छुए। मैं तो घबड़ा गया था। मैं तो पसीने-पसीने हो गया था। मेरे तो हाथ-पैर कंप गए थे कि यह क्या हुआ। बुद्ध पुरुष और मेरे चरण छुएं! मैंने उनसे निवेदन किया था कि आप यह क्या कर रहे हैं? यह कैसा बोझ मेरे ऊपर डाल रहे हैं? मैं अपात्र, अयोग्य, साधारण, अज्ञानी; आप महाप्रबुद्ध, ज्योतिर्मय, भागवत-स्वरूप! आप मेरे चरण छुएं! मैं आपके छुऊं, यह समझ में आता है, छूने ही चाहिए। लेकिन आपने मेरे चरण क्यों छुए?
तो उन बुद्ध पुरुष ने हंस कर कहा थाः जिस दिन से मैं बुद्ध हुआ, उस दिन
से मुझे कोई और तो दिखाई पड़ता नहीं, सभी के भीतर वही एक प्यारा दिखाई पड़ता है। और मैं तुझसे कहता हूं कि देर-अबेर की बात है, अगर मैं अभी बुद्ध हो गया तो कल तू बुद्ध हो जाएगा। कल मैं भी बुद्ध नहीं था, आज मैं बुद्ध हो गया। आज तू बुद्ध नहीं है, कल तू बुद्ध हो जाएगा। यह आज-कल का फासला भी तेरे भीतर है, यह हिसाब भी तेरे भीतर है। जो बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया, उसके लिए तो समय मिट जाता है। वह तो कालातीत हो जाता है। अब क्या कल और क्या आज! क्या फर्क पड़ता है इस अनंत धारा में? कौन कब जागा, कोई भेद पड़ने वाला है, घड़ी भर पहले कि घड़ी भर बाद? अगर अनंत काल है तो घड़ियों की गिनती क्या, दिनों की गिनती क्या, समय की गिनती क्या? तू फिक्र छोड़। तूने अगर मेरे चरण छुए हैं तो मैं भी तेरे चरण छूता हूं--इसलिए ताकि तुझे याद दिला सकूं कि जो मेरे भीतर है वही तेरे भीतर है। माना कि मेरे भीतर जाग गया है, तेरे भीतर अभी सो रहा है; लेकिन कल मेरे भीतर भी सोता था। यही जो जाग गया है, यही सोता था, रत्ती भर फर्क नहीं है। वही हूं मैं जो कल तक था। लेकिन कल जरा चादर ओढ़ कर

सोया था, आज उठ आया हूं। कल लेटा था, आज खड़ा हो गया हूं। तू भी कब तक लेटा रहेगा और सोया रहेगा! जल्दी ही वह घड़ी आ जाएगी, तू भी यह चादर फेंक देगा और इस तंद्रा के बाहर आ जाएगा। जब याद तुझे आए जागने के बाद तो भूलना मत कि मैंने तेरे चरण छुए थे।
और बुद्ध को जब ज्ञान हुआ--एक जन्म के बाद--तब वे हंसे और उन्होंने कहा
कि ठीक कहा था उस बुद्ध पुरुष ने। अब मैं देख सकता हूं कि जो अपने को सोया समझ रहे हैं, वे भी मेरे लिए सोए हुए नहीं हैं। क्योंकि जो मेरे भीतर है वही उनके भीतर है। एक ही प्यारे का वास है। वही एक प्रीतम सभी के भीतर श्वासें ले रहा है। वही फूलों में खिला है, वही चांद-तारों में रोशन है। वही तुम्हारे भीतर कभी सोया कभी जागा, कभी उठा कभी बैठा, कभी चला, कभी चुप कभी मौन, कभी गीत गाता है, कभी नाचता है। लेकिन एक ही है।
उस एक की स्मृति दिलाने के लिए बुल्लेशाह कहते हैंः
आपने आपनूं समझ पहले, कि वस्त है तेरड़ा रूप प्यारे।
"प्यारे, तेरा रूप क्या? सबसे पहले अपने आप को समझ।"
इस सूत्र में कुछ और बातें भी थोड़ी खोद कर देख लेनी जरूरी हैं। आपने आपनूं समझ पहले! खुद को खुद से जान। आपने आपनूं समझ पहले। खुद को खुद से जान!
यूं तो हम सभी जानते हैं, मगर हमारा जानना उधार है। कौन नहीं जानता! कम
से कम इस देश में तो हरेक व्यक्ति जानता है। पान वाले से लेकर प्रेसिडेंट तक प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि सबके भीतर आत्मा है, चेतना है; शरीर मरता है, आत्मा थोड़े ही मरती है। मगर इसको जानना मत समझ लेना। सुना है तुमने, और इतनी बार सुना है कि सुनते-सुनते भूल ही गए कि तुम जानते नहीं। इतनी बार दोहराई गई है यह बात सदियों-सदियों में, इसका संस्कार गहरा हो गया है। यह सिर्फ संस्कार है, यह ज्ञान नहीं। और संस्कार ज्ञान में बाधा होते हैं। संस्कार से बड़ी बात ज्ञान में और कोई बाधा नहीं बनती। क्योंकि तुम जानने के पहले ही मान बैठते हो कि जानता हूं, तो फिर जानने की जरूरत नहीं रह जाती। क्यों खोजें? किसलिए खोजें? हमें तो पता ही है।
इसलिए भारत में जैसा गहन अंधकार है और जैसा अज्ञान है और ज्ञान की जिज्ञासा जैसे मर ही गई है, ऐसी दुनिया की किसी और जाति में नहीं है। कारण? हमने अपने सौभाग्य को अपना दुर्भाग्य बना लिया है। हमारे बुद्ध, हमारे महावीर, हमारे कृष्ण, हमारे बुल्लेशाह, हमारे नानक, हमारे कबीर, हमारी मीरा, हमारे चैतन्य--जो कि हमारे जीवन में ज्योति का कारण हो सकते थे--हम मूढ़ों ने उन्हें ही अपने अंधकार की आधारशिलाएं बना लिया है। हम बस उनके भजन दोहरा रहे हैं, हम उनके गीत दोहरा रहे हैं। और हम सोचते हैंः क्या करना है हमें जानकर?
एक बात ख्याल रख लेनाः विज्ञान में एक व्यक्ति जानता है, फिर वह ज्ञान सभी का हो जाता है। अगर न्यूटन ने यह बात खोज ली कि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है, तो अब कोई हर आदमी को खोजने की जरूरत नहीं है। विज्ञान के सत्य आब्जेक्टिव होते हैं, वस्तुगत होते हैं। इसलिए अब छोटा-सा बच्चा भी स्कूल में पढ़ने वाला जानता है कि जमीन में कशिश है, गुरुत्वाकर्षण है। अब किसी हर बच्चे को खोजने की जरूरत नहीं है। न्यूटन को वर्षों लगे, लेकिन बच्चा तो पांच मिनट में समझ लेता है कि चीजें फेंको ऊपर तो अपने आप नीचे की तरफ गिरती हैं, क्योंकि जमीन उन्हें खींच लेती है। अब यह ज्ञान हर आदमी को खोजने जैसा नहीं है। एक ने खोज लिया, सबका हो गया।
लेकिन भीतर के ज्ञान में भेद है। वह आयाम और। वहां तो ज्ञान प्रत्येक
को अपना ही खोजना होता है। अपना ही हो तो जानना कि है। अगर जरा भी संदेह पैदा हो कि यह संस्कार मात्र है, तो सावधान हो जाना, सचेत हो जाना। वह संस्कार को अलग हटा कर रख देना। वह कितना ही प्यारा लगता हो, घातक है, जहर है। उससे सावचेत होना जरूरी है।
खुद को खुद से जान! और फिर देर नहीं लगती जानने में कि तू ही खुदा है। मगर खुद को खुद से जान। आपने आपनूं समझ! यह समझ कोई किसी को दे नहीं सकता। इसका हस्तांतरण नहीं होता है। अगर मैंने जाना, तो लाख उपाय करूं तो भी तुम्हें जना न सकूंगा। अगर मैंने चखा, तो लाख समझाऊं, उसका स्वाद तुम तक नहीं पहुंचा सकूंगा। फिर क्या करते हैं सदगुरु? इशारा करते हैं चांद की

तरफ। और पागल उनकी अंगुलियां पकड़ कर बैठ जाते हैं। अंगुलियों की पूजा चल रही है। कोई जीसस की अंगुली पकड़े है, वह समझता है मैं ईसाई। कोई कृष्ण की अंगुली पकड़े है, वह समझता है मैं हिंदू। कोई बुद्ध की अंगुली पकड़े है, वह समझता है मैं बौद्ध।
यूं अंगुलियां पकड़ने से कुछ भी न होगा, क्योंकि कोई अंगुली चांद नहीं है। और अगर चांद को देखना हो तो अंगुली को छोड़ ही देना पड़ता है, भूल ही जाना पड़ता है। अंगुली की क्या बिसात? जब चांद पर नजर पड़ेगी तो क्या अंगुली को लिए फिरोगे?
तो जिन्होंने धर्म को पहचाना है वे न तो हिंदू होते हैं, न मुसलमान होते हैं, न ईसाई होते हैं, न जैन होते हैं, न सिक्ख होते--हो ही नहीं सकते। यह असंभव है। हां, अंगुलियों को पकड़ा हो तो फिर धर्म हैं, संप्रदाय हैं, उप-संप्रदाय हैं। फिर तो कोई अंत नहीं है। फिर तो पागलपन बंटता जाता है, कटता जाता है, छंटता जाता है, छोटे-छोटे आंगन और उनके भीतर और आंगन, और अपने-अपने कोने पर कब्जा, अपने मंदिर, अपनी मस्जिद, अपने गुरुद्वारे। और फिर झगड़े- फसाद। छोटी-छोटी बातों के झगड़े-फसाद, ऐसी बातों के झगड़े-फसाद कि बच्चे भी हंसें, मगर बूढ़े कर रहे हैं।
महाराष्ट्र के एक गांव में, सिरपुर में--मैं सिरपुर गया था। तो गांव
के लोगों ने बताया कि आज कोई सौ साल से एक मुकदमा चल रहा है। सल्तनत बदल गई, अंग्रेज चले गए, भारत आजाद हो गया, मगर मुकदमे का अंत नहीं होता। शायद कभी होगा भी नहीं। और मुकदमा क्या है? एक मंदिर है। जैनों का मंदिर है। प्रतिमा महावीर की है। लेकिन संप्रदाय दो हैं--श्वेतांबरों का और दिगंबरों का। आज से सौ साल पहले कभी झगड़ा हो गया था। छोटी बात पर झगड़ा हो गया था। झगड़े ही सब छोटी बातों के होते हैं। बड़ी बातों के लिए झगड़ा ही कहां होता है! बड़ी बातों को जो समझ सके, इतना बड़ा हो जाता है कि झगड़ा कहां बचता है! झगड़े ही क्षुद्र के होते हैं।
गांव में एक ही मंदिर था और थोड़े-से ही जैनों के घर थे, दो मंदिर बनाने
की हैसियत भी न थी। तो दोनों संप्रदायों ने मिल कर ही मंदिर बनाया था। लेकिन उनकी पूजा-प्रक्रिया में थोड़ा-सा फर्क है, बहुत ज्यादा फर्क भी नहीं। वही महावीर, वही पूजा, वही मंत्र, वही नमोकार। और उस नमोकार में तुम देखते हो, एक अदभुत सूत्र आता है--णमो लोए सब्ब साहूणम। सब साधुओं को नमस्कार। लेकिन महावीर पर ही झगड़ा हो गया, और साधुओं की तो छोड़ ही दो। श्वेतांबर जब पूजा करते हैं महावीर की तो आंखों को खोल कर पूजा करते हैं। अब पत्थर की मूर्ति, आंखें कैसे खोलोगे? तो नकली आंख ऊपर से चिपका देते हैं। कागज की आंख या कोई भी नकली चीज की आंख--खुली हुई। तो महावीर जो हैं श्वेतांबर हो गए। भीतर आंख बंद ही है, पत्थर की मूर्ति की आंख बंद है, मगर ऊपर से एक आंख चिपका दी तो श्वेतांबर हो गए। और जब दिगंबर आते हैं तो आंख अलग कर दी, तो महावीर दिगंबर हो गए। बस इतना ही भेद है, बाकी सब वही का वही। मगर एक दिन झगड़ा हो गया। झगड़ा यह हो गया कि समय बांटा हुआ था कि बारह बजे तक श्वेतांबर पूजा करेंगे, फिर बारह बजे अपनी आंख अलग कर लेंगे, फिर बारह बजे के बाद दिगंबर पूजा करेंगे। उस दिन किसी श्वेतांबर को ज्यादा धार्मिकता आ गई। बारह भी बज गए, मगर वह अपनी पूजा में मस्त ही हो गए। शरारती रहे होंगे, उपद्रव करना चाहते होंगे। और दिगंबरी भी कोई धर्म में पीछे तो नहीं, ठीक बारह घड़ियाल ने बजाए और उन्होंने कहा, बस बंद करो पूजा, बहुत हो गई! इसके पहले कि पूजा बंद हो, उन्होंने आंखें निकाल कर अलग कर दीं क्योंकि बारह बज गए। झगड़ा खड़ा हो गया। श्वेतांबरियों ने कहा कि यह क्या बात है? जब हमारी पूजा चल रही थी, तो अगर तुम दो-चार-पांच मिनट रुक जाते तो क्या बिगड़ता था? कम से कम पूजा तो बीच में नहीं तोड़नी थी!
और दिगंबरियों ने कहा, पूजा जाए भाड़ में। जब एक दफा तय हो गया कि बारह बजे आंख अलग होनी चाहिए तो बारह बजे आंख अलग होनी चाहिए, हम नियम के अनुसार चल रहे हैं। हमारी भी पूजा शुरू होनी है। और हम आंख वाले महावीर की पूजा नहीं कर सकते।
लट्ठ चल गए। मंदिर पर पुलिस का ताला पड़ गया। फिर तब से पूजा ही नहीं हुई मंदिर में--न आंख वाले महावीर की न गैर-आंख वाले महावीर की। फिर तो चूहे ही जो कुछ करते हों करते हों, आदमियों के तो जाने का सवाल न रहा।

मुकदमा चलता रहा। प्रिवी कौंसिल तक मुकदमा गया। जिनके पास दो मंदिर बनाने के लिए पैसा नहीं था, उन्होंने खूब पैसा इकट्ठा किया दूर-दूर जा-जा कर, क्योंकि सवाल धर्म की रक्षा का था। प्रिवी कौंसिल तक मुकदमा लड़ा गया। हाईकोर्ट में गया होगा, सुप्रीम कोर्ट में गया होगा, फिर लंदन में भी मुकदमा लड़ा गया। लेकिन लंदन में भी झंझट थी। झंझट यह थी कि असली सवाल तो उसी से पूछ कर तय किया जा सकता है, जिसके ऊपर झगड़ा है। महावीर क्या कहते हैं कि आंख बंद ठीक कि आंख खुली ठीक?
जहां तक मेरा संबंध है, मैं सोचता हूं, कभी-कभी आंख खुली भी रखते होंगे, कभी-कभी बंद भी रखते होंगे। जो कि बिल्कुल स्वाभाविक है। अब कोई चौबीस घंटे महावीर आंख खुली रखते होते तो पागल हो गए होते। और चौबीस घंटे बंद कैसे रखेंगे? जरूरत क्या बंद रखने की? और सच तो यह है कि आंख प्रतिपल खुलती और बंद होती है। ज्यादा उचित तो हो कि बिजली से चलने वाली पलकें लगा देनी चाहिए, तो आंख खुलती रहे, बंद होती रहे, झपकती रहे, आंख मारते रहें। चाहे दिगंबरी हों, चाहे श्वेतांबरी, जो भी आए। अब यह कैसे तय हो?
इसलिए मुकदमा वापस भेज दिया गया उसी छोटी अदालत में कि पहले महावीर
से पूछा जाए। और तुम जान कर हैरान होओगे कि महावीर की मूर्ति को एक रिक्शे में बिठा कर अदालत में ले जाया गया, क्योंकि अदालत ने सम्मन्स निकाल दिए कि अगर तुम नहीं लाओगे तो पुलिस जाकर अरेस्ट करके लाएगी। अब महावीर स्वामी को हथकड़ियां डाल कर ले जाना अच्छा नहीं मालूम होगा, सो इस बात पर दोनों राजी हो गए कि ठीक है एक रिक्शा में बिठा कर ले चलो।
क्या-क्या गजब की बातें हैं। महावीर स्वामी भी बड़े प्रसन्न हुए होंगे। ढाई हजार साल पहले कोई रिक्शे तो चलते नहीं थे। रिक्शे में बैठ कर मजा आ गया होगा। जरा खुली हवा भी मिली होगी, चूहों से भी छूटे होंगे, कई दिन से बंद भी थे जनता जनार्दन के दर्शन करके प्रसन्न भी हुए होंगे, आह्लादित भी हुए होंगे। अदालत लेकिन क्या पूछे इन सज्जन से? तो अदालत ने यह जानना चाहा... क्योंकि इसी में और कुछ छोटे-छोटे झगड़े थे। श्वेतांबर वस्त्र पहना कर पूजा करते हैं, दिगंबर वस्त्र हटा कर पूजा करते हैं। अब आदमी तो नंगा ही पैदा होता है, सो महावीर भी नंगे पैदा हुए होंगे। वस्त्र तो ऊपर ही ऊपर होते हैं, वस्त्र के भीतर तो सभी नंगे होते हैं। अरे, वस्त्र किसी की नग्नता मिटा सकते हैं?
तो उन्होंने कहा कि एक उपाय है और वह यह कि हम जांच कर लें कि यह मूर्ति अगर दिगंबरियों की है तो यह नग्न होगी और अगर श्वेतांबरियों की है तो वस्त्र पहने हुए होगी। अगर मूर्ति पर वस्त्र पहनने के चिह्न मिल जाएं, मतलब वस्त्र पहनी हुई मूर्ति पर पत्थर की भी मूर्ति हो तो वस्त्र तो बनाना होगा, चादर तो बनानी होगी, नग्नता तो दिखाई नहीं पड़ेगी। एक हाथ उघड़ा होगा तो छाती पर से चादर गुजरेगी, उसका निशान तो होगा। पैर ढंके होंगे। तो इससे साफ हो जाएगा कि मूर्ति किसकी है।
लेकिन श्वेतांबरियों ने क्या किया था, यह देख कर कि मामला इसी से तय होने वाला है, उन्होंने मंदिर में पीछे से घुस कर महावीर की नग्नता पर प्लास्टर कर दिया। महावीर से किसको लेना-देना है! अब किसी जिंदा आदमी पर प्लास्टर करो तो वह इनकार भी करे, चिल्लाए भी, भागे-दौड़े भी, पुलिस को भी बुलाए कि यह क्या करते हो भाई। भले-चंगे आदमी का स्टैरिलाईजेशन कर रहे हो! नसबंदी कर दी! प्लास्टर कर दिया!
अब झगड़ा इस बात पर चल रहा है कि वह प्लास्टर पहले से था कि बाद में किया गया है! दिगंबरों का कहना है कि प्लास्टर बाद में किया गया, क्योंकि मूर्ति तो पत्थर की है और प्लास्टर तो पत्थर नहीं है; प्लास्टर तो वही प्लास्टर आफ पेरिस, मिट्टी का लोंदा चढ़ा दिया है ऊपर से। तो मूर्ति अगर पत्थर की है और प्लास्टर पत्थर नहीं है तो जाहिर है कि मूर्ति दिगंबरों की है। मगर श्वेतांबरियों का कहना है कि कपड़े कोई चमड़े के थोड़े-ही होते हैं; आदमी चमड़े का होता है, कपड़े तो कपड़े होते हैं। तो मूर्ति तो नग्न ही रही होगी। प्लास्टर हमने कपड़े की तरह पहनाया है जैसे हर आदमी को कपड़ा पहनाया जाता है।
वह मुकदमा अभी भी चल रहा है। अभी भी ताला पड़ा हुआ है। और अब कोई प्लास्टर अलग न कर दे, इसलिए अब खिड़कियों पर भी सींखचे जड़ दिए गए हैं और

ताले लगा दिए गए हैं। सब तरफ से सील-मोहर मंदिर की बंद कर दी गई है। और मुकदमा चलता रहेगा।
कैसी छोटी और क्षुद्र बातों पर आदमी लड़ते हैं! और ये धार्मिक लोग हैं!
और इनको लड़वाने वाले पंडित होते हैं, पुरोहित होते हैं! इस जमीन का बड़ा सौभाग्य होगा जिस दिन पंडित-पुरोहित विदा हो जाएं। मगर वे तब तक विदा न होंगे जब तक हम मूल से इस बात को ही न छोड़ दें कि सत्य कोई दे सकता है। बुल्लेशाह उस पर ही चोट कर रहे हैं। आपने आपनूं समझ पहले। सबसे पहले
तू अपने को समझ, फिर तू समझना कुछ और। सबसे पहले प्राथमिक रूप से अपने को समझ। फिर पढ़ना वेद, फिर पढ़ना कुरान, फिर पढ़ना बाइबिल, फिर पढ़ना धम्मपद, फिर पढ़ना जेन्दावेस्ता। पहले अपने को पढ़। यह जो किताब तेरे भीतर छिपी है चैतन्य की, पहले इसके पन्ने उलट। और जिसने उसे पढ़ लिया, उसने सब पढ़ने योग्य पढ़ लिया।
आपने आपनूं समझ पहले।
पहले शब्द को ख्याल में रखना। उसको नंबर दो पर मत रखना, नहीं तो चूक हो जाएगी। इसलिए हिंदू मत हो जाना, मुसलमान मत हो जाना, जैन मत हो जाना। पहले अपने को समझ लेना। फिर जो करना हो करना। और जिसने भी अपने को समझा है, वह कभी हिंदू नहीं हुआ, कभी मुसलमान नहीं हुआ।
क्या तुम सोचते हो, बुद्ध बौद्ध थे? तो तुम गलती में हो। क्या तुम सोचते हो, ईसा ईसाई थे? तो तुम बिल्कुल भूल में हो। क्या तुम सोचते हो, मोहम्मद मुसलमान थे? तो दुबारा ऐसी बात मत सोचना। मोहम्मद तो कैसे मुसलमान हो सकते हैं? अभी तो मुसलमान धर्म ही न था। ईसा तो कैसे ईसाई हो सकते हैं? यहूदी घर में पैदा हुए थे। और यहूदियों की यही तो नाराजगी थी कि वे यहूदी नहीं हो रहे थे। वे कुछ नई बातें कहना शुरू कर दिए थे, जो यहूदियों से तालमेल नहीं खाती थीं, जो यहूदियों की किताब के अनुकूल नहीं पड़ रही थीं। बौद्ध तो कैसे हो सकते थे बुद्ध? पैदा तो हिंदू घर में हुए थे। लेकिन उन्हें लाख भूलें दिखाई पड़ रही थीं शास्त्रों में, वेदों में, गीता में, रामायण में, तो वे हिंदू नहीं हो सकते थे। और बौद्ध धर्म तो अभी होने में देर थी। अभी तो बुद्ध जीएंगे, इशारा करेंगे, और उनकी अंगुलियों को जो लोग पकड़ लेंगे वे बौद्ध होंगे। अब बुद्ध को खुद अपनी अंगुली पकड़ने की तो कोई जरूरत नहीं। जिसको चांद दिखाई पड़ रहा है, वह क्यों अपनी अंगुली पकड़ेगा? कोई पागल है?
इस पृथ्वी पर जितने लोग सत्य को जानने वाले हुए हैं, वे किसी धर्म का हिस्सा नहीं होते, वे किसी मजहब का हिस्सा नहीं होते। वे किसी संप्रदाय के सदस्य नहीं होते। हो ही नहीं सकते। इसलिए जोर है बुल्लेशाह काः
आपने आपनूं समझ पहले, कि वस्त है तेरड़ा रूप प्यारे।
"पहले यह तो देख ले कि तेरा रूप क्या है?"
यह रूप शब्द भी सोचने जैसा है। इसके दो अर्थ हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू। एक तो रूप का अर्थ होता हैः सौंदर्य। और एक रूप का अर्थ होता हैः स्वभाव, स्वरूप। प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से सुंदर है। सौंदर्य हमारी निजता है। सौंदर्य हमारी सहज स्वाभाविकता है। कुरूपता सब थोपी गई है, आरोपित है, बाहर से लादी गई है।
हर बच्चा सुंदर पैदा होता है, मगर हर बच्चा कुरूप लोगों के हाथ में पड़ जाता है। और हर बच्चे को कुरूप लोग अपने ही ढंग में ढालने लगते हैं, अपने ही वस्त्र पहनाने लगते हैं, अपनी ही जंजीरें पहनाने लगते हैं, अपने ही मंदिरों में घसीटने लगते हैं, अपनी ही मूर्तियों की पूजा करवाने लगते हैं--जय गणेश, जय गणेश! बच्चा बेचारा क्या जाने? उसे तो देख कर मजा आता है कि वाह, सूंड वाले सज्जन बैठे हुए हैं! वह तो बड़ा प्रसन्न होता है। बच्चों की तो अपनी पकड़ होती है। हनुमान जी को देख कर वह प्रसन्न होता है कि वाह, पूंछ वाले हनुमान जी! वह तो बाजार में कोई मदारी बंदर भी नचा रहा होता है, वहां भी खड़ा होकर देखता है कि बंदर दो पैर पर खड़ा है। और हनुमान जी की कहानी उसको खूब प्रभावित करती है कि लंका में आग लगा दी, कि पहाड़ ही ले आए। वह तो जल्दी से प्रभावित हो जाता है।
मैंने सुना, एक आदमी पेरिस में बहुत दिन तक रहा। वह अपने बच्चे को लेकर पेरिस के एक बहुत बड़े बगीचे में रोज जाया करता था। उस बगीचे में, ठीक

बीच में, सबसे महत्वपूर्ण स्थल पर एक बड़ा फव्वारा था और फव्वारे के बीच में एक बहुत शानदार घोड़ा था और घोड़े पर नेपोलियन की मूर्ति थी। बच्चा हमेशा बाप से कहता था कि चलें, चलने के पहले नेपोलियन को देख आएं। बाप इससे बहुत खुश होता था कि चलो नेपोलियन का इस पर प्रभाव पड़ रहा है! नेपोलियन जैसे व्यक्ति का प्रभाव पड़े तो अपने बच्चे में भी कुछ तो शौर्य, कुछ तो वीरभाव पैदा होगा। रोज उसे ले जाता था।
फिर बाप की बदली हुई, तो आखिरी दिन वह बगीचा गया। उसने कहा कि बेटा, तू
अब आखिरी बार नेपोलियन को गौर से देख ले, फिर कभी हम आएं इस बस्ती में न आएं; दूर की बदली हो रही है, फिर कभी आना हो या न हो, तू ठीक से नेपोलियन को देख ले। तो वे दोनों देर तक देखते रहे। बच्चे की आंख से आंसू झरने लगे कि फिर दुबारा नेपोलियन देखने को मिले या न मिले। बाप ने कहा, रो मत!
उसने कहा, मैं रो नहीं रहा हूं, लेकिन दुख तो होता ही है छोड़ने में। अब नेपोलियन को फिर न देख पाऊंगा। एक सवाल सदा मुझे पूछना था, कभी पूछा नहीं, आज पूछ लूं? बाप ने कहा, पूछ ले। उसने पूछा कि मैं यह पूछना चाहता हूं कि नेपोलियन तो बहुत प्यारा है, मगर नेपोलियन के ऊपर यह कौन चढ़ा बैठा है! यह हरामजादा उतरता क्यों नहीं?
बच्चों की तो अपनी पकड़ होती है, वह तो घोड़े में उसे रस था। यह बाप समझ रहा था कि नेपोलियन में रस है। वह तो घोड़े को नेपोलियन समझता था और हैरान इससे होता था कि यह कौन है जो हमेशा नेपोलियन पर चढ़ा रहता है। कभी ऐसा नहीं कि थोड़ी देर आराम दे, कभी उतर जाए। तब बाप को पता चला कि हद हो गई, मैं समझ रहा था कि यह नेपोलियन में उत्सुक है।
बच्चे सीधे-साफ होते हैं। तो मंदिर में ले चले, कृष्ण कन्हैया खड़े हैं, बांसुरी बजा रहे हैं, राधा मैया खड़ी हैं। पीतांबर पहने हुए हैं, मोर-मुकुट बांधे। तुम सोचते हो वह कृष्ण में उत्सुक हो रहा है, हो सकता है मोर-मुकुट में उत्सुक हो रहा हो, कि अगर मौका मिल जाए तो मोर-मुकुट ले भागे, कि बांसुरी जंच रही है।
मैं तो अपनी जानता हूं। छोटा था तो मैं मंदिर एक ही काम के लिए जाता था। और वह काम मेरा यह था कि मंदिर में बहुत सुंदर फानूस थे और फानूसों में बड़े सुंदर कांच लटके हुए थे, प्रिज्म वाले कांच थे। बस मेरा कुल रस उन फानूसों में था। जब भी मौका देखता, एक-आध कांच झटक कर ले आता। उस कांच में से सूरज की रोशनी को निकाल कर इंद्रधनुष बन जाते थे। मैंने बहुत-से कांच इकट्ठे कर लिए थे। धीरे-धीरे फानूस के सब कांच नदारद हो गए। पंडित-पुजारियों को शक होने लगा कि ये कांच कहां जा रहे हैं! तब मैं पकड़ा गया, क्योंकि और किसी ने खबर दी कि कांच कहीं भी जा रहे हों... किसी ने इसको कांच ले जाते कभी देखा नहीं है। क्योंकि पहले, कांच निकालने के पहले मुझे काफी भक्ति-भाव दिखलाना पड़ता था। एकदम ऐसा मस्त हो जाता कि जब सब चले जाते, तभी तो कांच निकाल सकता था। पुजारी भी देखता कि यह तो बड़ा धार्मिक बच्चा है, करने दो पूजा! अब पुजारी को भी रोज-रोज कब तक बैठना पड़े। जब तक पुजारी रहे तब तक मेरी पूजा भी खतम न हो। मैं तो आरती उतारता ही रहूं, उतारता ही रहूं, क्योंकि मैं तो पुजारी को हटाने के लिए उतार रहा हूं। आखिर पुजारी को और भी काम थे। नहाना-धोना भी है, भोजन भी बनाना है, आस-पड़ोस में दूसरों की पूजा करवाने भी जाना है। और वह मुझको रोक भी नहीं सकता था कि ऐसे धार्मिक बच्चे को कैसे रोकें! वह इधर गया कि पूजा बंद। निकाला कांच एक-दो, जितने भी हाथ लगे, और भागा। लेकिन किसी ने खबर दे दी कि पकड़ा तो यह कभी नहीं गया है, लेकिन हमने इसके पास बहुत कांच देखे हैं।
एक दिन मैं पूजा करता रहा और पुजारी भी जमा रहा। मुझे भी कुछ शक हुआ कि बात क्या है। जब पुजारी हटा ही नहीं, मैं भी थक गया पूजा करते-करते, तो मैंने भी थाली रखी और मैं घर की तरफ चलने लगा। तो उसने कहा, क्यों? आज कांच नहीं ले जाने? कि तूने मुझे खूब धोखा दिया है, कि मैं समझा कि तू पूजा में रस लेता है और तू कांच निकाल कर ले जाता है।
मैंने कहा, अब तुमसे क्या छिपाना! अब जब बात पता ही चल गई और अब कांच बचे भी नहीं हैं, सो कल से मुझे आना भी नहीं है। अब आकर भी क्या करूंगा? छोटे बच्चों का अपना रस होता है। क्या लेना-देना तुम्हारी मूर्ति से
और तुम्हारे शास्त्र से! मगर धीरे-धीरे संस्कार इन बच्चों को पकड़ना शुरू

कर देते हैं। प्रसाद बंटता है मंदिरों में, बच्चों को प्रसाद में रस होता है। मैं कम से कम तीन-चार दफा प्रसाद तो लेता ही था। कभी टोपी लगा कर ले लूं, कभी टोपी निकाल कर ले लूं। आखिर पुजारी मुझे पहचान गया। उसने कहा, कि भैया, तू क्यों मेहनत करता है? कभी टोपी लगाता है, कभी टोपी निकालता है। पकड़ा न होता उसने; मैं एक दिन मूंछ लगा कर पहुंच गया। उसने कहा, हद हो गई! अब बंद कर! इस उम्र में इतनी बड़ी मूंछ कहां से आ गई? उसने झटका दिया, मूंछ निकल गई। मैंने कहा, भई मुझे सिर्फ चार दफा प्रसाद चाहिए। अगर तुम वैसे ही देते हो तो मैं बंद कर दूं। और ऐसा नहीं कि मैं कोई एक ही मंदिर जाता था। गांव में सब तरह के मंदिर थे, मुझे क्या लेना-देना?
कृष्णाष्टमी आती तो मैं कृष्ण के मंदिर में जाता। उन दिनों दो पैसे
का अधेला चलता था। वह बिल्कुल रुपए के बराबर था। उसमें मैं चांदी का वर्क चढ़ा देता था, तो वह रुपए जैसा मालूम पड़ता था। बिजली थी नहीं गांव में। सो दीए की रोशनी में और मंदिरों में इतने पैसे चढ़ते थे, रुपए चढ़ते थे, कि ठीक मूर्ति के सामने लोग पैसे फेंकते जाते थे। मैं भी जाता और इतने जोर से फेंकता वह नकली रुपया कि सब पुजारियों को पता चल जाए कि हां फेंका और फिर मैं कहता--आठ आने वापस! मेरा रस तो उसमें था। जन्माष्टमी की मैं प्रतीक्षा करता था, क्योंकि मेरे गांव में कम से कम कृष्ण के तीस मंदिर थे। बस एक आधा घंटे में पंद्रह-बीस रुपए झपट लाता था। और मुझे कुछ कभी नहीं लेना-देना रहा।
मुसलमानों के ताजिए उठते, मैं हाजिर। वली साहब उठते। तो मैं इतना भक्ति-भाव दिखलाता कि मुझे धीरे-धीरे वली साहब की रस्सी भी पकड़ने का मौका मिलने लगा था। और रस्सी का मौका मुझे इतना मिलने लगा और उसका कारण था, क्योंकि जिस वली की भी मैं रस्सी पकड़ लेता था उस पर ही चढ़ौत्तरी ज्यादा आती। लोग कहने लगे कि इस बच्चे में कुछ खूबी है! चमत्कारी है! और चमत्कार कुल इतना था कि मैं एक लंबी सुई अपने साथ रखता था, सो वली साहब को गुलकता रहता। वह काफी उछल-कूद मचाते, दूसरे वलियों को हरा देते। स्वभावतः। और जो जितना उछले-कूदे, लगता उतने ही बड़े वली साहब आए हैं। उनको चढ़ौत्तरी भी ज्यादा होती थी।
मगर वह वली साहब, जिसकी भी रस्सी मैं पकड़ता, वही घबड़ा जाते। वह मुझसे कहने लगे, भैया आधी चढ़ौत्तरी तू ले लेना और तुझे जब उचकाना हो सिर्फ हाथ का इशारा किया कर, हम उचकेंगे, मगर यह सुई न चुभाया कर। उस वक्त हम कुछ कह भी नहीं सकते कि सुई चुभा रहा है यह लड़का, क्योंकि अगर सुई का पता चल रहा है तो तुम वली साहब कैसे! अरे, वली साहब का तो मतलब कि तुम तो रहे ही नहीं, अब तो जिंद उतरे हुए हैं, वली उतरे हुए हैं, वे तुम्हारे ऊपर सवार हैं, तुम्हें कहां पता? अपना होश है तुम्हें तो फिर पता ही चल गया, तो फिर असलियत की बात नहीं, धोखा हो रहा है।
तो मेरे पास चढ़ौतियां आने लगीं--आधी चढ़ौती वली साहब की! कहते, बिल्कुल आधी तू ले, आधी से भी ज्यादा ले लेना, मगर देख सुई न चुभाना। रास्ते भर जान ले लेता है कुदा-कुदा कर! जब भी कुदाना हो, तुझे लगे कि हां भई पैसे वालों का मामला है और ज्यादा कुदाई से फायदा होगा, हाथ का इशारा कर।
सभी धर्मों में मैं जाता था। क्योंकि धर्म से मुझे क्या लेना-देना था। आज भी कुछ लेना-देना नहीं है। तब धर्म से लेना-देना नहीं था, अब धार्मिकता से लेना-देना है। धार्मिकता बासी नहीं होती, उधार नहीं होती, कोई दे नहीं सकता। धार्मिकता संस्कार नहीं है।
ठीक कहते हैं बुल्लेशाहः आपने आपनूं समझ पहले, कि वस्त है तेरड़ा रूप प्यारे। तेरा सौंदर्य क्या! तेरे भीतर छिपा हुआ मालिक कौन! तेरे भीतर का स्वर्ग कैसा! उसको पहचान ले।
बाझ अपने आपदे सही कीते, रहियों विच विश्वास दे दुख भारे।
"और बिना अपने आप की पहचान किए विश्वासों में जीना भारी दुख है।"
और तुम सब विश्वासों में जी रहे हो, इसलिए दुखी हो। विश्वास का अर्थ हैः झूठ। सच में भी विश्वास करो तो तुम झूठ कर लेते हो--विश्वास करके झूठ कर लेते हो। सत्य तो सिर्फ अनुभव ही हो, तभी सत्य होता है; जैसे ही विश्वास बना झूठ हो जाता है। जानने वाले के भीतर सत्य होता है; उसने कहा कि झूठ हुआ।

मुझसे किसी ने पूछा था, दो दिन पहले ही, संभवतः अविनाश भारती ने कि भगवान, आप अपने प्रवचन में कितना झूठ बोलते हैं, कितने परसेंट?
कितने परसेंट का सवाल ही नहीं, अविनाश। जो भी करता हूं, हंड्रेड परसेंट करता हूं, समग्रता से करता हूं, सौ प्रतिशत; क्योंकि सत्य तो बोला ही नहीं जा सकता। तुमने कभी सुना है कि सत्य बोला जा सके? लाओत्सु ने जिंदगी भर नहीं लिखा, मरते वक्त जबरदस्ती लिखवाया गया। तो उसने पहला वचन ताओ तेह किंग में लिखा कि मैं पहले यह कह देना चाहता हूं कि सत्य कहा नहीं जा सकता। इसको ख्याल में रखना, फिर आगे पढ़ो। तो फिर जो कहा गया है वह सत्य नहीं है; सिर्फ सत्य की तरफ इशारा है।
सत्य तो मैं बोल ही नहीं सकता; कोई कभी नहीं बोला तो मैं कैसे बोलूंगा? बोला न जा सके, वही तो सत्य है! जीया जा सकता है, बोला नहीं जा सकता। दिखाया जा सकता है, समझाया नहीं जा सकता। अनुभव कराया जा सकता है, लेकिन सिद्धांतों में नहीं ढाला जा सकता। सो जो बोलता हूं वह तो सौ प्रतिशत झूठ समझना। हां, जिस तरफ इशारा कर रहा हूं बोल कर वह सौ प्रतिशत सत्य है। इशारे को मत पकड़ना। सब इशारे झूठ हैं। हां, जिसकी तरफ इशारा है वह सच है।
जो मूल है बुल्लेशाह का, वह और भी प्यारा हैः बाझ अपने आपदे सही कीते। इसको ठीक-ठीक अनुवाद करें तो यूं करना होगाः अपने को इस भांति सही कर। किस भांति? अपने को जान कर। बाझ अपने आपदे सही कीते। अगर तू अपने को जान ले तो सब सही हो जाए, सब सम्यक हो जाए, सब ठीक हो जाए। और जिसने अपने को नहीं जाना वह कुछ भी करे तो ठीक नहीं होगा; जो भी करेगा गलत होगा। अच्छा भी करने जाएगा तो बुरा होगा। भला करने जाएगा और बदी होगी। क्योंकि भीतर रोशनी नहीं है और तुम चले दूसरों की रोशनी जलाने! डर यही है कि किसी की जलती रोशनी को न बुझा देना।
बाझ अपने आपदे सही कीते।
"अपने को जान ले तो सब सही हो जाए।"
इसलिए तो मैं जोर नहीं देता कि तुम ऐसा करो और ऐसा न करो। मैं तो सिर्फ इतना ही कहता हूंः तुम जैसे हो अपने उस स्वरूप को जान लो। फिर तुम जो करोगे वह ठीक ही होगा। और जो नहीं करोगे वह गलत ही होगा, इसलिए नहीं करोगे। इसलिए करने पर मेरा जोर नहीं है, होने पर मेरा जोर है।
बाझ अपने आपदे सही कीते, रहियों विच विश्वास दे दुख भारे।
और अगर विश्वासों में ही जीए तो कभी ठीक तो हो न सकोगे, इसलिए दुख पाओगे। ठीक न होना अर्थात दुख पाना। ठीक होने का अर्थ है जीवन के छंद के साथ समरस हो जाना। जीवन का जो शाश्वत नियम है, जिसको हम धर्म कह सकते हैं-- बुद्ध ने कहा है, एस धम्मो सनंतनो--यह जो सनातन जीवन का नियम है, अगर हम इससे अलग चले तो दुख पाएंगे; अगर इसके साथ चले, एकरूप होकर चले तो सुख पाएंगे। सुख की और कोई परिभाषा नहीं। जीवन के साथ तुम्हारा छंद ऐसा आबद्ध हो जाए, जीवन की बांसुरी के साथ तुम्हारा नृत्य ऐसा सध जाए कि तुम्हारे पैर बेढंगे न पड़ें, तुम्हारा जीवन ताल में आ जाए, सुर-ताल में आ जाए, तालमेल में आ जाए, छंदोबद्ध हो जाए--बस फिर आनंद है। आनंद जीवन के साथ संगीत में है और दुख जीवन के साथ विसंगीत में है।
रहियों विच विश्वास दे दुख भारे।
अगर बहुत विश्वासों में जीए तो दुख का भार ढोओगे।
रहियों विच विश्वास दे दुख भारे।
और भारी है यह दुख। पहाड़ ढो रहे हो तुम विश्वासों के। और ज्ञान की एक किरण काफी है। ज्ञान निर्भार करता है, विश्वास भार देते हैं। ज्ञान पंख देता है, विश्वास सिर्फ तुम्हारे ऊपर पहाड़ थोप देते हैं।
बाझ अपने आपदे सही कीते।
और फिर दोहरा हूं, अपने को जान लो तो सब सही हो जाए।
मुझसे लोग पूछते हैं कि अपने संन्यासियों को आप अनुशासन नहीं देते। क्यों दूं अनुशासन? सदियों से अनुशासन दिया गया है, परिणाम क्या है? सिर्फ पाखंडी पैदा हुए हैं। अनुशासन नहीं देता, अनुबोध देता हूं। और उस अनुबोध से जो निकलेगा वह अनुशासन है। मैं दूं अनुशासन तो शासन हो जाएगा। मैं शास्ता नहीं हूं। मैं किसी को शासन नहीं देता। मैं तो सिर्फ जागा हुआ व्यक्ति हूं। तुम सोए हो, तुम्हें हिलाता-डुलाता हूं कि तुम भी जाग जाओ।

फिर जाग कर तुम जो भी व्यवहार करोगे, वह ठीक होना ही चाहिए। जागा हुआ व्यक्ति न कभी गलत किया है, न कर सकता है। जानते हुए कौन आग में हाथ डालता है? जानते हुए कौन दीवार से निकलने की चेष्टा करता है?
होर लख उपाओ न सुख होवे।
और तुम लाख उपाय करते रहो तो भी सुख न होगा। सुख होने का एक ही उपाय हैः
बाझ अपने आपदे सही कीते।
होर लख उपाओ न सुख होवे, पुछ वेख सियानने जग सारे।
जाओ और जगत के सारे सयानों से पूछ लो। मगर कौन है सयाना? सयाने का कोई उम्र से नाता नहीं। जो जागा है वह सयाना। जो सो रहा है वह बालबुद्धि; वह चाहे नब्बे साल का ही क्यों न हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह अभी झूला ही झूल रहे हैं। झूला झूलें कन्हैया लाल! वह अभी झूले के बाहर ही नहीं निकले। जो जाग गया वह सयाना है।
लाओत्सु के संबंध में कहानी है कि वह पैदा हुआ, सयाना ही पैदा हुआ। कहानी तो बड़ी प्यारी है कि जब वह पैदा हुआ, उसकी उम्र चौरासी साल थी। ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि चौरासी साल में बेचारी मां की क्या हालत हुई होगी! मां गर्भवती हुई होगी तो रही होगी, कम से कम सोलह-सत्रह साल की तो रही होगी। सोलह-सत्रह साल की उम्र से लेकर चौरासी साल तक लाओत्सु को अपने गर्भ में ढोना, कब की मर चुकी होगी। सौ साल की हो रही होगी। और चौरासी साल कहीं गर्भ रहता है?
लेकिन बात बड़ी प्रीतिकर है। मतलब सिर्फ इतना है कि लाओत्सु सयाना ही पैदा हुआ। बुद्ध बयासी साल में मरे। बुद्ध जिस घड़ी में मरे, जिस अवस्था में मरे, कहानी यह कह रही है कि लाओत्सु उसी चेतना की अवस्था में पैदा हुआ। जागा ही पैदा हुआ।
सयाने से अर्थ है, जिसने सत्य को जाना। और किसी तरह से तुम सुख न पाओगे। और सब तरह से दुख पाओगे। लाख करो उपाय, सुख न होगा। उपाय से सुख का कोई संबंध ही नहीं। आसन लगाओ, व्यायाम करो, प्राणायाम साधो, शीर्षासन, सर्वांगासन, मयूरासन, और कितने आसन हैं, करते रहो; शरीर को इधर हिलाओ उधर डुलाओ, दंड-बैठक लगाओ, लगाते रहो--कुछ भी न होगा। उपवास करो, भूखे मरो, दूसरों को भूखा मारो, कुछ भी नहीं होगा। शरीर को गलाओ, सड़ाओ--धूप में, सर्दी में--कुछ भी न होगा। उपाय से कुछ भी नहीं होने वाला। हां, ध्यान से कुछ होगा। और ध्यान उपाय नहीं है। ध्यान है शून्य अवस्था, निष्प्रयत्न की अवस्था, अक्रिय अवस्था, जहां सब क्रिया समाप्त हो जाती है। और उसी ध्यान की अवस्था में अपने से पहचान होती है। जब तुम बिल्कुल मौन हो, कुछ भी नहीं कर रहे हो, करना छूट गया बहुत दूर, न करने की अवस्था में आ गए हो, तभी, तत्क्षण जगत के सत्य से तुम्हारा सत्य मेल खा जाएगा। संगीत बज उठेगा! पैरों में पायलें बंध जाएंगी! घूंघर छनक उठेंगे!
सुख रूप अखेड़ चेतन है तू।
तुम्हारा स्वभाव सुख है, क्योंकि तुम चैतन्य हो।
बुल्लाशाह पुकार दे वेद सारे।
ये सारे जगत के वेद... और ध्यान रखना, बुल्लेशाह कोई हिंदुओं के चार वेदों की बात नहीं कर रहा है। कुरान भी वेद है और बाइबिल भी वेद है और जेंदावेस्ता भी वेद है और तालमुद भी वेद है और धम्मपद भी वेद है।
बुल्लेशाह जो बोल रहे हैं वह भी वेद है। नानक और कबीर और दादू और मीरा जो बोले, वह भी वेद है। जो भी जाग्रत पुरुष बोला है, वह वेद है।
वेद शब्द प्यारा है; वह बनता है विद से। विद से अर्थ है, जिसने जाना।
जाना जो, वह जो भी बोला है, वह वेद है। तो कोई चार हिंदुओं के वेद ही नहीं हैं। जितने जगत में जाग्रत पुरुष हुए हैं, उनके सभी शब्द वेद हैं।
बुल्लाशाह पुकार दे वेद सारे।
बुल्लेशाह कहते हैंः सारे वेद, सारे जानने वाले लोगों के गीत एक ही तो गान गा रहे हैं, एक ही तो उनका स्वर है, एक ही तो उनका संगीत है। क्या है? सुख रूप अखेड़ चेतन है तू।
तू सुखरूप है। तू चैतन्य है। तू शरीर नहीं। तू मन नहीं। तू चेतना है।
और जिसने यह जान लिया कि मैं चैतन्य हूं, उसने सब जान लिया। क्योंकि उसने

जान लिया मैं भगवतस्वरूप हूं। उसने जान लिया--अहं ब्रह्मास्मि! उसने जान लिया--अनलहक!
इस जिंदगी में सब बदल जाता है, सिर्फ एक चैतन्य की धारा नहीं बदलती।

छंट ही जाते हैं बादल तो हालात के
जख्म भरते नहीं दोस्तो बात के
अपनी तकदीर कि प्यास बुझ न सकी
छींटे हम तक भी आए हैं बरसात के
साकी की नजरें भी धोखा देने लगीं
खतम होने लगे सांस भी रात के
इस जफा का ऐ हमदम बहुत शुक्रिया क्या करूं पेश बदले में सौगात के अपने सीने से आंचल न सरकाइए
मुझ से रुकते नहीं तूफां जज्बात के जिंदगानी के इस आखिरी मोड़ पर ढूंढता हूं कहां खो गए साथ के अच्छे अच्छों के तेवर बदल जाते हैं
रंग देखे नहीं तुमने हालात के
अश्क भी जिंदगी के साथी न बने
ये भी मोती थे उनकी ही सौगात के
छंट ही जाते हैं बादल तो हालात के
जख्म भरते नहीं दोस्तो बात के
इस जिंदगी में सब बदल जाता है, साथी बदल जाते, संगी बदल जाते, सब बदल जाते। सिर्फ एक चीज नहीं बदलती--तुम्हारा चैतन्य, तुम्हारा बोध नहीं बदलता। वही तुम्हारे भीतर शाश्वत ज्योति है। शरीर बदलता है, मन बदलता है, भावनाएं बदलती हैं, सब बदलता है।
यूं समझो कि जैसे गाड़ी चलती है तो चाक तो घूमता रहता है, लेकिन कील जिस
पर चाक घूमता है, सदा थिर होती है। वह चैतन्य ही तुम्हारी कील है। और जिसने उस थिरता को पा लिया, वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है। जिसने उस थिरता को पा लिया, उसने परमात्मा के दरवाजे की कुंजी पा ली।
बुल्लेशाह के वचन प्यारे हैं। सोचना। सोचना ही मत--समझना। समझना ही मत--ध्याना। ध्याना ही मत--जीना।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
नौवां प्रवचन

दरवाजा खुला रखना

पहला प्रश्नः ओशो, कल बुल्लेशाह की आपने अलफ काफी हमें पिलाई। उनकी
बे काफी इस प्रकार है--
बन्ह अखीं अते कन्न दोवें, गोशे बैठ के बात विचारिए जी।
छड खाहिशां जग जहान कूड़ा, कहिआ आरफा दा हीए धारिए जी।
पैरी पहन जंजीर बेखाहिशी दी, इस नफस नूं कैद कर डारिए जी।
जा जान देवें जान रूप तेरा, बुल्लाशाह एह खुशी गुजारिए जी।
अर्थात आंख और कान दोनों बंद करके, होश में बैठ कर बात का विचार करो।
जगत की ख्वाहिशें छोड़ो, जगत झूठा है। ब्रह्मज्ञानी के कहे हुए को हृदय में धारण करो।
पैरों में बेख्वाहिशों की जंजीर पहन कर, इस क्षण को कैद कर डालो।
अगर अपनी जान जाने दो तो अपना रूप जानो। बुल्लेशाह कहते हैं कि यही खुशी है जिसमें गुजारा है।
ओशो, निवेदन है कि बुल्लेशाह की यह काफी भी हमें पिलाएं।

योग शुक्ला, बुल्लेशाह की बातें तो ओस की बूंदों की तरह हैं--ताजी, नई, छोटी-छोटी बूंदें। लेकिन इन बूंदों में जैसे सागर समाया हुआ है। और वह बूंद ही क्या जिसमें सागर न समाया हो! वह बात ही क्या, जो बेबात की दुनिया की खबर न ले आए! वह शब्द ही क्या जिसमें निःशब्द की वीणा न बजती हो! इसलिए बुल्लेशाह की इन अभिव्यक्तियों को जरा और ढंग से लेना।
बुल्लेशाह कोई पंडित नहीं, कोई पुरोहित नहीं--एक अलमस्त फकीर हैं। जिन्होंने जाना, जिन्होंने जीया, पीया, और पिलाया भी। सिर्फ विचार करने बैठोगे तो चूक जाओगे। ये बातें तो निर्विचार में ही समाविष्ट हो सकती हैं।
बन्ह अखीं अते कन्न दोवें, गोशे बैठ के बात विचारिए जी।
"आंख और कान दोनों बंद करके, होश में बैठ कर विचार करो।"
यह जरा सोचने की बात है। यह तो कबीर की उलटबांसी जैसी बात है। आंख और कान ही हमारे द्वार हैं, जहां से विचार प्रवेश करता है। आंख और कान से ही, देख कर और सुन कर ही, सुन कर और पढ़ कर ही, हमारे भीतर विचारों का संकलन होता है; विचारों की पर्त पर पर्त जमती है। धीरे-धीरे विचार के पहाड़ खड़े हो जाते हैं--इतने बड़े कि हमारा शून्य हमें भूल ही जाता है; हमारा स्व हमें विस्मृत ही हो जाता है। विचारों की धूल इतनी जम जाती है कि चेतना का दर्पण था भी कभी, इसकी याद भी नहीं आती। चेतना की भाषा ही भूल जाती है। बस हम शब्दों के जंगल में ही खो जाते हैं। और ये दोनों बातें आती हैं आंख और कान से; या तो सुन कर या देख कर।
बुल्लेशाह कहते हैं, बन्ह अखीं अते कन्न दोवें। दो चीजें बंद कर लो-- आंख और कान। बुल्लेशाह सीधे-सादे आदमी हैं, सीधी-सादी बात कह रहे हैं। और ध्यान फलित हो जाएगा। जो आंख से पाया है उसे बाहर छोड़ दो। जो देखा है उसे भूल जाओ, ताकि जो देखने वाला है उसकी याद आ जाए। जो सुना है उसे विस्मृत कर दो, ताकि जो अन-सुना है उसका झरना तुम्हें सुनाई पड़ने लगे। हमारे कान बाहर की आवाजों से भरे हैं। बाहर का शोरगुल बहुत है। शोरगुल ही शोरगुल है। और हम ऐसे पागल हैं कि उस कचरे को इकट्ठा किए चले जाते हैं। व्यर्थ की बातों को भी लोग संभाल-संभाल कर रखते हैं। जिनका कोई मूल्य नहीं, कोई उपयोग नहीं। उन बातों से अपने भीतर के जगत को यूं कर लेते हैं जैसे कोई कबाड़खाना हो।
जो देखा है उसे बाहर छोड़ दो; वह बाहर का ही है, तुम्हारा नहीं है। जो सुना है उसे भी बाहर जाने दो; वह भी बाहर का है, वह भी तुम्हारा नहीं है। तब तुम्हारे अनुभव में पहली बार एक नई ज्योति उठेगी, जो तुम्हारी है। उसे कहो द्रष्टा, दृश्य नहीं। उसे कहो श्रावक, श्रवण नहीं।

महावीर ने कहा हैः मूलतः दो तीर्थ हैं, जिनसे व्यक्ति उस दूर के किनारे तक पहुंचता है। एक तीर्थ है श्रावक का, श्राविका का। और एक तीर्थ है साधक का, साधु का, साध्वी का, साधिका का। जैन मुनियों ने ऐसी परिभाषा की कि लोगों को लगा कि साधु का जो तीर्थ है, साधु का जो मार्ग है, वह श्रावक से ऊपर है। वह बात बुनियादी रूप से गलत है। साधना तो तब करनी होती है जब सुन कर समझ में न आए। जो सुन कर ही समझ गए वे साधना क्यों करेंगे?
बुद्ध का एक शिष्य था, विमल कीर्ति। वह कभी साधु न हुआ, श्रावक ही रहा। मगर बुद्ध उसके पास अनेक बार अपने दूसरे शिष्यों को भेजते थे कि जाओ और विमल कीर्ति से पूछो। निश्चित ही साधु शिष्यों को बात अखरती थी। अहंकार को चोट लगती थी कि हम साधु और श्रावक के पास जाएं! जिसने कभी साधा ही नहीं, कोई तपश्चर्या नहीं की, कोई श्रम नहीं किया; सिर्फ बुद्ध को सुना है! हमने तो सुना भी है, और किया भी है। हम उसके पास समझने जाएं? श्रावक तो हमेशा साधु के पैर छूता है। लेकिन बुद्ध भेजते थे अपने साधुओं को विमल कीर्ति के पैर छूने। विमल कीर्ति के पास जाते हुए भी लोग डरते थे, क्योंकि वह ऐसी बातें उठा देता था, ऐसे तार छेड़ देता था कि बेचैनी पैदा हो। उसे उत्तर देना मुश्किल हो जाता था।
विमल कीर्ति बहुत बीमार था। कोई शिष्य जाने को राजी न था। सारिपुत्र
को पूछा, वह भी टाल-मटोल कर गया। मोग्गलायन को पूछा, उसने कहा मुझे दूसरे काम हैं, मैं किन्हीं और कामों के लिए पहले ही आबद्ध हो चुका हूं। सिर्फ एक शिष्य मंजुश्री जाने को राजी हुआ।
और मंजुश्री भी लौटा तो उसने आते से ही कहा कि मैं समझा कि दूसरे शिष्य क्यों न गए। सर्दी के दिन थे, ठंडी-ठंडी हवाएं थीं। लेकिन मंजुश्री ने कहा मेरा पसीना छुड़ा दिया। यह आदमी क्या है, जैसे सिंह की दहाड़ हो। और मैंने कुछ ऐसी कठिन बात भी न पूछी थी। मैंने इतना ही पूछा था कि विमल कीर्ति, स्वास्थ्य तो ठीक है न? और बस! विमल कीर्ति एकदम उठ कर बैठ गया और कहने लगा, स्वास्थ्य कभी खराब भी होता है? स्वास्थ्य का तो अर्थ ही होता है जो स्वयं में स्थित है। बीमारियां शरीर को हो सकती हैं, मुझे नहीं। अरे पागल! तुझे अभी यह भी पता नहीं! शरीर जन्मा है, जवान होगा, बूढ़ा होगा, मरेगा। मैं न जन्मा, न जवान हुआ, न बूढ़ा होऊंगा, न मरूंगा; मैं शाश्वत हूं। कैसी बातें पूछता है? बुद्ध के पास से आया और ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें पूछता है! मैं तो सदा स्वस्थ हूं। मैं तो कभी स्वयं से रत्ती भर इधर-उधर नहीं। मैं तो अपने भीतर केंद्रित हूं। मैंने तो अपना घर पा लिया। शरीर रहे कि जाए। तूने बात कैसी पूछी? अपने शब्द वापस ले।
और मंजुश्री को अपने शब्द वापस लेने पड़े।
यह विमल कीर्ति सिर्फ श्रावक था। मंजुश्री ने कहा कि अब आ ही गया हूं
तो जाते-जाते एक बात पूछता चलूं। हम साधु हैं, हम साधना करते हैं, ध्यान करते हैं, योग करते हैं। आप केवल श्रावक हैं। आपने सिर्फ बुद्ध को सुना है और कभी कुछ किया नहीं। और यह बात क्या है कि साधुओं को और श्रावक के पास समझने के लिए भेजा जाता है! और आप से वे कभी नहीं कहते कि किसी साधु के पास समझने जाओ।
विमल कीर्ति ने कहा, साधु नंबर दो पर आते हैं। जो सुन कर ही समझ गया, वह श्रावक। जो सुन कर न समझा, जिसकी बुद्धि प्रगाढ़ नहीं है, जिसकी बुद्धि थोड़ी मंद है, सुन कर न समझा, उसको करने के लिए कहा जाता है।
विमल कीर्ति ने कहा, तुझे तो याद होगा कि बुद्ध हमेशा कहते हैं कि चार तरह के घोड़े होते हैं। एक घोड़ा कि मारे-मारे नहीं चलता। जितना मारो बस उतना ही थोड़ा-बहुत चलता है। दूसरा घोड़ा, जिसको चोट पड़ी कि चलता है, फिर रुकता नहीं। तीसरा घोड़ा, जिसे मारना भी नहीं पड़ता, सिर्फ कोड़े की आवाज करनी पड़ती है, कोड़े की चटकार काफी है। और चौथे घोड़े वे अदभुत घोड़े होते हैं जिनको कोड़े की चोट भी आवश्यक नहीं है, कोड़े की चटकार भी आवश्यक नहीं, कोड़े की छाया भर काफी है। वे ही श्रेष्ठतम घोड़े हैं।
विमल कीर्ति ने कहा, मैं सुन कर ही समझ गया, करने की बात ही न रही। सुनते-सुनते ही बात पूरी हो गई।
मगर यह सुनने का ढंग कुछ और होगा। सुन कर जो शब्दों को पकड़ेगा, पंडित
हो जाएगा; सिद्धांतों को पकड़ेगा तो सूचनाओं का संग्रह हो जाएगा। लेकिन

सुन कर जो शून्य को पकड़ेगा, सुनते-सुनते, जैसे कोई संगीत सुनते-सुनते शांत हो जाए, ऐसे जो शांत हो जाएगा, वही समझ पाएगा।
हमारे पास दो ही उपाय हैं। और सत्संग में दोनों बातें घटती हैं। गुरु
को सुनना भी है और गुरु को देखना भी है। जिसने ठीक से सुना वह गुरु के शब्दों को नहीं पकड़ता; शब्दों के भीतर पड़े हुए सार को पी लेता है और शब्दों को छोड़ देता है। जिसने गुरु को ठीक से देखा, वह उसकी देह को नहीं पकड़ लेता। देह माना कि बहुत प्यारी है और शब्द भी गुरु के बहुत प्यारे हैं, लेकिन देह के भीतर जो छिपा है अदृश्य, अदेही, उससे संबंध जोड़ लेता है। यह संबंध न आंख का है न कान का है। ऐसे संबंध का नाम ही सत्संग है।
बुल्लेशाह ठीक कहते हैंः बन्ह अखीं--दो चीजों को बंद कर--अते कन्न दोवें। बस दो। और दो दुई के भी प्रतीक, द्वैत के भी प्रतीक। और जहां द्वैत है वहां विचार है। क्योंकि जहां द्वैत है वहां संघर्ष है। जहां दुई है वहां सवाल है यह ठीक कि वह ठीक। और जहां द्वैत न रहा वहां तो निर्विचार है। इसलिए दूसरी बात को और भी ख्याल से समझना--
बन्ह अखीं अते कन्न दोवें, गोशे बैठ के बात विचारिए जी।
बुल्लेशाह उलटबांसी कह रहे हैं। वे कह रहे हैंः आंख से जो देखा, बाहर छोड़ दो। कान से जो सुना, उसे पकड़ो मत। आंख और कान को बंद कर लो और अब होशपूर्वक बैठ कर विचार करो। अब तो विचार कर ही न सकोगे। अब तो विचार असंभव है। विचार के लिए द्वैत जरूरी है, अपरिहार्य है। बिना दो के कोई विचार नहीं हो सकता। और विचार के लिए मूर्च्छा भी जरूरी है, बेहोशी भी जरूरी है। जैसे सपने के लिए नींद जरूरी है, वैसे विचार के लिए बेहोशी जरूरी है। और जब आंख भी बंद, कान भी बंद और भीतर होश का दीया जला, फिर कैसा विचार? उसी को तो निर्विचार कहा है। उसी को तो निर्विकल्प समाधि कहा है। ऐसी ही घड़ी में तो आकाश तुम्हारे भीतर उतर आता है। ऐसी ही घड़ी में तो बूंद में सागर समाविष्ट हो जाता है।
छड खाहिशां जग जहान कूड़ा, कहिआ आरफा दा हीए धारिए जी।
योग शुक्ला ने अनुवाद किया हैः "जगत की ख्वाहिशें छोड़ो, जगत झूठा है।
ब्रह्मज्ञानी के कहे हुए को हृदय में धारण करो।"
इस अनुवाद में मैं थोड़ा फर्क करना चाहूंगा, क्योंकि मूल थोड़ा-सा भिन्न है। और मूल ज्यादा मूल्यवान है।
छड खाहिशां जग जहान कूड़ा।
झूठा नहीं कह रहे हैं; जहान को कूड़ा-कचरा कह रहे हैं। इस जगत की ख्वाहिशों को छोड़ दो, आकांक्षाओं को छोड़ दो, वासनाओं को छोड़ दो। नहीं कि संसार झूठा है, बल्कि इसलिए कि संसार कूड़ा है। जैसे रोज सुबह तुम अपने घर को बुहारते हो और कूड़े-कचरे को बाहर फेंक देते हो, ऐसे ही रोज अपने को भी बुहारते रहो, झाड़ते रहो। अपने भीतर कूड़े को इकट्ठे न होने देना। यह मन बड़ा अदभुत है। यह कूड़े-कचरे से भी मोह बना लेता है। यह तो व्यर्थ की चीजों के साथ भी परिग्रह बांध लेता है।
संसार झूठा है, ऐसा नहीं। संसार तो है, वस्तुतः है। अगर संसार झूठा हो
तो दीवार से निकलो, पता चल जाएगा। निकलोगे तो दरवाजे से। दीवार से निकलोगे तो सिर फूटेगा। जहर पीओ, मौत हो जाएगी। पानी पीओ, मरते हो तो फिर श्वास लौट आएगी। क्या तुम सोचते हो बुल्लेशाह जैसे लोग फल, मेवा-मिष्ठान्न न खाकर कंकड़-पत्थर खाते होंगे? कि थाली में परोसा गया भोजन तो वहीं पड़ा रहा और थाली खा जाते होंगे?
नहीं, संसार तो सच्चा है। थाली थाली है, भोजन भोजन है; पत्थर पत्थर है,
फल फल है। यह भेद तो साफ करना होगा। लेकिन कूड़ा है। कूड़े का मतलब यह है कि मूल्यहीन है। पा लो तो भी कुछ पाया नहीं जाता और गंवा दो तो कुछ गंवाया नहीं। मूल्यहीन है, निर्मूल्य है। और इस बात में फर्क हो जाता है। इस बात में यह बुनियादी फर्क हो जाता है कि अगर संसार निर्मूल्य है तो फिर मूल्य कहां है? फिर संपदा कहां है? संपदा स्वयं में है। आंख और कान बंद करो और होश को संभालो, और उस संपदा के मालिक हो जाओ।
कहिआ आरफा दा हीए धारिए जी।
शुक्ला ने अनुवाद किया हैः "ब्रह्मज्ञानी के कहे हुए को हृदय में धारण करो।"

आरिफ शब्द ब्रह्मज्ञानी से ज्यादा बेहतर है। आरिफ का कुल मतलब होता
है जो जानते हैं। ब्रह्मज्ञानी में तो झंझट हो जाती है। ब्रह्मज्ञानी में वही बात मान ली गई कि जगत माया है और ब्रह्म सत्य है। तो माया का त्याग करना है और सत्य को पकड़ना है। और ब्रह्मज्ञानी में तो फिर बुद्ध न आ सकेंगे, क्योंकि वे तो किसी ब्रह्म को मानते नहीं; महावीर भी न आ सकेंगे, क्योंकि वे भी किसी ब्रह्म को नहीं मानते; मैं भी न आ सकूंगा, क्योंकि मैं भी किसी ब्रह्म को नहीं मानता। कोई व्यक्तिगत ईश्वर नहीं है जगत में। कोई ब्रह्म जैसा बैठा नहीं है जिसने बनाया, जो चला रहा है, जो मिटाएगा, जो सम्हाल रहा है। ज्यादा अच्छा हो कि हम कहें--जो जानते हैं।
आरिफ का वही मतलब होता है, जिन्होंने जाना। इससे सीमा नहीं बनती। इसमें फिर क्राइस्ट भी आ जाते हैं, फिर जरथुस्त्र भी आ जाते हैं, मोहम्मद भी आ जाते हैं, बुद्ध भी आ जाते हैं, महावीर भी आ जाते हैं, लाओत्सु भी आ जाते हैं, सुकरात भी आ जाते हैं--जिन्होंने जाना। ब्रह्मज्ञानी शब्द को लाओगे बीच में तो फिर तो शंकराचार्य के मतावलंबी ही शेष रह जाते हैं। क्योंकि बाकी तो कोई ब्रह्म की बात नहीं करते। वह बात संकीर्ण हो जाएगी, छोटी हो जाएगी। उसमें नागार्जुन न आ सकेंगे। क्योंकि नागार्जुन तो कहते हैंः कोई ब्रह्म नहीं है, सब शून्य है। ब्रह्मज्ञानी से तो शून्यज्ञानी कहीं ज्यादा बेहतर शब्द है, ज्यादा विराट। ब्रह्म में तो सीमा बन जाती है, परिभाषा बन जाती है।
मगर मैं तो यह कहूंगा कि शून्य में भी फिर, बड़ी सही, लेकिन सीमा तो बनेगी। अच्छा हो इतना ही, हम आरिफ को आरिफ ही रहने दें। जो जानते हैं। क्यों सीमा दो? क्यों व्याख्या दो? क्यों दीवार उठाओ? क्यों बागुड़ बनाओ? जो जानते हैं, उन्होंने जो कहा है--हीए धारिए जी--उसे हृदय में धारण करो। और यह हीए शब्द याद रखने जैसा है। यह बुद्धि में न चला जाए, नहीं तो भटक गए। यह खोपड़ी में न चला जाए, नहीं तो किसी काम न आएगा। यह तो हृदय में प्रविष्ट हो, यह तो भावना को रंग दे, यह तो तुम्हारी प्रीति में पग जाए।
तुम्हारे तर्क में नहीं, तुम्हारे प्रेम में। तुम्हारे विचार में नहीं, तुम्हारे शून्य में। यह बुद्धिवाद नहीं है, यह रहस्यवाद है।
छड खाहिशां जग जहान कूड़ा।
यह संसार कूड़ा-कर्कट है। इसकी ख्वाहिशें न करो। इसकी चाहें न करो।
कहिआ आरिफा दा हीए धारिए जी।
और जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने यही कहा है। उनकी बात को हीए धरो।
पैरी पहन जंजीर बेखाहिशी दी।
प्यारी उलटबांसी है। और पैरों में बेख्वाहिशों की जंजीर पहन लो। क्या बात कही! जंजीर तो ख्वाहिश की होती है, वासना की होती है, तृष्णा की होती है। बेख्वाहिश की जंजीर नहीं होती। मगर तुम जंजीर की भाषा समझते हो, इसलिए बुल्लेशाह जंजीर की बात कर रहे हैं। तुम तो जंजीर के अतिरिक्त और कुछ जानते ही नहीं, इसलिए बेख्वाहिश की जंजीर पहन लो--तुम्हें राजी करने को कि चलो तुम्हें जंजीर ही पहननी है तो ठीक है, बेख्वाहिश की जंजीर पहन लो। बिना जंजीर के तुम्हारा जी नहीं मानता, तुम तो कुछ पहनोगे ही तो चलो बेख्वाहिश की जंजीर पहन लो। लेकिन बेख्वाहिश की कहीं जंजीर होती है? यह वही बात फिर से कही है--गोशे बैठ के बात विचारिए जी। होश में बैठ जाओ, आंख-कान बंद कर लो और अब विचारो। अब क्या खाक विचारोगे? अब विचारोगे तो क्या विचारोगे? विचार के लिए कोई विषय ही न बचा। विषय तो आंख और कान से आते हैं। और बेख्वाहिश की जंजीर पहन लो। बेख्वाहिश तो मुक्ति है। वासनारहित हुए कि मुक्त हुए। वासना ही जंजीर है।
मगर, चूंकि तुम्हारी भाषा में बोलना पड़ता है, इसलिए वे कहते हैं कि चलो, तुम्हें जंजीर बहुत प्यारी है, जन्मों-जन्मों से प्यारी है; हम भी एक नई जंजीर बताते हैं, पहन लो। पहन लोगे तब जान लोगे कि यह जंजीर न थी, कि धोखा खा गए।
पंडित लज्जाशंकर झा ने दो-तीन दिन पहले प्रश्न पूछा था कि आपने इस स्थान का नाम आश्रम क्यों रखा है, क्योंकि यहां आश्रम जैसा तो कुछ दिखाई पड़ता नहीं। न मंदिर है, न पूजा है, न पाठ है, न यज्ञ है, न हवन है। न लोग गीता, वेद, उपनिषद बैठ कर पढ़ रहे हैं। न कोई वृक्षों के नीचे गुरु बैठे हैं और

शिष्य माला जप रहे हैं। कुछ भी तो नहीं है यहां आश्रम जैसा, इसे आपने आश्रम क्यों नाम दिया?
यूं ही समझना जैसे बुल्लेशाह ने कहा--गोशे बैठ के बात विचारिए जी। चुप
हो जाओ, आंख-कान बंद करो, होश को जगा लो और अब विचारो। या यूं--पैरी पहन जंजीर बेखाहिशी दी। पहन लो पैर में जंजीर बेख्वाहिश की, निर्वासना की। तुम जंजीर की भाषा समझते हो, इसलिए वे जंजीर की भाषा बोल रहे हैं। तुम आश्रम की भाषा समझते हो, इसलिए मैंने आश्रम की तख्ती लगा दी। मेरा बस चले तो यह मैकदा है, मधुशाला है। मगर फिर तुम्हें आने में बहुत मुश्किल हो जाएगी। अभी ही मुश्किल होती है। आश्रम की तख्ती देख कर भी लोग डर कर निकल जाते हैं, क्योंकि भीतर जो पीए हुए बैठे हैं, इनकी मस्ती की खबरें बाहर तक पहुंचने लगी हैं।
पंडित लज्जाशंकर झा जैसे लोगों को फांसने के लिए आश्रम लिख दिया। जैसे मछली को फांसते हैं न, तो कांटे में आटा लगा देते हैं, फिर बंसी लेकर बैठ जाता है मछुआ। मछली कांटा तो निगलेगी नहीं, आटा निगलेगी। आटा निगलने में कांटा निगल जाएगी। अब जैसे लज्जाशंकर झा यहां आ गए आश्रम समझ कर, अब थोड़ी-बहुत छींटा-छांटी तो हो ही जाएगी। अब बिल्कुल वही तो नहीं जा सकते जैसे आए थे। कितनी ही लज्जा करें, कितना ही घूंघट मारें। देखा, मारवाड़ी स्त्रियां घूंघट भी मारती हैं तो दो अंगुलियों से देखती रहती हैं कि क्या हो रहा है! ऐसे लज्जाशंकर देख रहे होंगे दो अंगुलियों से कि हो क्या रहा है आश्रम में! यह माजरा क्या है! बस उतने में ही तो बात हो जाएगी। अरे, रंध्र मिल जाए जरा-सी, संध्र मिल जाए और मैं प्रवेश हो जाऊंगा। कहीं से अवसर तो बने।
ठीक कहते हैं बुल्लेशाहः
पैरी पहन जंजीर बेखाहिशी दी, इस नफस नूं कैद कर डारिए जी।
नफस का अर्थ होता है क्षण, क्षणभंगुरता। यह जो समय की धारा है जिसमें
हम जी रहे हैं, जन्मे हैं, जिसमें से हम गुजर रहे हैं, यह तो क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। यह जो क्षण-क्षण बदल रहा है, इसमें ही उलझे मत रह जाना, क्योंकि इसके पार एक शाश्वत का लोक है। एस धम्मो सनंतनो। इस क्षण से तो पार उठ जाना है, इस समय से तो पार उठ जाना है। क्योंकि इस क्षण में जो जीएगा वह ठीक से जी ही न पाएगा। क्षण में क्या जीना! मौत तो हमेशा द्वार पर दस्तक दे रही है। कब आ जाएगी कौन जाने। अभी आ जाए। आई ही खड़ी हो। एक क्षण के बाद का भी तो भरोसा नहीं है।
इसलिए हम अपने देश में समय को भी काल कहते हैं और मृत्यु को भी काल कहते हैं। हमारी भाषा दुनिया में अकेली भाषा है जिसने मृत्यु को और समय को एक ही नाम दिया है--काल। फिर काल से ही हमारा कल बना। उस संबंध में भी हमारी भाषा अकेली भाषा है दुनिया में। बीते हुए कल को भी हम कल कहते हैं और आने वाले कल को भी कल कहते हैं। दुनिया की सब भाषाओं में अलग-अलग शब्द होते हैं। जो बीत गया उसके लिए अलग शब्द, जो आने वाला है उसके लिए अलग शब्द। सिर्फ हम हैं पृथ्वी पर अकेले, जो बीते को भी वही नाम देते हैं और आने वाले को भी वही नाम देते हैं। क्योंकि हमने देखा, हमारे आरिफों ने देखा, जानने वालों ने देखा कि जो गया वह भी नहीं है और जो आ रहा है वह भी नहीं है, दोनों नहीं हैं। अलग नाम क्या देना? अलग नाम देने से फायदा क्या है? अतीत न हो चुका, भविष्य अभी हुआ नहीं; दोनों नकार हैं। दोनों का अनस्तित्व है। दोनों में एक ही समानता है कि दोनों नहीं हैं। जो है वह तो अभी का क्षण है।
और इस एक क्षण में क्या करोगे? कैसे जीओगे? यह क्षण बहुत छोटा है। इसमें जीना संभव नहीं है। यह आंगन इतना छोटा है, तिरछा भी होता तो नाच लेते, मगर यह आंगन इतना छोटा है कि इसमें नाचोगे कैसे? इसमें उठने-बैठने की भी जगह नहीं है। नाचना तो बहुत दूर, इसमें हिलने-डुलने का भी उपाय नहीं है। तुम हिले-डुले कि यह गया। जैसे ही तुम्हें ख्याल आया यह क्षण, वह तुम्हारे हाथ से खिसक गया। हिलने-डुलने की भी बात नहीं है। जैसे ही तुमने कहा, अरे! यह क्षण! गया।
मैं एक कविता पढ़ रहा था। छोटी-सी कविता है--वसंत आ गया। पहली पंक्ति शुरू होती है--वसंत आ गया। और आखिरी पंक्ति समाप्त होती है--वसंत आ, गया। बस आ और गया को तोड़ दिया है। एक ही शब्द है, वही शब्द शुरुआत--आ गया; और वही

शब्द अंत--आ, गया। ऐसा ही क्षण है। आ भी नहीं पाता कि गया। तुमने पकड़ा भी नहीं कि गया। तुमने ख्याल भी किया कि यह क्षण--आ, गया! इतने छोटे क्षण में कैसे जीओ? कैसे उत्सव मनाओ? कैसे नाचो? सुविधा कहां? शाश्वत चाहिए उत्सव के लिए।
इसलिए ठीक कहते हैं बुल्लेशाहः समय को जीत लो। इस नफस को कैद कर लो।
इस काल के पार उठ जाओ।
जा जान देवें जान रूप तेरा, बुल्लाशाह एह खुशी गुजारिए जी।
"अगर अपनी जान जाने दो तो अपना रूप जानो।"
और एक ही शर्त हैः स्वयं को जानना हो तो स्वयं को खोना पड़ेगा। बूंद अगर जानना चाहती है कि मैं कौन हूं तो उसे सागर में डुबकी मारनी होगी। मगर सागर में डुबकी मारते ही खो जाएगी। सागर में प्रवेश करते ही खो जाएगी। मगर खोकर ही पाएगी कि मैं सागर हूं।
अहंकार बूंद है और हम सागर हैं। जब तक हम अहंकार को पकड़े बैठे हैं और
कह रहे हैं--यह मैं हूं, यह मैं हूं, यह मेरी जाति, यह मेरा धर्म, यह मेरा देश, यह मेरा नाम, यह मेरा पता, यह मेरा ठिकाना, यह मेरा कुल, यह मेरा गोत्र--तब तक हम भटके रहेंगे। तब तक हमें अपना कोई भी पता नहीं है। क्योंकि न हमारी कोई जाति है, न हमारा कोई कुल, न हमारा कोई गोत्र। हम जन्मे ही नहीं तो जाति कैसे होगी? हम जन्मे ही नहीं तो क्या हमारा कुल होगा? क्या हमारा गोत्र होगा? कैसे हम ब्राह्मण हो सकते हैं, कैसे हम शूद्र हो सकते हैं, कैसे हम वैश्य हो सकते हैं, कैसे हम क्षत्रिय हो सकते हैं? और कैसे हम हिंदू, कैसे हम मुसलमान, कैसे हम ईसाई हो सकते हैं? हम तो शुद्ध चैतन्य हैं।
मगर ये अहंकार की सीमाएं हमारे उस विराट चैतन्य को अनुभव नहीं होने देतीं। हमारी आंखों पर परदे पड़े हैं। उन परदों के कारण हम परदों के भीतर जितना छोटा-सा जगत है, उसको ही अपना सब कुछ मान लेते हैं। जरा पर्दा उठाने... ।
और कभी-कभी यूं होता है, आंख में धूल का छोटा-सा कण पड़ जाए, जरा-सी किरकिरी पड़ जाए आंख में, कि पूरा हिमालय तुम्हारे सामने खड़ा हो, अपने विराट सौंदर्य को लिए हुए, तो भी आंख में पड़ा हुआ छोटा-सा धूल का कण हिमालय को छिपा लेता है। जरा-से धूल के कण की ओट में विराट हिमालय विलीन हो जाता है। तारों से भरा आकाश हो, मगर आंख में किरकिरी पड़ गई, फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
बस इतनी-सी छोटी-सी किरकिरी है हमारी, उसी से हमारा सारा जीवन किरकिरा
हो गया है। अहंकार धूल का एक छोटा-सा कण है जो हमारी आंख पर बैठ गया है। उसे पोंछ डालो। उसको पोंछने के लिए बुल्लेशाह कहते हैंः
जा जान देवें जान रूप तेरा।
जो अपनी जान देने को तैयार हैं, अपने अहंकार का भाव देने को तैयार हैं,
जो मिटने को तैयार हैं, जो शून्य होने को तैयार हैं, वे ही जान पाएंगे स्वयं के रूप को। और जिन्होंने स्वयं के रूप को जाना उन्होंने सर्व के रूप को भी जान लिया। क्योंकि वे दोनों बातें अलग नहीं हैं। बूंद ने अपने सागर-रूप को जान लिया कि सारे बूंदों के स्वभाव को जान लिया।
जा जान देवें जान रूप तेरा, बुल्लेशाह एह खुशी गुजारिए जी।
बुल्लेशाह कहते हैं, अगर जिंदगी को खुशी में गुजारना है, अगर जिंदगी
को आनंद का एक उत्सव बना लेना है, तो एक ही रास्ता हैः अहंकार को मिट जाने दो। अहंकार दुख है, अहंकार नर्क है। अहंकार के अतिरिक्त न कोई दुख है न कोई नर्क है। और जहां अहंकार गया वहीं स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं। और वे द्वार तुम्हारे भीतर हैं। स्वर्ग तुम्हारी स्वाभाविकता है। नर्क तुम्हारी भ्रांति है। नर्क है अपने को भूल जाना; स्वर्ग है अपने को पहचान लेना।
योग शुक्ला, बुल्लेशाह की यह काफी भी प्यारी है। बुल्लेशाह जैसे लोग
जो भी कहते हैं वह प्यारा ही होता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, भगवान बुद्ध ने भी वर्षों प्रवचन दिए, परंतु आज भारत में उनके अनुयायी नहीं के बराबर हैं। क्या आपके प्रवचन का प्रतिफलन

भी विदेशों में ही लोकप्रिय होगा, इस देश में नहीं? क्या कारण है कि आपके प्रवचन से अभी तक भारतवासी प्रभावित नहीं हो रहे हैं?

जगन्नाथ महतो, भारत के पैरों में कुछ गहरी जंजीरें हैं। भारत की आंखों में बहुत प्राचीन धूल की पर्तें हैं। भारत का मन गुलाम है। भारत की आत्मा गुलाम है। भारत जीया है अंधविश्वासों में। और इतनी लंबी सदियों से अंधविश्वासों में जी रहा है कि जब भी कभी इन अंधविश्वासों को तोड़ने की कोशिश की गई तो हमने प्राणपण से अपने अंधविश्वासों की रक्षा की है। निश्चित ही, तुम ठीक कहते हो कि आज बुद्ध के मानने वाले भारत में न के बराबर हैं। और जो हैं भी थोड़े-से, उनको भी बुद्ध से कुछ लेना-देना नहीं है। वे तो मानने वाले हैं बाबा साहब भीमराव अंबेदकर के। उनको बुद्ध से क्या लेना-देना?
अंबेदकर को बुद्ध से क्या लेना-देना था? अंबेदकर शुद्ध राजनीतिज्ञ थे। धर्म से उनका क्या नाता था, क्या संबंध था? उन्होंने हरिजनों और खासकर महारों को महाराष्ट्र में--खुद महार थे, मराठी थे--तो महाराष्ट्र के महारों को हिंदुओं से कैसे अलग कर लिया जाए, इसके लिए बुद्ध धर्म को चुना। और ऐसा भी कुछ नहीं था कि बुद्ध धर्म से उन्हें खास लगाव था। उनकी जिंदगी में कई मोड़ आए। कई दफे उन्होंने सोचा कि मुसलमान हो जाएं सबको ले कर। कई दफा सोचा कि सबको लेकर ईसाई हो जाएं।
लेकिन शायद बहुत-से महार, बहुत-से हरिजन इतने दूर तक उनके साथ जाने को राजी न होते। मुसलमान होना, ईसाई होना जरा दूर की यात्रा हो जाती। बुद्ध इतने दूर नहीं मालूम पड़ते। कुछ भी हो, बुरे-भले जैसे भी हों, यूं हिंदुओं ने स्वीकार तो किया ही है कि हमारे दसवें अवतार हैं। हैं तो अवतार; थोड़े गलत किस्म के अवतार हैं, हिंदुओं ने कहा। कुछ ढंग के नहीं हैं, कुछ बेढंगे हैं। कुछ चाल वेद के अनुकूल नहीं है, वेद के प्रतिकूल है। मगर कुछ भी हो, हैं अवतार।
तो हिंदुओं को मुसलमान बनाना या ईसाई बनाना जरा दूर का पड़ाव होता, बहुत कम लोग जाने को राजी होते। इसलिए फिर अंततः राजनीतिक दांव-पेंच की वजह से अंबेदकर ने तय किया कि अपने अनुयायियों को लेकर बौद्ध हो जाएं। यह राजनैतिक काम था। इसमें बुद्ध से कुछ लेना-देना नहीं। ये जो थोड़े-से आज बौद्ध दिखाई पड़ते हैं, ये बाबा साहब अंबेदकर के अनुयायी हैं।
तुम्हारा पूछना महत्वपूर्ण है जगन्नाथ महतो कि क्या हुआ, बुद्ध चालीस-बयालीस वर्षों तक सतत बोलते रहे और सारा एशिया बुद्ध से प्रभावित हुआ, सारा एशिया आंदोलित हो उठा, सिर्फ भारत को छोड़कर!
तो या तो कसूर बुद्ध का हो या कसूर भारत का हो। बुद्ध का कसूर हो नहीं सकता। हां, अगर कसूर इसको ही कहो तो बात और कि उन्होंने सत्य को जैसा था वैसा ही कह दिया। सीधा-सीधा कह दिया, नग्न कह दिया। भारत के पांडित्य के वस्त्र उसे न पहनाए। और मैं कहता हूं अच्छा किया कि न पहनाए। भारत ने माना या न माना, लेकिन बुद्ध ने अपनी ओर से चेष्टा में कोई कमी नहीं की। भारत को जगाने का जैसा अथक प्रयास बुद्ध ने किया, न उनके पहले किसी ने किया था, न उनके बाद किसी ने किया।
और मैं तुमसे कहता हूंः सत्य के रास्ते पर असफल हो जाना असत्य के रास्ते पर सफल हो जाने से लाख दर्जा बेहतर है। बुद्ध की असफलता में भी राम और कृष्ण की सफलता से कहीं ज्यादा मूल्य है। बुद्ध एक ही तो बगावती पुरुष हैं। भारत के जीवन में अगर कहीं कोई नमक है तो वह बुद्ध के कारण है; थोड़ा कुछ स्वाद है तो बुद्ध के कारण है। नहीं तो भारत बिल्कुल बेस्वाद होता। क्यों बुद्ध को नहीं सुना जा सका? कई कारण हैं। पहला कारण तो भारत के पंडित हैं, पुरोहित हैं। उनका जाल पुराना है, कोई दस हजार साल पुराना है। और बुद्ध जैसा व्यक्ति जब भी कहीं पैदा होगा तो पंडित और पुरोहित उसके विपरीत खड़े हो जाएंगे। क्योंकि उसकी चोट उनके पूरे धंधे को ही तोड़ने लगती है। उसकी चोट में उनकी मूर्तियां गिरने लगती हैं, उनके मंदिर भूमिसात होने लगते हैं। उसकी चोट में उनके शास्त्र उखड़ने लगते हैं। उसकी चोट में लोग जागने लगते हैं और देखने लगते हैं कि पंडित तो केवल दुकानदार है, व्यवसायी है, शोषक है। उसकी मौजूदगी में साफ दिखाई पड़ने लगता है कि पंडित

तो केवल बासी बातें दोहरा रहा है, तोते की तरह दोहरा रहा है। क्योंकि बुद्ध की मौजूदगी में तुलना हो सकती है।
पंडित बुद्ध जैसे व्यक्ति को क्षमा नहीं कर सकते। असंभव है। उनके न्यस्त स्वार्थ इसके विपरीत हैं। और दुनिया में पंडितों और पुरोहितों का इतना बड़ा जाल और इतना लंबा जाल और कहीं नहीं है। यह भारत का दुर्भाग्य है कि यहां सारा जाल इतना प्राचीन हो चुका है कि उसे तोड़ना मुश्किल होता है। वह हमारे रग-रेशे में समा गया है। कोई वेद के खिलाफ कुछ कहे, बस! न तुमने वेद देखा है, न तुमने वेद पढ़ा है, न वेद से तुम्हें कुछ लेना-देना है। लेकिन कोई वेद के खिलाफ कुछ कहे, बस झगड़ा खड़ा हुआ। तुम सुनने को ही राजी नहीं। भारत में आज भी लोग कहे चले जाते हैं कि वेद ईश्वरीय है, ईश्वर ने रचा है। बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है। पढ़े-लिखे लोग, सुशिक्षित लोग, विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले लोग भी यही मूढ़तापूर्ण बात कहते हैं कि वेद ईश्वर ने रचा है। और जरा वेद को कहीं से भी तो उलट कर देख लो तुम्हें साफ हो जाएगा कि ये बातें ईश्वर ने कैसे रची होंगी। हर वेद की ऋचाओं का जो अध्याय है उसके पहले ही ऋषि का नाम दिया हुआ है कि किस ऋषि के ये सूत्र हैं। और उन सूत्रों से जाहिर होता है कि वे मनुष्यों के रचे हुए हैं। कोई ब्राह्मण कह रहा है कि इस साल, हे इंद्र देवता! मेरे खेत में अच्छी तरह वर्षा करना। मैं खूब दान-दक्षिणा दूंगा, यज्ञ करूंगा। तुम्हें खूब सोमरस पिलाऊंगा।
अब जरा सोचो, क्या यह भगवान लिखेगा? भगवान का खेत! और मेरे खेत में वर्षा ठीक से कर देना, यह तो किसी आदमी की ही बात हो सकती है। यह तो इतनी साफ है कि किसी बच्चे को भी समझाने की जरूरत नहीं। और मामला यहीं खतम नहीं होता। मेरे खेत में ज्यादा वर्षा करना और पड़ोसी के खेत में वर्षा हो ही न, तो चढ़ौत्तरी खूब चढ़ाऊंगा। यह तो और भी बात बिगड़ गई। यह तो मानवीय भी न रही, अमानवीय हो गई। और मेरी गऊओं के थन में दूध बढ़ जाए और पड़ोसी की गऊओं के थन का दूध बिल्कुल सूख ही जाए। यह ईश्वर कहेगा? ईश्वर का कौन पड़ोसी? सब गऊएं उसकी हैं। सबै भूमि गोपाल की! सारी भूमि उसकी है। कौन-सी मेरी और कौन-सी तेरी? वहां भी मेरा-तेरा चल रहा है?
तो बुद्ध ने यही कहा कि वेद कोई ईश्वरीय शास्त्र नहीं है। कोई शास्त्र ईश्वरीय नहीं है। सब शास्त्र आदमियों ने रचे हैं। और आदमियों में कई तरह के आदमी हैं। कुछ तो आरिफों ने रचे हैं--जिन्होंने जाना। शायद वहां कुछ सत्य की दूर की ध्वनि सुनाई भी पड़ जाए। मगर ये गऊओं के थनों में दूध बढ़ जाए, इसकी प्रार्थना करने वाले लोग आरिफ नहीं हो सकते। यह मेरे खेत में ज्यादा वर्षा हो जाए और पड़ोसी के खेत में ज्यादा वर्षा न हो, ये आरिफ नहीं हो सकते। बुल्लेशाह ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकते। कबीर ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकते। बुद्ध ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकते।
बुद्ध ने तो अपने शिष्यों को कहा है कि तुम जब ध्यान करो और ध्यान में
जब तुम आनंदित हो उठो तो ध्यान की पूर्णाहुति हमेशा इस बात से करना कि मेरे ध्यान से जो भी आनंद मुझे मिला है, समस्त प्राणियों में बंट जाए-- समस्त प्राणियों में बेशर्त बंट जाए, मेरा ही न रह जाए। क्योंकि जो मेरा रहेगा तो मर जाएगा। और जो सब में बंट गया तो बच जाएगा। बांटने से बढ़ता है, रोकने से घटता है।
एक आदमी ने बुद्ध से जाकर कहा था कि आप कहते हैं तो करूंगा, इतनी भर आज्ञा चाहता हूं कि मेरा जो पड़ोसी है बहुत दुष्ट, उसको छोड़ कर मैं कह सकता हूं कि सबको मिल जाए। मुझे जो आनंद मिल रहा है ध्यान से, पड़ोसी को छोड़ कर सारे जगत को मिल जाए--पशुओं को, पक्षियों को, पौधों को, पहाड़ों को, जिसको कहो--मगर यह मुझसे न हो सकेगा कि इस दुष्ट को मिल जाए। इसको भर छोड़ने की आज्ञा दे दें।
बुद्ध ने कहा, उसके छोड़ने में ही सब गड़बड़ हो जाएगी। क्योंकि मैं वही
मन तो बदलना चाहता हूं, जो दोस्ती और दुश्मनी की भाषा में सोचता है; जो अपने और पराए की भाषा में सोचता है; जो मैं और तू के भेद में सोचता है। उस पड़ोसी को तो पहले मिले, फिर और सबको मिले--ऐसा तू ध्यान करना। ध्यान जब आए और आनंद जगे तो कहना, पहले मेरे पड़ोसी को मिल जाए और फिर सबको। पड़ोसी को पहले मिलना ही चाहिए। पड़ोसी है, तेरे से आनंद की धारा बहेगी तो पहले तो उसी

को छुएगी। फिर औरों को छुएगी, फिर दूर चांद-तारों को छुएगी। और तू कहता है, पड़ोसी को ही न मिले! तो फिर धारा बहेगी ही कैसे? यहीं अड़चन आ जाएगी, यहीं पत्थर पड़ जाएगा।
वेद में जो कुछ कहा है, वे आदमी की कामनाएं हैं, आदमी की वासनाएं हैं। बुद्ध ने कहा कि वेद मनुष्यकृत हैं--और वह भी बहुत साधारण मनुष्यों द्वारा निर्मित हैं, जिनकी कोई महत्वपूर्ण बातें भी नहीं। कहीं कभी-कभार भूल-चूक से वेद में कोई सूत्र मिल जाता है, जो प्रशंसा के योग्य है। एक प्रतिशत, इससे ज्यादा नहीं। निन्यानबे प्रतिशत तो कूड़ा-कचरा है।
इस बात को सुनते ही पंडित नाराज हो गए। और पंडितों का पूरा का पूरा जो आयोजन था सारे जगत को ग्रसित किए हुए, उसने बुद्ध के खिलाफ जिहाद छेड़ दी। इसलिए बुद्ध को सुना नहीं जा सका। शायद मुझे भी नहीं सुना जा सकेगा। कोशिश करूंगा, कोशिश कर रहा हूं।
मगर मुझे इसकी बहुत फिक्र भी नहीं है, और बुद्ध को भी इसकी बहुत फिक्र थी, ऐसा मत मानना। जो सुन सकते हैं वे सुन लेंगे। जिनके काम का है उन्हें मिल जाएगा। जिनके पास थोड़ी बुद्धिमत्ता है वे पी लेंगे। और बुद्धुओं के लिए क्या किया जा सकता है! फिर वे भारतीय हों या गैर-भारतीय, बुद्धू तो बुद्धू। और इस देश में बुद्धुओं की लंबी परंपरा है, लंबीशृंखला है।
भारत जैसे मरना ही भूल गया है। और चूंकि मरना भूल गया, इसलिए लाशें रह गईं। मरना भूल गया, इसलिए पुनरुज्जीवित होना भी भूल गया। बूढ़ों को मरना चाहिए ताकि बच्चे जी सकें। इस देश में बूढ़े जिंदा हैं, इसलिए बच्चे तो पैदा ही नहीं हो पाते; या होते हैं तो बूढ़े ही पैदा होते हैं।
फिर, भारत कहने को आस्तिक है, लेकिन वस्तुतः आस्तिक नहीं, नास्तिक है। क्योंकि तुम्हारा सारा धर्म नकार पर खड़ा है। यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो--यह नकार है। संसार असत्य है, माया है, छोड़ो! घर-गृहस्थी माया है, छोड़ो! भागो! यह जो भगोड़ापन है, यह नकार है। और जहां नकार है वहां नास्तिकता है। तो हमारी आस्तिकता ऊपर से ओढ़ी हुई राम-नाम चदरिया है। भीतर कुछ और चल रहा है, बाहर हम कुछ और ओढ़े बैठे हुए हैं।
बुद्ध ने हमारी चदरिया छीन ली और कहा कि पहले अपनी असलियत देखो, क्योंकि असलियत में ही क्रांति हो सकती है। पहले अपने जीवन का सत्य समझो तो ही तुम्हारे जीवन में क्रांति हो सकती है। और अगर उस सत्य को नहीं देखा तो तुम थोथे आस्तिक बने रहोगे। मगर गहरे में तो तुम नास्तिक ही रहोगे। असली आस्तिक होने के पहले व्यक्ति को नास्तिकता की अग्नि से गुजरना पड़ता है। जिसने नहीं कहना ही नहीं सीखा, वह हां क्या खाक कहेगा! उसकी हां में बल नहीं होगा। उसकी हां नपुंसक होगी। बुद्ध ने नास्तिकता से गुजरने का पाठ दिया। बजाय इसके कि भारत उनके पाठ को सीखता, भारत ने उन्हीं को नास्तिक करार दे दिया।
मैं भी तुमसे यही कहता हूं कि पहले नास्तिक। नास्तिकता की तलवार से काट डालो सारे अंधविश्वास, सब पाखंड। गिरा दो सब जंजीरें। तोड़ दो सब अंधकार। और जब नास्तिकता से तुम सब सफाई कर चुको तो फिर तुम बीज बो देना फूलों के। उनसे जो फूल खिलेंगे वे आस्तिकता के होंगे। जैसे कोई बगीचा बनाता है तो पहले पत्थर साफ करता है, जमीन गोड़ता है, जड़ें निकालता है, घास-पात उखाड़ता है। यह नास्तिकता का काम है। और फिर बीज बोता है। फिर फूल आते हैं, वसंत आता है।

क्या उसका गिला कीजै, उसे प्यार ही कब था?
वो अहदे-फरामोश, वफादार ही कब था?
उसने तो सदा पूजे हैं उड़ते हुए जुगनू;
वो चांद-सितारों का परस्तार ही कब था?
हम डूब गए जागती रातों के भंवर में;
हाथ उसका हमारे लिए पतवार ही कब था? आमों की हसीं ऋतु के सिवा भी तो वे कूके; लेकिन किसी कोयल का ये किरदार ही कब था? आवाज जो मैं दूं तो किसी और को छू ले; इस आंख-मिचौली से वो बेजार ही कब था?

मशहूरे-जमाना है "कतील" उनकी उड़ानें;
वो दामे-मुहब्बत में गिरफ्तार ही कब था?
तुम ठीक कहते हो, क्या मेरी बात भी परदेस के लोग ही समझ पाएंगे!
देस-परदेस का मैं तो कुछ फासला नहीं करता। जिसकी प्यास होगी वह समझ पाएगा।
आमों की हसीं ऋतु के सिवा भी तो वे कूके
लेकिन किसी कोयल का ये किरदार ही कब था?
आवाज जो मैं दूं तो किसी और को छू ले;
मैं तो आवाज दे रहा हूं, जिसको छू सकती है उसी को छुएगी।
आवाज जो मैं दूं तो किसी और को छू ले;
इस आंख-मिचौली से वो बेजार ही कब था?
यह भारत तो जमाने हो गए, तब से अंधविश्वासों में जी रहा है। इसने सत्य
की खोज तो कब से बंद कर दी है। पुकार तो मैं दूंगा, आवाज तो मैं दूंगा; दे रहा हूं; लेकिन उनको ही सुनाई पड़ेगी जो सुनने को राजी हैं। इतना ही करो कि दरवाजा खुला रखो।
कम से कम तुम तो सुनो, जगन्नाथ महतो! औरों की फिक्र छोड़ो। क्योंकि तुम्हारे और दूसरे प्रश्न भी हैं। उनसे जाहिर होता है कि तुमको भी सुनाई नहीं पड़ रहा। तुम्हारे दूसरे प्रश्न भी हैं, जिनसे साबित होता है कि यह प्रश्न तुमने अपने ही बाबत पूछा है, नाम भारतीयों का ले रहे हो।

दिल दर्द की शिद्दत से खूंगश्ता व सीपारा,
इस शहर में फिरता है इक वहशी व आवारा
शायर है कि आशिक है,
जोगी है कि बंजारा!
दरवाजा खुला रखना!
सीने से घटा उट्ठे, आंखों से झड़ी बरसे, फागुन का नहीं बादल जो चार घड़ी बरसे!
बरखा है ये भादों की बरसे तो बड़ी बरसे। दरवाजा खुला रखना!

आंखों में तो इक आलम, आंखों में तो दुनिया है, ओंठों पे मगर मुहरें, मुंह से नहीं कहना है। किस चीज को खो बैठा,
क्या ढूंढने निकला है?
दरवाजा खुला रखना!

हां, थाम मुहब्बत की गर थाम सके डोरी,
साजन है तेरा साजन, अब तुझसे तो क्या चोरी। यह जिसकी मुनादी है, बस्ती में तेरी गोरी। दरवाजा खुला रखना!

शिकवों को उठा रखना, आंखों को बिछा रखना, इक दीया दरीचे की चौखट पे जला रखना।
मायूस न फिर जाए, हां पासे-वफा रखना।
दरवाजा खुला रखना!
दरवाजा खुला रखना!!
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
दसवां प्रवचन

समाधि की सुवास

पहला प्रश्नः ओशो, आपने उस दिन आद्य शंकराचार्य का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया था, उस पर विस्तार से प्रकाश डालें--
तत्वं किमेकं शिवमद्वितीयं,
किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति।
त्याज्यं सुखं किम स्त्रियमेव,
सम्यग देयं परमं किम त्वभयं सदैव।।
एक तत्व क्या है? अद्वितीय शिव-तत्व ही। सबसे उत्तम क्या है? सच्चरित्र। कौन सुख छोड़ना चाहिए? सब प्रकार से स्त्री का सुख ही। परम दान क्या है? सर्वदा अभय ही।

सहजानंद, मैं तो इस सूत्र से किसी भी भांति राजी नहीं हो सकता हूं। इसमें बुनियादी भ्रांतियां हैं। जैसेः "सबसे उत्तम क्या है?" शंकराचार्य कहते हैंः "सच्चरित्र।"
सबसे उत्तम है समाधि। सच्चरित्रता तो समाधि की सहज परिणति है, परिणाम है। समाधि है तो चरित्र अपने आप चला आता है, जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया चली आती है। अब कोई पूछे कि तुम दोनों में कौन महत्वपूर्ण है--छाया या तुम? तो आद्य शंकराचार्य कुछ भी कहें, मैं तो यही कहूंगा कि तुम महत्वपूर्ण हो। क्योंकि छाया तुम्हारे पीछे आती है। छाया अनुषंग है। छाया को तुम्हारे बिना लाया नहीं जा सकता। और तुम चाहो तो भी छाया को छोड़ कर नहीं आ सकते। छाया तुमसे संयुक्त है। लेकिन छाया की कोई आत्मा नहीं है। आत्मा तो तुम हो। तो आत्मा को श्रेष्ठ तत्व कहूं या छाया को? आद्य शंकराचार्य की भी सील लगी हो तो भी मैं क्या करूं?
लेकिन इस तरह के भ्रांतिपूर्ण वचनों ने मनुष्य को बहुत भरमाया, बहुत भटकाया है। जब सच्चरित्रता को हम श्रेष्ठ कह देते हैं तो लोग समाधि की चिंता छोड़ कर चरित्रवान बनने की चेष्टा में लग जाते हैं। और चरित्र तो बनेगा कैसे? चरित्र तो आएगा कहां से?
हां, यह तुम कर सकते हो कि जमीन पर चाहो तो स्याही फैला कर छाया बना लो। मगर वह छाया छाया नहीं होगी। न तो सूरज के साथ बढ़ेगी न घटेगी, न दिन और रात के कारण उसमें कोई भेद पड़ेगा। उसमें कोई जीवन ही न होगा। वह तो मुर्दा होगी। वह परिस्थिति के अनुकूल रूपांतरित नहीं हो सकेगी। उसमें लोच नहीं होगी। उसे छाया कहना भी ठीक नहीं। वह तो केवल छाया की भी तस्वीर है।
छाया का भी एक अपना जीवन होता है।
एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी। और उसने ऊगते सूरज में बनी अपनी छाया देखी, बहुत लंबी छाया। सोचा मन में... । लोमड़ी ही थी। जब आद्य शंकराचार्य ऐसा सोच सकते हैं तो लोमड़ी को तो तुम क्षमा कर देना। सोचा उसने कि जब मेरी छाया इतनी बड़ी है तो आज मुझे नाश्ते में अगर एक हाथी न मिला तो भूखी मर जाऊंगी। हाथी न मिले तो कम से कम ऊंट तो मिले ही मिले। नाश्ते के लिए। उसका तर्क ठीक है। लोमड़ियां बड़ी तर्कशास्त्री होती हैं। छाया जब इतनी बड़ी है तो मूल कितना बड़ा न होगा! सीधा गणित है। और लोमड़ी जब हाथी या ऊंट की तलाश में निकली तो कहां पाती? दोपहर हो गई। पेट पीठ से लगने लगा। भूख भारी। मगर जब तक ऊंट या हाथी न मिले, नाश्ता कैसे करे? भूखे हालात में थोड़ा बोध आया। भूख जगा सकती है। पीड़ा जगाती है। यह पीड़ा का उपकार है। दुख सोने नहीं देता। यह दुख की अनुकंपा है। सुख में आदमी भटक जाए, दुख में नहीं भटक सकता।
भूख ने थोड़ा बोध दिया। कहते हैं न, भूखे भजन न होंई गोपाला! भूखी इतनी
थी कि क्या खाक हाथी और ऊंट की बातें सोचती। सोच उठा कि एक बार फिर से छाया को तो देख लूं। कहीं देखने में कुछ भूल तो नहीं हो गई! और जब छाया देखी तब सूरज सिर पर आ गया था। छाया सिकुड़ कर बहुत छोटी हो गई थी। बस लोमड़ी के नीचे ही बन रही थी। लोमड़ी खिलखिला कर हंसने लगी। और उसने कहा कि हद हो गई! भूल की

भी हद हो गई! अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो भी पेट भर जाए। जब इतनी छोटी छाया है तो मूल कितना छोटा न होगा!
लेकिन छाया से सोचोगे तो यह उपद्रव होने ही वाला है। चरित्र तुम्हारे जीवन की परिधि है, तुम्हारे जीवन का प्राण नहीं। अगर चरित्र को तुमने मूल्यवान माना, जैसे कि सदियों से आदमी मानता रहा है, तो इसके दो ही परिणाम होते हैं। जो चालबाज होते हैं वे पाखंडी हो जाते हैं। जो चालबाज होते हैं वे चेहरे ओढ़ लेते हैं, मुखौटे लगा लेते हैं। कहते कुछ हैं करते कुछ हैं, बताते कुछ हैं, जीते कुछ हैं। उनके बताने में और जीने में विपरीतता होती है। उनके कहने में और करने में विरोध होता है। स्वभावतः, उस विरोध को छिपाना पड़ता है।
इसलिए उनका एक जीवन में दरवाजा होता है जो सामने का दरवाजा है और एक दरवाजा होता है जो पीछे का दरवाजा है। पीछे के दरवाजे से जीते हैं, सामने के दरवाजे पर तो केवल मेहमानों का स्वागत करते हैं। वह जो मुस्कुराहट, वह जो बैठकखाने की सजावट, वह सब सामने के दरवाजे पर है। वे अच्छी-अच्छी बातें, वे प्यारे-प्यारे शब्द, वह शिष्टाचार, सभ्यता, वह सब बाहर के दरवाजे पर है, भीतर के दरवाजे पर तुम बिल्कुल दूसरे ही आदमी को पाओगे--खूंखार, जंगली! देखते हो तुम रोज यह होते। मस्जिदों में लोग प्रार्थना कर रहे हैं, नमाज पढ़ रहे हैं। मंदिरों में पूजा हो रही है। और पूजा के बाद निकलते हैं और मस्जिदों में आग लगा देते हैं। और मस्जिदों की नमाज के बाद निकलते हैं और मंदिरों को जला कर खाक कर देते हैं। मंदिरों में और मस्जिदों में नमाज करने के बाद एक-दूसरे की छाती में छुरे भोंक सकते हैं। न कोई शर्म है, न कोई लाज है, न कोई संकोच है। असली आदमी कौन है? वह जो नमाज में झुक रहा था, वह? या अब यह जो खून का प्यासा होकर तुम्हारे सामने खड़ा है, यह? असली कौन है? वह जो मंदिर में घंटे बजा रहा था, थाली में दीप सजा कर आरती उतार रहा था, फूल की मालाएं पत्थर की मूर्ति के चरणों में रख रहा था, वह? या जिसने अब तुम्हारी मस्जिद में आग लगा दी है, वह? कौन है सच्चा आदमी इन दोनों में? और यह एक ही आदमी कर रहा है दोनों काम।
चालबाज पाखंडी हो जाते हैं। पाखंड का केवल इतना ही अर्थ होता हैः कहेंगे कुछ, करेंगे ठीक उससे उलटा। और जितना उलटा करेंगे उतना ही उन्हें शोरगुल मचाना पड़ेगा, ताकि जो किया है वह शोरगुल में छिप जाए, दब जाए। उन्हें नए से नए मुखौटे तैयार करने पड़ेंगे। उन्हें अपने चेहरे को हमेशा रंगे रहना होगा। उन्हें वस्त्रों के भीतर अपनी नग्नता को छिपाना होगा। तो एक तो यह परिणाम हुआ--सच्चरित्र को श्रेष्ठ घोषित करने का--कि चालबाज पाखंडी हो गए। और जो सीधे-सादे लोग हैं, जिनमें इतनी राजनीति, इतनी कूटनीति नहीं कि पाखंडी हो जाएं, उनका जीवन अपराध-भाव से भर गया। क्योंकि करना तो उन्हें वही पड़ता है जो प्रकृति उनसे करवाती है। अभी इतना बोध कहां? अभी वह समाधि का दीया कहां कि जिसकी रोशनी में चलें? चलना तो अंधेरे में है। और समझाने वाले समझा गए कि टकराना मत दीवारों से, टकराना मत किसी और चीज से, सीधे दरवाजे से निकलना। दरवाजे से निकलना ही सच्चरित्रता है। जो दीवार से टकराए वह चरित्रहीन है।
मगर जिसके पास रोशनी नहीं, जिसके पास ध्यान का दीया नहीं, जिसके पास समाधि का जागरण नहीं, विवेक नहीं, वह टकराएगा न तो क्या करेगा? वह तो टकराएगा ही टकराएगा। यह टकराहट अपरिहार्य है, अनिवार्य है। दीवार से टकराएगा, फर्नीचर से टकराएगा। इधर गिरेगा, उधर गिरेगा। बेईमान होता, चालबाज होता तो अपने गिरने को छिपा लेता। लेकिन सीधा-सादा आदमी है तो अपने मन में ग्लानि अनुभव करता है, अपराध का भाव अनुभव करता है कि मैं पापी, महापापी, कि मैं ठीक से सम्हल कर चल भी नहीं पाता, गिर-गिर जाता हूं, दरवाजा भी नहीं खोज पाता हूं! कैसे जघन्य अपराध नहीं किए होंगे मैंने पिछले जन्मों में! कैसे महान पातकों से नहीं मेरी छाती दबी है! मेरा कैसे उद्धार होगा?
और जिस व्यक्ति के मन में अपराध-भाव पैदा हो जाता है उसकी आत्म-श्रद्धा खो जाती है। जिसे अपने पर भरोसा न रहा, उसके पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। जिसके मन में अपने प्रति सम्मान न रहा, अब उसका किसके प्रति

सम्मान हो सकता है? जिसने अपने गिरने को देखा, वह अब दूसरों के गिरने को भी बढ़ा-चढ़ा कर देखेगा।
और जिसने अपने गिरने को देखा और लाख वचन लिए, लाख कसमें खाईं, व्रत लिए, फिर भी गिरते देखा अपने को, वह एक बात तो पक्की ही समझ लेगा कि यह अपने वश के बाहर है यह क्रांति। यह तो कोई अवतारी पुरुष, कोई तीर्थंकर, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई जरथुस्त्र, कोई जीसस--यह तो कुछ उन थोड़े- से लोगों का काम है जो आकाश से उतरते हैं। हम तो पृथ्वी पर पैदा हुए, मिट्टी के पुतले हैं।
आदमी शब्द का अर्थ होता है, मिट्टी का पुतला। आदमी शब्द बनता है हिब्रू अदम से। अदम का अर्थ होता है, लाल मिट्टी। जेरूसलम की मिट्टी लाल है। और ईश्वर ने जेरूसलम की मिट्टी से पहला आदमी बनाया, इसलिए उसका नाम अदम। और उससे ही फिर आदमी बना। तो हम तो मिट्टी हैं। फिर लाल हो कि काली हो कि भूरी हो, क्या फर्क पड़ता है! मिट्टी के पुतले हैं। चार दिन का खेल है। यह हमारी बिसात के बाहर है। यह क्रांति हमसे न हो सकेगी।
जब अपने प्रति अपराध का भाव पैदा हो जाए तो अपने प्रति निंदा और अपमान
भी पैदा हो जाता है। और जब जीना ही है, गलत ही जीना है, तो फिर क्यों न जी भर कर जीएं? फिर क्या सार है कि रोएं? क्यों रोने में समय गंवाएं?
तो अपराध का भाव आत्म-सम्मान का विनाश कर देता है, जो कि समस्त धर्म की आधारशिला है। और अपराध का भाव जब अपने को सम्मान नहीं देता तो दूसरे को कैसे सम्मान देगा? जो अपने को प्रेम नहीं करता, वह किसी को भी प्रेम न कर सकेगा। जो अपने पर धोखा अनुभव करता है कि मैं धोखेबाज हूं, वह हरेक को धोखेबाज देखेगा। हम दूसरों को अपनी ही नजर से तो देखते हैं। और तो हमारे पास कोई मापदंड भी नहीं है, तराजू भी नहीं है, तौलने का कोई और उपाय भी नहीं है। और तो कोई परख भी नहीं। जौहरी की और कोई कसौटी भी तो नहीं। तो वह अपनी ही नजर से सबको देखेगा। वह सब तरफ देखेगा कि लोग अपराधी हैं, सब तरफ बेईमान हैं, सब तरफ चोर हैं।
इसलिए तो जब तुमसे कोई किसी की निंदा करता है तो तुम कभी संदेह नहीं करते; तुम तत्क्षण मान लेते हो। लेकिन कोई किसी का सम्मान करे, समादर करे, कोई किसी की प्रशंसा करे, तो तुम हजार तर्क उठाते हो कि नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? अरे, हमने बहुत देखे! आज नहीं कल सब ढोलों में पोल निकलती है। जब कोई किसी को कहता है संत तो तुम्हारे मन में तत्क्षण संदेह उठता है। और जब कोई कहता है फलां आदमी चोर है, बेईमान है, लफंगा है, लुच्चा है, तुम कहते हो हमें पहले से ही पता है। क्या तुम हमें बता रहे हो! अरे, हमें एक-एक आदमी की जड़ों का पता है।
असलियत यह है कि तुम्हें अपनी जड़ों का पता है। और अपने से तुम इतने बेचैन हो गए हो और अपने से तुम इतने परेशान हो गए हो, अपने से इस बुरी तरह हार गए हो कि तुम किसकी कसमों का भरोसा करो, तुम किसके आश्वासनों को मानो, तुम किसके व्रतों को स्वीकार करो? खुद का सम्मान गया, सबका सम्मान गया। और जब जीना ही है असम्मान में तो फिर क्या कमी करनी? जब जुआ खेलना ही है तो फिर जी भर कर खेलना। और जब शराब पीनी ही है तो फिर क्या छिपा कर पीनी। और जब चोरी करनी है तो ठीक है, चोरी ही करेंगे। यही हमारा भाग्य, यही हमारी विधि। ये दो तरह के लोग तुम्हारे धर्मों ने पैदा किए हैं--पाखंडी और अपराधी।
और सारी मनुष्यता करीब-करीब इन दो तरह के लोगों में बंट गई है। जो पाखंडी हैं, वे तुम्हारे संत हो जाते हैं, साधु हो जाते हैं, महात्मा हो जाते हैं। जो सीधे-सादे लोग हैं वे तुम्हारे पृथकजन, सामान्यज न, अपराधी; उनका काम है कि धर्मसभाओं में बैठें और पंडितों-पुरोहितों और महात्माओं की ऊंची-ऊंची बातें सुनें। हालांकि उन्हें भरोसा नहीं आता। हालांकि वे जानते हैं कि ये सब बातें हैं। लाख उपाय करते हैं तो भी वे जानते हैं ये सब बातें हैं, यह सब ऊपर का ढोंग है, भीतर कुछ और होगा। भीतर राज कुछ और होना ही चाहिए। सुन लेते हैं, क्योंकि और भी भीड़ सुन रही है। न सुनें तो अहित होता है। सुनें तो हित होता है। सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है, सम्मान मिलता है, सत्कार मिलता है। और पाखंडी भी भलीभांति जानते हैं कि वे लाख तुम्हें समझाएं, तुम समझोगे नहीं। अपने को नहीं समझा सके, तुम्हें क्या समझाएंगे।

ऐसा एक विराट धोखा पैदा हुआ है। और इस धोखे के पीछे आद्य शंकराचार्य जैसे लोगों के वक्तव्य हैं।
कहते हैं वेः "सबसे उत्तम क्या है? सच्चरित्र।"
नहीं, मैं स्पष्ट करना चाहता हूं, सबसे उत्तम है समाधि। हां, जहां समाधि है वहां सच्चरित्रता अपने आप है। सच्चरित्रता बिना समाधि के कागज का फूल है--न सुगंध, न प्राण; रंग झूठे, पोते हुए। न सूरज से नाता, न चांद-तारों से। न पृथ्वी से संबंध, न रस की कोई धार बहती। कागजी फूल, बस देखने में फूल मालूम हो सकते हैं।
लेकिन समाधि की जड़ें जिसको उपलब्ध हो गई हैं, जिसने अपने भीतर के शून्य को अनुभव किया; जिसने अपने भीतर के शून्य में अपने पूर्ण को पहचाना; जो अपने भीतर मौन हुआ, ऐसा मौन हुआ, ऐसा डूबा कि जब लौटा तो नया होकर लौटा, पुनर्जन्म लेकर लौटा; द्विज हुआ, दुबारा जन्म पाया।
समाधि का अर्थ हैः मन के पार हो जाना। फिर लौट आओ मन में। लौट आओगे तो
भी तुम पार ही रहोगे। कुछ फर्क न पड़ेगा। फिर लौट आओ संसार में, कुछ फर्क न पड़ेगा। संसार में भी रहोगे तो भी तुम संसार के बाहर रहोगे।

तेरे करीब तेरे आस्तां से दूर रहे
वहीं ख्याल रहा, हम जहां से दूर रहे
करीब आए तो खुद जाने-एतिबार थे
वही जो मुद्दतों वहमो-गुमां से दूर रहे
किसे ये फिक्र कि अंजामे-इश्क क्या होगा
किसे ये होश कि राहे-जियां से दूर रहे वो हर्फे-शौक जो तम्हीदे-आरजू ठहरे खुदा करे कि मेरी दास्तां से दूर रहे ये मयकदा है यहां मेहरो-माह पलते हैं कहो कि खेमा-ए-जुल्मत यहां से दूर रहे
वो हमसफर भी निहायत अजीज है "ताबां"
चले जो साथ मगर कारवां से दूर रहे
यही संन्यास की परिभाषा है--
वो हमसफर भी निहायत अजीज है "ताबां"
चले जो साथ मगर कारवां से दूर रहे
यूं तो भीड़ में और फिर भी भीड़ के बाहर। जो चले तो साथ, मगर कारवां से दूर रहे।
तेरे करीब तेरे आस्तां से दूर रहे
वहीं ख्याल रहा, हम जहां से दूर रहे
एक बार समाधि का स्वाद मिल जाता है तो फिर बाजार में भी वही मौन है, वही सन्नाटा है, वही शून्य है, जो हिमालय की गुफाओं में है। हिमालय की गुफाओं में भी थोड़ा शोर-शराबा होगा, लेकिन स्वयं के हृदय की गुफा में कोई तरंग नहीं है। वहां तो शून्य अपनी पूर्णता पर है। उसका जरा-सा स्वाद, और जीवन एकदम नया हो जाता है। उस जीवन की नई शैली का नाम सच्चरित्रता है।
यह मेरी परिभाषा हैः समाधि से जो जीवन-व्यवहार निकलता है, वह सच्चरित्रता है; असमाधि से जो जीवन-व्यवहार निकलता है, वही दुश्चरित्रता है। इसलिए यूं भी समझ लो कि तुम लाख ऊपर से आरोपण कर लो चरित्र का, अगर तुम्हारे भीतर अभी समाधि का अनुभव नहीं जगा है तो तुम्हारा चरित्र जरा-सी खरोंच से उखड़ जाएगा। जरा-सी खरोंच! क्योंकि उसकी गहराई कितनी? कोई एक धक्का दे देगा, कोई एक गाली दे देगा, कोई अपमान के दो शब्द बोल देगा, और तुम सब भूल-भाल जाओगे, सब चरित्र एक तरफ रख दोगे। और यूं नहीं कि जिंदगी के बड़े- बड़े मसलों में, जिंदगी के छोटे-छोटे मसलों में तलवारें खिंच गई हैं। शतरंज के खिलाड़ियों ने तलवारें निकाल ली हैं। ताश के पत्तों के खिलाड़ी हत्या कर बैठे हैं। मजाक-मजाक में गर्दनें कट गई हैं। मजाक महंगे पड़ गए हैं। और यूं सब अच्छे लोग थे।
तुम भी जब किसी की खबर सुनते हो कि उस आदमी ने आत्महत्या कर ली, तो भरोसा नहीं आता। भला-चंगा आदमी, कल ही तो तुम्हें मिला था। रास्ते से चला जा रहा था, फिल्मी गाना गुनगुना रहा था, क्यों आत्महत्या करेगा? इत्र छिड़क

रखा था, सुंदर कपड़े पहन रखे थे। क्यों आत्महत्या करेगा? कभी सोचा भी नहीं था कि यह आदमी आत्महत्या करेगा।
सोचते कैसे? इसके भीतर क्या इकट्ठा हो रहा था सिवाय इसके और किसी को पता नहीं। औरों ने तो बाहर से तस्वीर देखी थी, भीतर की गर्द-गुबार तो नहीं, भीतर का कूड़ा-कर्कट तो नहीं। और जब तुम सुनते हो फलां आदमी ने किसी की हत्या कर दी, भरोसा ही नहीं आता। कैसे? अच्छा आदमी था, मधुरभाषी था, किसी से कड़वे शब्द भी कहने में झिझकता था। कभी किसी को गाली भी देते नहीं देखा। एकदम हत्या कर दी!
और ऐसा नहीं कि तुम्हें ही भरोसा नहीं आता; जिसने हत्या की है वह भी भरोसा नहीं कर पाता कि यह मैंने कैसे किया! यह मुझसे हुआ कैसे! इसलिए तो लोग कहते हैंः मैं अपने बावजूद कर बैठा। करना नहीं चाहता था और कर बैठा। लेकिन अगर तुम करना नहीं चाहते थे तो कौन कर बैठा! तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे भीतर कोई और भी है!
निश्चित है; तुम्हारे भीतर तुमसे अतिरिक्त जो है वह निन्यानबे प्रतिशत है। तुम तो केवल एक प्रतिशत हो। तुम तो केवल एक बारीक सी सतह हो ऊपर-ऊपर! तुम्हें समझाया गया हैः ऐसा करो। बचपन से बताया गया हैः ऐसे उठो, ऐसे बैठो, यह खाओ, यह पीओ। बस तुम उसी ढंग से जी रहे हो। उसी को तुम सच्चरित्रता कहते हो।
मेरे गांव में एक बड़े मारवाड़ी थे। उनके पास मैं कभी-कभी जाकर बैठा करता था। वे कहते थे कि मारवाड़ियों में जब हम शादी करते हैं तो पहले पता लगाते हैं कि जिसके घर शादी कर रहे हैं उसने अब तक कितने दीवाले निकाले। अगर दो-चार दीवाले न निकाले हों तो क्या खाक मारवाड़ी! और अगर दो-चार दीवाले न निकाले हों तो गरीब आदमी है। कितने दीवाले निकाले, इससे हम हिसाब लगाते हैं।
खूब हिसाब हुआ! आदमी की हैसियत का पता इससे चलता है। अलग-अलग लोगों
में अलग-अलग हिसाब हैं। अलग-अलग लोगों में अलग-अलग धारणाएं हैं। उनकी धारणाएं उनके लिए चरित्र मालूम होती हैं।
अफ्रीका में लोग कीड़े-मकोड़े खाते हैं--चींटियां, चींटे, तिलचट्टे। तुम कल्पना भी न कर सकोगे। अभी मैं खबर पढ़ रहा था कि अमरीका के एक विश्वविद्यालय में एक वैज्ञानिक दंपति अफ्रीकी लोगों के इसी तरह के भोजन पर शोधबीन कर रहा है। तो वैज्ञानिक को तो शोधबीन में पूरा उतरना पड़ता है। तो वे भी इसी तरह की चीजें... । पति-पत्नी दोनों शोधबीन में लगे हैं, दोनों वैज्ञानिक हैं। धीरे-धीरे उन्होंने भी इस तरह की चीजें खाना शुरू किया, क्योंकि तभी पता चले कि ये चीजें पौष्टिक भी हैं या नहीं? ये कितने दूर तक आदमी को पोषण दे सकती हैं?
तो पहले तो बहुत घबड़ाए। अब तिलचट्टों को कितना ही तल लो, हैं तो तिलचट्टे ही! सोच कर ही बात घबड़ाहट की मालूम होती है। सोच कर ही वमन हो जाएगा कि हद हो गई। और वे तिलचट्टों के सैंडविच बना-बना कर खा रहे हैं। उनके घर कोई नहीं आता। मित्रों ने आना बंद कर दिया, परिचितों ने आना बंद कर दिया, कि ये आदमी ढंग के नहीं हैं। इनके घर पता नहीं क्या खिला दें, किस चीज का रस पिला दें। उनके घर कोई नहीं आता; वे किसी को भोजन पर बुलाते हैं तो कोई स्वीकार ही नहीं करता। उनके घर से लोग बच कर निकलते हैं--जाने-पहचाने लोग, परिचित लोग, अपने लोग। औरों की तो बात छोड़ दो, उनके मां-बाप भी अब उनके घर नहीं आते, कि पहले तुम अपना शोधकार्य पूरा कर लो, फिर हम आएंगे।
और उन्होंने खोजबीन की है कि तिलचट्टों में प्रोटीन बहुत होता है। बड़ी मात्रा में प्रोटीन की कमी पूरी की जा सकती है। तिलचट्टे हैं भी बड़े होशियार लोग।
कहते हैं कि जितना आदमी पुराना है उतने ही तिलचट्टे पुराने हैं।
तिलचट्टे और आदमी हमेशा साथ ही साथ पाए जाते हैं। जहां तिलचट्टा मिले समझ लो कि आस-पास आदमी भी होगा। और जहां आदमी हो समझ लो कि आस-पास तिलचट्टा भी होगा। न तिलचट्टे अलग रहते, न आदमी अलग रहते। बड़ा पुराना नाता है, सनातन संबंध है। सब संबंध टूट गया, मगर तिलचट्टे और आदमी का संबंध नहीं टूटता। जिन अफ्रीकी कबीलों में कीड़े-मकोड़े खाए जाते हैं, उनमें कोई सोचता ही नहीं। झींगुर लोग इकट्ठे करते रहते हैं वर्षा के दिनों में, फिर सुखा कर

रख लेते हैं। जैसे तुम सब्जियां सुखा कर रख लेते हो कि जब सब्जियां नहीं आएंगी तो सूखी हुई सब्जियों का उपयोग कर लोगे। या जैसे जैन पर्यूषण के दिनों में हरी सब्जी नहीं खा सकते। देखते हो होशियारी! उसको सुखा कर रख लेते हैं। सुखा ली तो हरी रही नहीं, फिर सुखा कर खाते हैं। और जो बहुत ही होशियार हैं... ।
मैं एक श्वेतांबर जैन घर में मेहमान था, पर्यूषण के दिन, उनको मैंने केला खाते देखा। मैंने कहा, यह क्या कर रहे हो?
उन्होंने कहा, यह हरा थोड़े ही है। अरे साफ पीला है, बिल्कुल पका हुआ है।
देखते हो, हरे का क्या मतलब निकाल लिया। हरे का मतलब हरा रंग। बेचारे महावीर को पता ही न था कि किन चालबाजों के हाथ में मैं पड़ जाऊंगा। हरे से कहा था--रसभरा। मगर हरे से मतलब निकाल लिया रंग का। आदमी अपने हिसाब से अर्थ करेगा, अपने ढंग से व्याख्याएं करेगा।
चीन में सांप को सदियों से खाया जाता है। सिर्फ मुंह को काट कर अलग कर देते हैं जहां जहर की गांठ होती है, बाकी पूरा सांप खाया जाता है। और कहते हैं कि सांप चीन के स्वादिष्टतम भोजनों में से एक है।
अभी अफ्रीका में बोकासो और ईदी अमीन दादा, ये दोनों आदमी आदमियों को खाते हुए पकड़े गए हैं! जब ये दोनों अपनी राजधानियां छोड़ कर भागे तो इनके घरों में इनके फ्रीज में बच्चों का मांस मिला। ईदी अमीन का कहना है कि बच्चों के मांस से स्वादिष्ट कोई चीज दुनिया में होती ही नहीं। ईदी अमीन की राजधानी में, कंपाला में रोज बच्चे नदारद हो जाते थे। और ईदी अमीन की पुलिस खोज करती थी कि बच्चों को चुराने वाला गिरोह कौन-सा है। और यह गिरोह किसी और का नहीं था। ये बच्चे सब ईदी अमीन के चौके में समाप्त हो रहे थे। लेकिन ईदी अमीन को कोई अड़चन न थी, क्योंकि ईदी अमीन जिस कबीले से आता है, वह आदमखोर कबीला है। वे आदमी को खाते ही रहे।
एक ईसाई पादरी को आदमखोर कबीले ने पकड़ लिया, अफ्रीका में। पादरी ने अपनी पुरानी तरकीब काम में लाना चाही। कहा कि पहले समझो भी तो कि मैं कौन हूं! तुम्हारे सौभाग्य कि मैं एक धर्मगुरु हूं। और तुम्हें मैं बाइबिल समझाऊंगा, धर्म समझाऊंगा। तुमने कभी धर्म का स्वाद लिया है?
उन लोगों ने कहा कि कई दफे लिया है। आज फिर लेंगे।
उस पादरी ने कहा, तुम्हारा मतलब?
उन्होंने कहा कि आपका हम भोजन करेंगे। यही धर्म का स्वाद है। और पादरियों को भी हम पहले खा चुके। और तो हम कोई स्वाद नहीं जानते। मगर स्वादिष्ट होते हैं धार्मिक लोग। तुम भी देखोगे, हम भी देखेंगे। अभी स्वाद लेने की तैयारी है, जरा बाहर तो आओ। बाहर बैंड-बाजा बज रहा है, कड़ाहा चढ़ाया हुआ है, कि अभी तुम्हारा स्वाद लेते हैं। धर्म का और क्या स्वाद? अरे, धार्मिक आदमी को पचा गए, धर्म का स्वाद हो गया!
चरित्र किसको तुम कहोगे?
मुसलमान दिन में उपवास करते हैं, रात में भोजन करते हैं। जब उनके धार्मिक दिन आते हैं, रमजान के दिन आते हैं, रोजे के दिन आते हैं, तो दिन में तो उपवास करते हैं, दिन भर तो भूखे रहते हैं, सूरज के ढलने पर भोजन करते हैं। और जैन दिन में तो भोजन करते हैं और सूरज के ढलने पर पानी भी नहीं पीते। किसको सच्चरित्र कहोगे? इसमें चरित्रवान कौन है?
रामकृष्ण भी मछली और भात खाते थे। किसी जैन से पूछो कि मछली खाने वाला आदमी चरित्रवान हो सकता है? कैसे होगा? असंभव। बुद्ध ने मारने की मनाही की है; लेकिन अपने आप जो जानवर मर गया हो उसको खाने की मनाही नहीं की।
डाक्टर अंबेदकर जब यह सिद्ध करने में लगे थे कि हिंदुस्तान के चमार बौद्ध ही हैं मूलतः, हिंदुओं ने जबर्दस्ती दबा कर इनको चमार बना दिया है, तो उन्होंने उसमें एक तरकीब और एक तर्क यह भी खोज निकाला था कि चमार ही एकमात्र कौम है भारत में जो मरे हुए जानवर का मांस खाती है। मरे हुए जानवर को चमार ही ढोकर ले जाते हैं। चमड़ी निकाल लेते हैं, वह जूते के काम आ जाती है, और सामान बनाने के काम आ जाती है। और मांस को खा जाते हैं। डाक्टर अंबेदकर ने इस बात को तर्क बना लिया था कि इससे सिद्ध होता है कि ये बुद्ध के मानने वाले हैं। क्योंकि बुद्ध ने कहा हैः मारना मत। लेकिन अपने आप मर

गया जो, उसको खाने में क्या हर्जा है? मारने में हिंसा है। बुद्ध कहते हैं, मारने में हिंसा है। लेकिन जो मर ही गया अब इसके मांस खाने में क्या हिंसा है?
और महावीर कहते हैं, मांस खाने के विचार में भी हिंसा है। मर गया, उसके मांस की तो बात छोड़ो; मांस खाने का विचार भी, सपना भी पाप है। उससे भी नरकों में सड़ोगे।
कौन-सी चीज चरित्र है? किस चीज को सच्चरित्रता कहोगे?
मोहम्मद ने नौ विवाह किए। यह चरित्र है? और मुसलमानों को आज्ञा दी कि प्रत्येक मुसलमान चार विवाह कर सकता है। यह चरित्र है? और जो लोग मानते हैं एक-पत्नी व्रत, जिनके लिए एक-पत्नी व्रत ही चरित्र है, उनको कैसे स्वीकार होगा मोहम्मद का नौ पत्नियों का पति होना?
और इससे उलटा भी होता रहा। पांच पांडवों ने एक ही पत्नी को मान रखा था। पांच पति थे। एक-पति व्रत भी नहीं था, पंचपति थे। फिर भी हिंदू द्रौपदी का नाम उन पांच महाकन्याओं में गिनते हैं जो प्रातः स्मरणीय हैं। इन्होंने किस तरह सात दिन बांटे थे द्रौपदी के, पता नहीं। घंटों से बांटे होंगे। दिनों से तो बंट नहीं सकते, नहीं तो दो दिन की छुट्टी हो जाएगी। शायद शनिवार, रविवार छुट्टी रखते हों।
चरित्र किसको कहोगे? और कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थीं, जिनमें अपनी ही नहीं औरों की स्त्रियां भी थीं, और भगाई हुई स्त्रियां थीं। सोलह हजार स्त्रियों का कुंभ मेला भर लिया होगा। इसमें पहचानना भी मुश्किल होगा कि कौन अपनी है, कौन किसकी है। सोलह हजार स्त्रियों के नाम भी याद रखने मुश्किल पड़ते होंगे, नंबर रखे होंगे। अ-एक, अ-दो, अ-तीन... या शायद गुदवा दिए होंगे नंबर खोपड़ी पर। क्योंकि पहचानोगे कैसे? किसी और की पत्नी घुस जाए तो फिर क्या करोगे? अपनी पत्नी निकल भागे, किसी और के बाड़े में चली जाए, फिर क्या करोगे? कोई निशान भी तो चाहिए। ये सोलह हजार को कैसे सम्हालते रहे? मगर कोई इसमें दुश्चरित्रता नहीं है। कोई हिंदू ने नहीं कहा कि कृष्ण ने कोई दुश्चरित्रता की है।
किस बात को चरित्र कहोगे? जितनी कौमें हैं दुनिया में, जितने कबीले हैं, उतने चरित्र हैं। मैं इसलिए चरित्र पर जोर नहीं देता।
अब इन्होंने, शंकराचार्य ने कह दिया कि सच्चरित्र ही सबसे उत्तम है। लेकिन क्या सच्चरित्र का अर्थ होगा? कौन है सच्चरित्र? कश्मीर के ब्राह्मण मांसाहार करते हैं। उत्तर भारत के ब्राह्मण मांसाहार नहीं करते। सच्चरित्र कौन है? और कश्मीरी ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्राह्मण समझा जाता है और मांसाहार भी करता है। कोई अड़चन नहीं है उसे। इसलिए पंडित जवाहरलाल नेहरू को मांसाहार करने में कोई अड़चन नहीं थी--कश्मीरी ब्राह्मण।
जीसस शराब पीते थे। उस लिहाज से तो मोरारजी देसाई ज्यादा चरित्रवान हैं; बेचारे स्वमूत्र से ही काम चला लेते हैं। पीना ही है तो अब क्या शराब पीना! कौन चरित्रवान है? स्वमूत्र को पीने वाले लोग चरित्रवान हैं? शराब पीने वाले लोग चरित्रवान हैं? कौन चरित्रवान है? बहुत कठिन है। चरित्र से निर्णय नहीं हो सकता।
शंकराचार्य का वक्तव्य बिल्कुल ही उथला है। फिर चरित्र ऊपर से थोपे जाते हैं। मां-बाप बच्चे पर थोप देते हैं। जो सिखा देते हैं वही चरित्र बन जाता है।
मैं जैन घर में पैदा हुआ, तो मैंने अठारह साल की उम्र तक रात्रि को भोजन नहीं किया था। क्योंकि रात्रि को भोजन करना मतलब नरक जाने का सीधा रास्ता है। जब अठारह वर्ष का था तो मित्रों के साथ एक पहाड़ पर एक किले को देखने गया। वह पहला मौका था मेरा। बाकी सब हिंदू थे। उनको फिक्र ही नहीं थी दिन में भोजन बनाने की। और दिन तो इतना घूमने-फिरने में लगा कि उनसे यह कहना कि मैं रात्रि को भोजन न कर सकूंगा, मुझे भी ठीक नहीं लगा। दिन तो काफी व्यस्त था, किला सुंदर था, उसको देखने में ही पूरा दिन बीत गया। पहाड़ बड़ा था। उसमें एक से एक सुंदर स्थल थे देखने योग्य। झरने थे और झीलें थीं। उन्होंने तो रात को नौ बजे भोजन बनाना शुरू किया।

अब मेरी तुम हालत समझ सकते हो। दिन भर का भूखा, पहाड़ की चढ़ाई, दिन भर का घूमना। ऐसी भूख कभी जीवन में लगी न थी। और वे मेरे सामने ही बाटियां पकाने लगे। मैंने अपने जीवन में कभी बाटियों से ऐसी सुगंध उठती है, यह भी अनुभव नहीं किया था। और जब उन्होंने बैंगन का भरता बनाया, तो मैं आज भी याद कर सकता हूं, ठीक उसकी सुगंध भी याद कर सकता हूं। और जब उन्होंने मुझे समझाया- बुझाया कि यहां कौन देखने वाला है! और तुम्हारे घर हम में से कोई भी नहीं कहेगा, हम वचन देते हैं, हम कसम खाते हैं। रात में कैसे सोओगे दिन भर के भूखे? हम समझ सकते हैं, हम भी भूखे हैं।
तो बाटियों की गंध, भरते का रंग, उनकी बातें। मैंने भी सोचा कि जब इतने लोग अठारह साल से भोजन रात करके अभी तक नरक नहीं गए तो मैं एक दफे कर लूंगा, इससे ही नरक जाऊंगा? तो ठीक है, फिर नरक ही ठीक है, कम से कम अपने संगी-साथी तो रहेंगे। अगर इन सबको नरक ही जाना है, यही मेरे दोस्त हैं, इनको छोड़ कर स्वर्ग जाकर भी क्या करूंगा?
ऐसा अपने मन को समझाने की भी कोशिश की। समझा-बुझा कर मैंने भोजन भी कर लिया। मगर सम्हाल न सका, सो न सका। ऐसी बेचैनी, ऐसी परेशानी कि यह क्या कर लिया! रात जब तक वमन न हो गया, जब तक सारा भोजन फिंक न गया मेरे शरीर से बाहर, तब तक मैं सो न सका।
उस रात मैंने यही सोचा कि यह चीज जरूर पाप है। पाप न होता तो क्यों मुझे वमन होता! मगर बाकी सारे मित्र मजे से सो रहे थे, घुर्राटे ले रहे थे। फिर मैंने अपने को समझाया कि सड़ोगे, सड़ोगे नरक में, मरोगे नरक में! लेना घुर्राटे वहां। हम स्वर्ग में बैठे मजा करेंगे और तुम, नरक के जलते हुए कड़ाहों में भरता बनाया जाएगा।
मगर यह मैं ही अपने को समझाता रहा। उनको तो पता भी नहीं चला। वे तो मजे
से सोए ही रहे। उस दिन तो मुझे यही लगा कि यह पाप के कारण ही उलटी हो गई। लेकिन फिर धीरे-धीरे मैं बिगड़ा। फिर उलटी वगैरह होनी बंद हो गई। सच्चरित्र क्या है, कौन निर्णायक है? शंकराचार्य के लिए सच्चरित्र क्या था? शूद्र की छाया भी न पड़ जाए, यह सच्चरित्र था। दक्षिण भारत में शूद्रों को घोषणा करके निकलना पड़ता था कि हम यहां से निकल रहे हैं, अगर कोई हो तो हट जाए। हर रास्ते से तो शूद्र निकल नहीं सकते थे। जिन रास्तों से निकलते भी थे, समय बंधे हुए थे। अगर उन समयों के अतिरिक्त किसी आवश्यक कार्य से निकलना ही पड़े तो उनको घोषणा करनी पड़ती थी कि भाइयो, दूर हट जाओ, मैं शूद्र हूं, मेरी छाया तुम पर न पड़ जाए। क्योंकि छाया भी पड़ जाए तो ब्राह्मण को स्नान करना पड़ता था। शूद्र तो शूद्र है ही, उसकी छाया भी शूद्र।
तुम जरा सोचते हो! और अगर शूद्र की छाया शूद्र हो गई तो शूद्र अगर नदी
के पास से निकल जाए, उसकी छाया तो नदी में बन गई, नदी शूद्र हो गई। फिर उसमें नहाओ-धोओ, कितना ही कुछ करो, क्या फायदा? पवित्र रहे, और अपवित्र हो जाओगे।
शंकराचार्य स्नान करके काशी में घाट से ऊपर आ रहे थे। और एक शूद्र ने उन्हें छू लिया। सुबह का अंधेरा था। अभी सूरज निकला नहीं था। पूछा, तू कौन है? उसने कहा कि क्षमा करें, मैं शूद्र हूं और भूल से आपसे टक्कर लग गई। अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ा।
शंकराचार्य एकदम नाराज हो गए। जो व्यक्ति कहता था कि संसार माया है,
है ही नहीं, वह भी शूद्र को सत्य मानता है। वह भी शूद्र के छूने को सत्य मानता है। संसार माया है तो शूद्र संसार के बाहर है? तो शूद्र तो बड़े वजनी मालूम होते हैं। मतलब ठीक-ठीक ब्रह्म के समकक्ष मालूम होते हैं। एक ब्रह्म सत्य और एक शूद्र सत्य। बस दो ही सत्य, जगन्मिथ्या, ब्रह्म सत्यम्, शूद्र सत्यम्। बस दो सत्य बचे दुनिया में।
वह शूद्र भी थोड़ा ज्ञानी था, तभी तो गंगास्नान करने गया था। उसने कहा
कि शरीर को शरीर छू गया, इसमें क्या इतने नाराज होने की बात है? तुम भी मिट्टी मैं भी मिट्टी; अरे, यह शरीर तो मिट्टी में गिर जाएगा। और तुम्हीं तो समझाते हो। कल ही रात तो तुम समझा रहे थे कि संसार माया है; है ही नहीं, भ्रांति है, स्वप्नवत है। तो अगर स्वप्नवत शूद्र छू गया तो इसमें इतना चिल्लाने की क्या जरूरत है? इतने नाराज होने की क्या जरूरत है?

लेकिन शंकराचार्य तो भनभनाते हुए वापस गए। फिर से स्नान किया। तब कहीं पवित्र हुए। संसार असत्य है, गंगा सत्य है! संसार असत्य है, स्नान सत्य है!
सच्चरित्रता क्या है? किसको सच्चरित्र कहोगे?
नहीं, इन ऊपर के मापदंडों से कुछ भी तय न होगा। जो बात एक देश में चरित्र है, दूसरे देश में दुश्चरित्रता हो जाती है। जो बात एक जगह सही है, दूसरी जगह गलत हो जाती है। सिर्फ एक चीज कहीं गलत नहीं होती है, वह है समाधि। वह है चित्त का शून्य हो जाना, निर्विचार हो जाना, निर्विकल्प हो जाना।
मैं तो समाधि को ही उत्तम कहूंगा। फिर समाधि से जो भी निकले, वह उत्तम है। और समाधि से भिन्न-भिन्न बातें निकलेंगी, यह भी स्मरण रहे। क्योंकि समाधि के पास कोई बंधे-बंधाए उत्तर नहीं होते। समाधि तो एक दर्पण है। जैसी परिस्थिति होगी, उस परिस्थिति का प्रतिफलन समाधि में बनता है। और समाधि से उस परिस्थिति के अनुकूल उत्तर निकलता है।
तो समाधिस्थ व्यक्ति कभी तलवार भी हाथ में ले सकता है, कोई अड़चन नहीं। मोहम्मद तलवार हाथ में लिए रहे। कृष्ण ने सुदर्शन-चक्र हाथ में ले लिया। समाधिस्थ व्यक्ति नग्न भी खड़ा हो सकता है। महावीर नग्न खड़े हुए, डायोजनीज नग्न खड़ा हुआ। समाधिस्थ व्यक्ति कुछ भी कर सकता है, जो उसकी अंतस-चेतना में उस घड़ी, उस क्षण, उस पल में सम्यक मालूम होता है।
और इसीलिए समाधिस्थ व्यक्तियों के चरित्रों में भेद होगा। महावीर और बुद्ध के चरित्र में भेद है। दोनों समसामयिक थे। दोनों समाधिस्थ थे। लेकिन दोनों के चरित्र में भेद है। भेद होगा, क्योंकि दोनों अलग ढंग के व्यक्ति थे। दो व्यक्ति एक जैसे होते ही नहीं, कभी नहीं हुए, कभी नहीं होंगे। कोई किसी की कार्बन कापी नहीं है।
मोहम्मद और जीसस के चरित्र में भेद है। जीसस और मूसा के चरित्र में भेद है। मूसा और जरथुस्त्र के चरित्र में भेद है। जरथुस्त्र और लाओत्सु के चरित्र में भेद है। सभी समाधिस्थ हैं। एक बात में अभेद है कि सभी परम मौन को उपलब्ध हुए हैं। सभी दर्पण बन गए हैं। वही उत्तम है। फिर उस दर्पण में जो दिखाई पड़ता है उसके अनुकूल व्यवहार करना पड़ेगा। समय बदलेगा, व्यवहार बदलेगा। परिस्थिति अलग होगी, व्यवहार बदलेगा। परिस्थिति के अनुकूल क्रिया होगी। इसलिए चरित्र से कुछ तौल नहीं होने वाली।
और उनसे पूछा गया, "एक तत्व क्या है?" तो उन्होंने कहा, "अद्वितीय शिव-तत्व।"
एक तत्व का तो नाम नहीं दिया जा सकता। नाम दिया कि झंझट शुरू हुई। तुम कहोगे, शिव-तत्व; कोई कहेगा, ब्रह्मा-तत्व; कोई कहेगा, विष्णु-तत्व। फिर झगड़ा शुरू हुआ। नाम आया कि झगड़ा शुरू हुआ। नाम आया कि विवाद शुरू हुआ। उस एक को तो अनाम ही कहना होगा। उस एक को तो नाम नहीं दिया जा सकता। नाम दिया कि तुमने दो की शुरुआत कर दी। अगर उसको कहो प्रकाश तो फिर अंधकार क्या है? प्रकाश कहा कि अंधकार को स्वीकार कर लिया। अगर उसको कहो जीवन तो फिर मृत्यु क्या है? अगर उसको कहो शिव तो फिर अशिव क्या है? शब्द का तो हमेशा ही विपरीत शब्द होता है। हर शब्द का विपरीत शब्द होता है। दिन है तो रात है, गर्मी है तो सर्दी है, जवानी है तो बुढ़ापा है, हर शब्द दुई से भरा होता है, द्वैत से भरा होता है। शब्दों के अर्थ ही द्वैत में होते हैं। अगर द्वैत न हो तो अर्थ ही खो जाएं। इसलिए उसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता। तत्वं किमेकं शिवमद्वितीयं।
नहीं, मैं तो कहूंगा उसका कोई नाम नहीं। अगर कोई पूछे कि एक तत्व क्या है, तो अनाम। इसी अनाम की घोषणा करने के लिए लाओत्सु ने ताओ शब्द का उपयोग किया। ताओ शब्द का कोई अर्थ नहीं होता। लाओत्सु ने लिखा है कि उसका कोई नाम नहीं है। लेकिन तुम्हें समझाने के लिए, काम चलाने के लिए मैं ताओ शब्द का उपयोग कर रहा हूं; यह उसका नाम नहीं है, सिर्फ इशारा है, कामचलाऊ है। इसलिए हमने इस देश में ओम को खोजा। ओम अकेला शब्द है हमारे पास जो वर्णमाला से नहीं बना है, जो वर्णमाला के बाहर है, जो बारहखड़ी के बाहर है। उसका तो सिर्फ प्रतीक है। जैसे चीन में ताओ प्रतीक है वैसा ओम हमारा प्रतीक है। इसलिए तुम जान कर हैरान होओगे कि ओम से न तो हिंदुओं को कोई

विरोध है, न जैनों को कोई विरोध है, न बौद्धों को कोई विरोध है, न सिक्खों को कोई विरोध है। इस देश में ये चार धर्म पैदा हुए। इन चारों धर्मों में हर चीज पर मतभेद है। लेकिन एक चीज पर मतभेद नहीं है--ओम पर। क्या कारण होगा कि एक शब्द पर ये चारों राजी हैं? कारण यही है कि ओम किसी की बपौती नहीं, किसी भाषा का शब्द नहीं, सिर्फ ध्वनि मात्र है। सिर्फ संगीत का प्रतीक है। क्या है वह एक तत्व? अनाम संगीत। अनाहत नाद। मैं उसे शिव-तत्व नहीं कहूंगा। क्योंकि शिव-तत्व तो उस त्रिमूर्ति का हिस्सा है, जहां ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों मिल कर एक परमात्मा की तीन छवियां बनाते हैं। और शिव-तत्व का अर्थ होता हैः शुभ। फिर अशुभ कहां जाएगा? अशुभ भी उसी में समाविष्ट है।
शंकराचार्य कहते हैं, "कौन सुख छोड़ना चाहिए? सब प्रकार से स्त्री का सुख ही।"
अब इसमें एक बात तो यह मान ही ली गई कि स्त्री में सुख होता है, जो कि निपट नासमझी की बात है। स्त्री में क्या खाक सुख होता है! शंकराचार्य यह मान कर ही चल रहे हैं कि स्त्री में सुख होता है, उसको छोड़ना ही सबसे बड़ा छोड़ना है; वही सुख छोड़ने योग्य है। सुख है, यह तो स्वीकार कर लिया। और अगर सुख है तो फिर छोड़ोगे कैसे? फिर तो तुमने द्वंद्व खड़ा किया। सुख को कोई भी नहीं छोड़ सकता। दुख ही छोड़ा जा सकता है। सुख को छोड़ने की कोई संभावना ही नहीं है। सुख तो हमारी स्वाभाविक आकांक्षा है। हम दुख को ही छोड़ सकते हैं। तो जो चीज भी हम जान लेते हैं दुख है, वह छूटने लगती है; और जिसको हम जानते रहते हैं सुख है, उसको हम पकड़े रहते हैं।
यह कहनाः त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेव। कौन सुख छोड़ना चाहिए? सब प्रकार से स्त्री का सुख ही। इसमें मान ही लिया गया कि स्त्री में सुख होता है। और यह तो पुरुषों को कहा। अब अगर स्त्री पूछे तो उनसे क्या कहोगे? उनसे कहना पड़ेगा, पुरुषों का सुख। लेकिन पुरुष में क्या सुख होता है? स्त्री में क्या सुख होता है? भ्रांति है, सुख तो नहीं। और भ्रांतियों को छोड़ना नहीं होता है, जानना होता है, पहचानना होता है। पहचानते ही से भ्रांति समाप्त हो जाती है। जैसे रस्सी में किसी को सांप दिखाई पड़ा। शंकराचार्य तो इसका बहुत उदाहरण लेते हैं।
मेरे गांव में एक कबीरपंथी महंत थे, स्वामी साहबदास जी। उनके व्याख्यानों में मुझे बहुत आनंद आता था। उनके व्याख्यान अदभुत थे; ऐसे अंट-संट कि कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा। उनको देख कर मुझे यह कहावत अचूक याद आती थी। उनसे कोई भी प्रश्न पूछ लो। और मैं उनसे ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछता था जिनमें अनिवार्यरूपेण उनको भानुमती का कुनबा जोड़ना पड़े।
जैसे मैं उनसे पूछूंगा कि साहबदास जी, यह समझाइए कि वेद में समाजवाद कहां है? और वे समझाना शुरू कर दें। वेद में समाजवाद! मगर वे इस तरह से उलटा-सीधा करना शुरू करें और इतनी मेहनत करें बेचारे, किसी की समझ में आए या न आए, मगर वे समझाने की कोशिश करें कि वेद में ही से समाजवाद का जन्म हुआ है। अरे, ये कार्ल मार्क्स जर्मन है। ये जर्मनी के लोग वेद ले भागे! उसी में से तो सब निकाला--हवाई जहाज, समाजवाद, रेलगाड़ी।
मैं उनसे कहता, लेकिन आपके पास तो वेद है, उसमें से आप जरा उल्लेख तो करके बताइए! वे कहें कि यह कोई असली वेद है! अरे, असली वेद तो जर्मन चुरा कर ले गए। यह तो नकली बचा, इसमें कहां मिलेगा!
वे बड़ी ऊंची बातें कहते थे। और यह उनका खास उदाहरण था, जो कि ज्ञानियों का खास उदाहरण सदियों से रहा है। शंकराचार्य ने शुरू किया यह उदाहरण--सांप में रस्सी, रस्सी में सांप, दोनों की भ्रांति हो सकती है। कभी सांप रस्सी मालूम पड़ सकता है अगर अकड़ा पड़ा हो, सर्दी में सिकुड़ गया हो सुबह के अंधेरे में। या रस्सी सांप मालूम पड़ सकती है। रज्जु-सर्प भ्रम! साहबदास जी निरंतर इसका उल्लेख करते थे कि अरे, यह संसार क्या है, बस रस्सी में सांप। उनकी सुनते-सुनते एक दिन मुझे ख्याल आया कि जांच तो कर ली जाए।
वे रोज रात नौ, साढ़े नौ बजे प्रवचन देकर मेरे मकान की बगल की गली से गुजरते थे। वहीं आगे चल कर उनका आश्रम था। गली में अंधेरा रहता था। उन दिनों वहां कोई बिजली भी न थी। सो मैंने एक रस्सी बनाई। बाजार से एक सांप

खरीद कर लाया कागज का। कागज के सांप के मुंह को रस्सी में जोड़ा। रस्सी में पतला धागा बांधा और एक खाट खड़ी करके उसके पीछे छिप कर मैं बैठा रहा। जब साहबदास जी वहां से निकले तो मैंने धीरे से धागा खींचा। धागा तो दिख ही नहीं सकता था। अंधेरी रात, अंधेरे में धागा, काला धागा। रस्सी सरकी, सांप का मुंह हिला। साहबदास जी क्या भागे! गिर पड़े, पैर फिसल गया। मैं भी घबड़ाहट के मारे भागा, क्योंकि अब मैं फंसूंगा। सो वह खाट गिर पड़ी, मैं पकड़ा गया। साहबदास जी ने मुझे रंगे हाथों पकड़ लिया। और उनको तो काफी चोट आई थी। कोई छह सप्ताह तक पलस्तर बंधा रहा।
वे पकड़ कर मेरे पिता के पास मुझे ले गए। और कहा कि अब हद हो गई, यह लड़का क्या जान लेगा मेरी? एक तो मेरी सभाओं में अंट-संट सवाल उठाता है। अगर जवाब न दूं तो भद्द होती है; अगर जवाब दूं तो भद्द होती है। और आज तो इसने हद कर दी। वह तो मेरे जैसा मजबूत काठी का आदमी था कि जिंदा रह गया। अरे, अंधेरे में चलता हुआ सांप दिखाई पड़े तो कोई भी भाग खड़ा हो।
मैंने कहा, साहबदास जी, आप ही तो समझाते थे कि यह संसार जो है रस्सी में सांप जैसा, तो मैंने समझा आप तो ऐसे ज्ञानी! यह तो परीक्षा के लिए मैंने किया था।
कहा कि चुप! इस तरह की परीक्षाएं, किसी की जान लेना है?
और मैंने कहा, आप एक दफे तो सोच लेते--रज्जु-सर्प भ्रम। एक दफे भी न सोचा, एकदम भाग ही खड़े हुए! और मैंने कहा, मेरा इसमें कोई कसूर नहीं है। श्रोताओं को अधिकार है कि जो कहा जाए उसकी परीक्षा भी तो की जाए कि यह आदमी मानता भी है कि सिर्फ कहता ही है। और आपको मैं कम से कम पांच-सात साल से सुन रहा हूं, ऐसा कोई दिन नहीं गया जिस दिन यह रज्जु-सर्प भ्रम की चर्चा न उठती हो। सारा मायावाद ही इस पर खड़ा हुआ है। तो आपको इतना तो होश रखना था कि अरे, बहुत से बहुत असली भी सांप अगर होगा तो भी तो माया ही है। असली भी होगा समझ लो, तो भी कहां से असली होगा? है तो माया ही। नकली हुआ तब तो है ही नकली, असली हुआ तो भी नकली है। यह तो सीधा तर्क था।
उस दिन से उन्होंने रज्जु-सर्प भ्रम की बात करनी बंद कर दी। मैं उनकी सभा में जाऊं भी तो मेरी तरफ गुस्से से देखें। एक-दो दफा मैंने पूछा भी कि साहबदास जी बहुत दिन से रज्जु-सर्प की बात नहीं समझाई।
कि तू चुप रह भइया! अब ऐसी बातें समझा कर क्या और हड्डी-पसली तुड़वानी है।
और उस गली से भी उन्होंने निकलना बंद कर दिया। वे चक्कर लगा कर काफी दूर से जाने लगे।
एक तरफ चिल्लाते रहे ये लोग कि यह सारा संसार माया है, फिर भी इसमें स्त्री का सुख माया नहीं! इसमें स्त्री में सुख है। और यह सुख त्याज्य है। बस यही त्याग करने योग्य है, यहां कुछ और त्याग करने योग्य नहीं है।
मैं तुमसे कहता हूं, त्याग करने योग्य मन है, और कुछ भी नहीं। स्त्री हो, कि धन हो, कि पद हो, प्रतिष्ठा हो; सब मन के ही खेल हैं। स्त्री तो बस एक खेल है। स्त्री के लिए पुरुष एक खेल है। और स्त्री से मुक्त हो जाना कोई कठिन मामला नहीं है। सभी पति अपनी पत्नी से मुक्त हो जाते हैं। सभी पत्नियां अपने पतियों से मुक्त हो जाती हैं। वह तो दूसरों की रस्सियों में सांप दिखाई देते रहते हैं, करो क्या? अपनी रस्सी को तो सभी पहचान लेते हैं कि रस्सी ही है भइया, कुछ खास नहीं। कितना ही साड़ी वगैरह पहनाओ, है रस्सी। कितना ही रंग-रोगन पोतो, कितना ही कोट वगैरह पहनाओ, है रस्सी! पति- पत्नियां अच्छी तरह पहचान लेते हैं। तभी तो एक-दूसरे की तरफ देखते भी नहीं, ऐसे मुक्त हो जाते हैं।
हां, दूसरों की पत्नियों में अभी भी दिखता है कि पता नहीं, साड़ी के भीतर रस्सी न हो, कुछ और हो! कोट पहने चले जा रहे हैं एक सज्जन; अब पता नहीं कि कंधों के भीतर रुई भरी है कि सच में कंधे इतने मजबूत हैं! वृषभ देव हैं या सिर्फ रुई भरी है? छाती बड़ी फूली मालूम पड़ रही है। हालांकि खुद की छाती वे जानते हैं कि रुई भरी है। खुद भरवाई है। मगर दूसरों को भ्रम होता रहता है।
सवाल मन का है। और स्त्री से छूट जाओगे तो कहीं और दौड़ोगे। जो लोग धन
के पीछे दीवाने हैं अक्सर स्त्रियों से छूट जाते हैं। उनका तो सारा मोह ही

धन में लग जाता है। उनको स्त्री वगैरह नहीं सुहाती। वे तो नोट को जब देखते हैं तब उनको लैला की याद आती है। जब वे नोट को छूते हैं, ताजा करंसी का नोट, अभी-अभी निकला हुआ, चला आया अभी-अभी बैंक से। उसको छूते हुए देखो किसी धन के प्रेमी को। क्या तुमने किसी प्रेमी को किसी प्रेयसी को छूते देखा होगा! एकदम उसकी लार टपकती है, गदगद हो जाता है, छाती से लगा लेता है।
पद के लोभी, राजनीति के युद्ध में दौड़ने वाले योद्धा, उनको पत्नियां वगैरह छोड़ने में कोई अड़चन नहीं होती। फुर्सत ही कहां उनको पत्नियां वगैरह की। दिल्ली जाएं कि पत्नी को देखें? चुनाव लड़ें कि पत्नी को देखें? कभी- कभी मिलना-जुलना हो जाता है, बाकी कोई रस नहीं रहता। जिनको एक बार पद का, धन का, प्रतिष्ठा का मोह लग गया, वे इस मोह से बड़ी आसानी से मुक्त हो जाते हैं। ये तो सीधे-सादे लोग हैं जो स्त्री-पुरुषों में उलझे रहते हैं। जो छंटे हुए बदमाश हैं वे तो दूसरी चीजों में लग जाते हैं।
मैं नहीं कहूंगा कि स्त्री के सुख को छोड़ना सबसे बड़ा त्याग है। जब सुख
को ही छोड़ने की बात उठी तो जड़ से ही काटो। मन को छोड़ना सबसे बड़ा त्याग है। और मन को छोड़ने का परिणाम समाधि है। मन छोड़ना है, समाधि पानी है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
फिर पूछते हैं, "परम दान क्या है? सर्वथा अभय ही।"
यह बात भी कुछ बहुत मतलब की नहीं। क्योंकि जिसको अभय देना हो, पहले तो उसको भयभीत करना पड़े। यह तो सीधी बात है। जब तक किसी को भयभीत न करो, उसको अभय का दान कैसे दोगे? पहले धमकाओ, छाती पर छुरा लगाओ। उसको बिल्कुल ऐसी हालत में कर दो कि अब मरा तब मरा, और फिर उसको अभय दान दो।
लोग कहते हैं कि महावीर बड़े दयाशील थे, मैं कहता हूंः गलत! क्योंकि महावीर ने कभी क्रोध नहीं किया, इसलिए दया कैसे करेंगे? दया करने के लिए क्रोध अनिवार्य है। महावीर अक्रोधी थे, दयावान नहीं। बुद्ध को लोगों ने कहा महा-क्षमावान। गलत! क्योंकि क्षमा करने के लिए पहले तो क्रुद्ध हो जाना जरूरी है। या कि तुम सोचते हो कि बिना क्रुद्ध हुए भी क्षमा कर सकते हो?
मदर टेरेसा का मुझे पत्र मिला। उस पत्र में उन्होंने लिखा है कि मैं आपको क्षमा करती हूं।
क्षमा करने का मतलब? मतलब पहले तो भुनभुना गई होंगी। बाई बहुत उचकी- कूदी होगी। नहीं मूंछें कोई बात नहीं, ताव तो दिया ही होगा। दिल में बड़े- बड़े ख्याल उठे होंगे कि यह करूं कि वह करूं। फिर ख्याल आया होगा कि अरे, मैं ईसाई; कैथोलिक ईसाई। कोई साधारण नहीं--महात्यागी, व्रती। क्षमा कर दूं। मगर क्षमा के पहले तो क्रोध जरूरी है।
मुझसे कोई कहे कि आप मदर टेरेसा को क्षमा कर दो। नहीं कर सकता, कैसे करूं? क्रुद्ध ही नहीं हुआ, क्षमा कैसे कर दूं? क्षमा तो नंबर दो है, क्रोध नंबर एक है। मैं क्षमा नहीं कर सकता, असमर्थ हूं। न महावीर ने किसी को क्षमा किया, न बुद्ध ने किसी को क्षमा किया। हमने गलत समझा। हम उनके अक्रोध को क्षमा समझ लिए। वह हमारी भूल है।
शंकराचार्य कहते हैं, "अभय का दान।"
नहीं, यह बात ठीक नहीं है। फिर किस चीज का दान सबसे बड़ा दान है?
मैं तो समाधि से ही सारे सूत्र निकालना चाहता हूं। मन का त्याग-- समाधि। और समाधि से जो बहता है--वह प्रेम। वही दान है। क्या अभय? मन को छोड़ो, समाधि मिलती है। समाधि मिले तो जैसे फूल खिल जाएं और सुगंध उड़े, ऐसा समाधि में सहस्रदल कमल खुलता है; तुम्हारी चेतना का कमल खुलता है। और उससे सुगंध उड़ती है। उसको दान कहना भी ठीक नहीं। जिसको लेना हो ले, जिसको न लेना हो न ले। कोई न हो तो भी सुगंध उड़ेगी।
झील में जब फूल खिलेगा तो कोई इसकी फिक्र नहीं करेगा कि कोई आए दर्शक
कि नहीं, कि आज बस आई पर्यटकों की कि नहीं। सुगंध तो उड़ेगी ही उड़ेगी। हवाओं में उड़ेगी, चांद-तारों की तरफ उड़ेगी। सूरज की किरणों पर चढ़ेगी। कोई होगा तो ठीक, कोई नहीं होगा तो ठीक। कोयल गीत गाएगी ही गाएगी, कोई सुने कि न सुने। कोई इसकी फिक्र थोड़े ही करेगी कि पहले पता लगाएं कि कोई कवि वगैरह, कोई संगीतज्ञ वगैरह आस-पास हैं भी समझने वाले कि नहीं! कोयल तो गीत गाएगी।

वैसे ही जब भीतर समाधि जगती है तो जैसे दीया जले और रोशनी फैले, ऐसे समाधि से प्रेम फैलता है। मन से मुक्त होने पर समाधि मिलती है। समाधि मिलने पर प्रेम की सुगंध बंटती है। उसे दान कहना भी उचित नहीं है। दान जरा गंदा शब्द है।
हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए
पयामे-मौत भी मोजिजा है जिंदगी के लिए
चमन में फूल भी हर एक को नहीं मिलते
बहार आती है, लेकिन किसी-किसी के लिए
हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए
हमारी खाक को दामन से झाड़ने वाले
सब इस मुकाम से गुजरेंगे जिंदगी के लिए हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए उन्हीं के शीशा-ए-दिल चूर-चूर हो के रहे तरस रहे थे वो दुनिया में दोस्ती के लिए हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए
ये सोचता हूं जमाने को क्या हुआ या रब किसी के दिल में मुहब्बत नहीं किसी के लिए
हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए
हमारे बाद अंधेरा रहेगा महफिल में
बहुत चिराग जलाओगे रोशनी के लिए
हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए
पयामे-मौत भी मोजिजा है जिंदगी के लिए
समझ चाहिए! तो मौत भी, मौत का संदेश भी, जिंदगी का जादू ही लाता है।
ये सोचता हूं जमाने को क्या हुआ या रबकिसी के दिल में मुहब्बत नहीं किसी के लिए
कुछ और नहीं हुआ है। कभी मुहब्बत नहीं रही किसी के लिए। यह कुछ आज नहीं हुआ है। मुहब्बत तो उन थोड़े-से लोगों ने जानी है जिन्होंने अपने समाधि के फूल को खिलाया है।
बहार आती है, लेकिन किसी-किसी के लिए
हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए
बहार तो आती है, और मैं तुमसे कहता हूं सभी के लिए आती है, लेकिन सभी के लिए आ नहीं पाती। आती तो है किसी-किसी के लिए। बहार तो आ जाती है, मगर तुम्हारे फूल तो तुम्हें पता ही नहीं। तुम्हारे फूलों पर तो तुम्हारे मन के पत्थर चढ़े बैठे हैं। चट्टानों के नीचे दबे हैं तुम्हारे फूल, तुम्हारे बीज।
बहार आती है, लेकिन किसी-किसी के लिए
हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए
चमन में फूल भी हर एक को नहीं मिलते
मिल तो सकते हैं, मिलते नहीं यह और बात है। जिम्मा हमारा है। कसूरवार
हम हैं। सोचने के ढंग अगर गलत होंगे तो न फूल खिलेंगे, न गंध उड़ेगी।
इस पूरे शंकराचार्य के सूत्र को अगर मुझसे कोई पूछे तो मैं कहूंगाः
मन से मुक्ति सबसे बड़ी मुक्ति। समाधि की उपलब्धि, सबसे बड़ी उपलब्धि।
समाधि में जो जाना जाता है--अनाम, ओंकार, ताओ--वह सबसे बड़ा अनुभव। और समाधि से जो सहज गंध उठती है, रोशनी बिखरती है--प्रेम--वही सबसे श्रेष्ठ दान।
आज इतना ही।

सांच सांच सो सांच
ग्यारहवां प्रवचन

ठहरो, विराम में आओ

पहला प्रश्नः ओशो, संत बुल्लेशाह की ते काफी इस प्रकार है--
तंग छिदर नहीं विच तेरे, जिथे कख न इक समांवदा ए।
ढूंढ वेख जहां दी ठौर किथे, अनहुंदड़ा नजरी आंवदा ए।
जिवें ख्वाब दा ख्याल होवे सुत्तियां नूं, तरहां तरहां दे रूप दिखांवदा ए।
बुल्लाशाह न तुझ थीं कुझ बाहर, तेरा भरम तैनूं भरमांवदा ए।
अर्थात, हे प्यारे, तू इतना तंग है कि तुझमें कोई छिद्र झरोखा नहीं, जिसमें एक तिनका भी नहीं समा सकता है।
ढूंढ कर देख कि इस जहान की ठौर कहां है? अनहोना नजर आ रहा है।
जिस प्रकार सोए हुओं को ख्वाब के ख्याल होते हैं, ऐसे ही तरह-तरह के रूप दिख रहे हैं।
बुल्लेशाह कहते हैं कि तुझसे कुछ भी बाहर नहीं है, किंतु तेरा भरम ही तुझे भरमा रहा है।
ओशो, निवेदन है कि बुल्लेशाह की इस काफी को हमें समझाएं।

ऊषा, मनुष्य एक अद्वितीय स्थिति है। और ध्यान रखना शब्द--स्थिति। एक जगत है मनुष्यों के नीचे पशुओं का। वे पूरे ही पैदा होते हैं; उन्हें जो होना है, वैसे ही पैदा होते हैं। और एक जगत है मनुष्य के ऊपर बुद्धों का। उन्हें जैसा होना है वे हो गए हैं, अब कुछ होने को नहीं बचा। और दोनों के मध्य में मनुष्य की चिंता का लोक है। उसे जो होना है अभी हुआ नहीं; जो नहीं होना है वह अभी है। इसलिए तनाव है, खिंचाव है।
पीछे की तरफ खींचता है पशुओं का लोक, पक्षियों का लोक, वृक्षों का लोक, नदी-पहाड़ों का लोक। आगे की तरफ खींचता है बुद्धों का लोक, जिनों का लोक, तीर्थंकरों का लोक, अवतारों का लोक। दोनों आकर्षण प्रबल हैं। पीछे के आकर्षण का बल यह है कि वह हमारा अनुभव है--अचेतन में दबा हुआ। उन सारी योनियों से हम यात्रा करके आए हैं, वे जानी-मानी हैं, परिचित हैं; उनमें लौट जाना आसान मालूम होता है।
इसीलिए शराब और शराब जैसे मादक द्रव्यों का इतना प्रभाव है। शराब की खूबी यही है कि थोड़ी देर को तुम्हें तुम्हारी आदमियत से नीचे गिरा देती है; तुम्हें फिर वापस पशुओं के जगत का हिस्सा बना देती है--वही शांति, वही सन्नाटा, वही निश्चिंत भाव। सुखद मालूम होता है। लेकिन वापस तो लौटना ही होगा। थोड़ी-बहुत देर नशे में डूब कर फिर वहीं लौट आओगे जहां थे--और भी ज्यादा चिंताओं में। क्योंकि जितनी देर तुम बेहोश रहे, चिंताएं बढ़ती रहीं। चिंताएं तुम्हारी बेहोशी की फिक्र नहीं करतीं। फिर रोज-रोज ज्यादा शराब, ज्यादा मादक द्रव्य लेने होंगे, क्योंकि तुम उनके अभ्यस्त होने लगोगे। लोग इतने अभ्यस्त हो सकते हैं कि तुम्हें पता ही न चले कि वे पीए हुए हैं।
मेरे एक मित्र हैं। पुराने पियक्कड़ हैं, गहरे पियक्कड़ हैं। उनकी शादी हुई। पांच साल बाद उनकी पत्नी को पता चला कि वे शराब पीते हैं, क्योंकि एक दिन घर वे बिना पीए आ गए। जिस दिन बिना पीए आए उस दिन पता चला। रोज पीकर आते थे तो बिल्कुल स्वाभाविक मालूम होते थे। बिना पीए आए तो थोड़े डगमगाते थे, थोड़े अस्तव्यस्त थे, थोड़े बेचैन थे। जिस दिन बिना पीए आए उस दिन पत्नी को शक हुआ कि कुछ गड़बड़ है।
मैं उनसे वर्षों से परिचित हूं। कितना ही उन्हें पिला दो, तुम ऊपर से जांच करके बता नहीं सकते कि वे पीए हुए हैं, अभ्यस्त हो गए। शरीर ने इस नए रसायन को सीख लिया।
और फिर, लाख भूल जाओ, भूलने से चिंता मिटती नहीं। चिंता तो अपनी जगह खड़ी है। और चिंता मनुष्य की दुश्मन भी नहीं है, उसकी मित्र है। चिंता का कांटा ही तो उसे आगे बढ़ाता है। वही तो उसकी चुनौती है। ऋग्वेद के सोमरस से

लेकर आल्डुअस हक्सले के एल. एसड़ी. तक आदमी ने निरंतर इस बात की खोज की है कि मैं वापस कैसे लौट जाऊं। कवियों के मन में बहुत आकर्षण होता है पक्षियों जैसे आकाश में उड़ने का--मुक्त गगन! फूलों जैसे सूरज में खिलने का! वृक्षों की हरियाली, नदियों का कल-कल नाद! सागर में उठते तूफान और आंधियां! आकाश में गरजते बादल और कड़कती बिजलियां! और कवि आतुर हो आता है--लौट चले पीछे को! यह आकस्मिक नहीं है कि कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ आमतौर से मादक द्रव्यों में उत्सुक हो जाते हैं। इसके पीछे कारण है। वे पीछे लौटना चाहते हैं। और पीछे लौटने का एक ही उपाय हैः हम कैसे भूल जाएं उस जगह को जहां कि हम हैं! मगर समय में पीछे लौटा ही नहीं जा सकता।
एक बाप अपने छोटे-से बेटे को समझा रहा था नेपोलियन का प्रसिद्ध वचन कि
इस जगत में कुछ भी असंभव नहीं है। उसके बेटे ने कहा, रुको, एक मिनट रुको, मैं अभी आया। मैं अभी सिद्ध करता हूं कि एक चीज निश्चित असंभव है। मैं बहुत दिन से करके देख रहा हूं, संभव होती ही नहीं।
वह भागा गया स्नानगृह में और वहां से टुथपेस्ट की डब्बी ले आया। टुथपेस्ट के ट्यूब को निकाल कर उसने जोर से पिचका कर टुथपेस्ट बाहर निकाल दिया और अपने बाप को कहा, अब इसको फिर भीतर करके दिखा दो, तो मैं मान लूंगा कि नेपोलियन ठीक कहता है कि जगत में कुछ भी असंभव नहीं। मैं तो बहुत कोशिश करके हार चुका। जो बाहर आ गया सो गया, फिर भीतर नहीं जाता।
इस छोटे-से बच्चे ने अपने ढंग से एक महत्वपूर्ण बात कह दी। छोटे बच्चे कभी-कभी बड़ी महत्वपूर्ण बात कह देते हैं। इसने यह कह दिया कि कुछ चीजें वापस नहीं लौटतीं। और समय तो निश्चित ही वापस नहीं लौटता है। कोई उपाय नहीं है समय की यात्रा में पीछे जाने का। तो आदमी आगे ही जा सकता है, पीछे नहीं। पीछे जाने की चेष्टा में जितना समय गंवाया, व्यर्थ गंवाया। उतना समय अगर हम आगे के पड़ाव की तलाश करने में लगाएं तो चिंताओं के पार हो सकते हैं, चिंताओं का अतिक्रमण हो सकता है।
मनुष्य के भीतर बुद्ध होने की क्षमता है। आया है पशुओं के जगत से, मगर लेकर आया है गीत बुद्धों का। गाना है वही गीत। तभी संताप मिटेगा। तभी चिंता टूटेगी। तभी यह बिखराव हटेगा। हम इस दुनिया में जरूर हैं, मगर हम इस दुनिया के नहीं हैं। हमें आगे जाना है। हमें पार जाना है। पार का बुलावा प्रतिपल आ रहा है। दूर का किनारा पातियों पर पातियां भेज रहा है। कब तक अनसुनी करोगे? कब तक पीठ किए रहोगे?
बुल्लेशाह उसी की याद दिला रहे हैं--उस लोक की, जो हमारा वास्तविक लोक है; जहां पहुंच कर ही हम तृप्त हो सकते हैं। हम जो हैं वही हो जाएं, जो हमारी नियति है, जो हमारा अंतरतम स्वभाव है, जो हमारी प्रकृति है--वही पूरे रूप से खिल उठे तो जीवन आनंद की वर्षा हो जाए। नहीं तो फिर सब भ्रम-जाल है। फिर सपनों में अपने को भरमाए रहो, भुलाए रहो; नशों में अपने को डुबाए रहो। मगर जीवन में कोई गति न होगी, कोई विकास न होगा। और एक दिन बहुत पछताओगे। और अक्सर यूं होता हैः फिर पछताए होत का जब चिड़िया चुग गईं खेत!

ऐ मेरे हमनशीं चल कहीं और चल
इस चमन में अब अपना गुजारा नहीं
चलना है, कहीं और चलना है!
ऐ मेरे हमनशीं चल कहीं और चल
इस चमन में अब अपना गुजारा नहीं
बात होती गुलों तक तो सह लेते हम
अब तो कांटों पे भी हक हमारा नहीं। ऐ मेरे हमनशीं...

दी सदा दार पर और कभी तूर पर
किस जगह मैंने तुझको पुकारा नहीं
ठोकरें यूं खिलाने से क्या फायदा
साफ कह दो कि मिलना गवारा नहीं। ऐ मेरे हमनशीं...

गुलसितां को लहू की जरूरत पड़ी
सबसे पहले ही गर्दन हमारी कटी

फिर भी कहते हैं मुझसे ये अहले-चमन
ये चमन है हमारा तुम्हारा नहीं। ऐ मेरे हमनशीं...

जालिमो अपनी किस्मत पे नाजां न हो
दौर बदलेगा ये वक्त की बात है
वो यकीनन सुनेगा सदाएं मेरी
क्या तुम्हारा खुदा है हमारा नहीं। ऐ मेरे हमनशीं...

आज आए हो तुम कल चले जाओगे
ये मोहब्बत को अपनी गवारा नहीं
उम्र भर का सहारा बनो तो बनो
दो घड़ी का सहारा सहारा नहीं। ऐ मेरे हमनशीं...

अपनी जुल्फों को रुख से हटा लीजिए
मेरा जौके-नजर आजमा लीजिए
आज घर से चला हूं यही सोच कर
या तो नजरें नहीं या नजारा नहीं। ऐ मेरे हमनशीं...

ऐ मेरे हमनशीं चल कहीं और चल
इस चमन में अब अपना गुजारा नहीं
बात होती गुलों तक तो सह लेते हम
अब तो कांटों पे भी हक हमारा नहीं
जितने जल्दी यह बात समझ में आ जाए उतना शुभ है कि यहां कुछ भी हमारा नहीं है। यह पड़ाव है, मंजिल नहीं। रात भर विश्राम कर लो, लेकिन सुबह चल पड़ना है। खोजना है, तलाशना है। जीवन केवल उनका है जिनकी अंतरात्मा में अन्वेषण है। अस्तित्व केवल उनका है जो सत्य की निरंतर शोध में लगे हैं, जिन्होंने एक क्षण को भी यह बात भुलाई नहीं है कि हम कहीं से आए हैं और हमें कहीं जाना है।
माना कि हमें पता नहीं है कहां से हम आए हैं और माना यह भी कि हमें पता नहीं कहां हमें जाना है, लेकिन एक बात सुनिश्चित है कि एक दिन था हम यहां नहीं थे और यह भी बात उतनी ही सुनिश्चित है कि एक दिन फिर होगा और हम यहां नहीं होंगे।
रोज तो तुम नए जन्मते बच्चों को देखते हो और रोज तो तुम बूढ़ों की अर्थियां उठते देखते हो। कब तुम्हें समझ में आएगा कि जो जन्मा है वह मरेगा! जो बना है वह मिटेगा! यह बात दो घड़ी की है। यह ताश के पत्तों का घर है; अभी आया हवा का झोंका और अभी बिखर जाएगा। यह नाव कागज की है; चल भी न पाएगी और डूब जाएगी। इसने कभी दूसरा किनारा पाया नहीं है। इसके पहले कि समय हाथ से व्यतीत हो जाए, इसके पहले कि जीवन का परम अवसर यूं ही खो जाए कंकड़-पत्थर बीनने में, जाग जाना जरूरी है।
बुल्लेशाह की यह काफी उसी जगाने की तरफ सुंदर इशारा है--
तंग छिदर नहीं विच तेरे, जिथे कख न इक समांवदा ए।
तू इतना सूक्ष्म है, ऐ प्यारे, तू इतना सूक्ष्म है सूक्ष्मातिसूक्ष्म
कि तुझ में कोई छिद्र नहीं। कोई करना भी चाहे छिद्र तो कर नहीं सकेगा। मैंने सुना है कि एक अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता हुई, जिसमें अमरीका
के कारीगरों ने एक इतना बारीक तार बनाया कि जो खाली नंगी आंखों से देखा भी न जा सके; जिसे देखने के लिए भी यंत्रों की जरूरत पड़े; जब तक खुर्दबीन से न देखो, दिखाई भी न पड़े। और फिर उस तार को दूर-दूर देशों में भेजा कि है कोई कारीगर जो इसमें छेद कर दे?
अब जो आंख से दिखाई ही न पड़े, उसमें छेद कैसे हो सके और किस यंत्र से छेद हो सके? यंत्र और भी सूक्ष्म होना चाहिए। लेकिन कहते हैं, जापान के कारीगरों ने उसमें छेद कर दिया। चौंके बहुत अमरीकी, भरोसा न हुआ। मगर मानना ही पड़ा। यंत्र साफ कह रहा था कि तार भी है और तार में छेद भी हो गया। फिर यात्रा शुरू हुई। अब वे चाहते थे कि कोई अगर और बड़ा कारीगर हो तो
इस छिद्र के चारों तरफ एक वर्तुल बना दे। तार दिखाई पड़ता नहीं, छिद्र

दिखाई पड़ता नहीं। न दिखाई पड़ने वाले तार में न दिखाई पड़ने वाला छिद्र है, उसके चारों तरफ एक घेरा बनाना है, एक रेखा खींच देनी है, एक वर्तुल बनाना है। और जर्मनी के कारीगरों ने वह भी कर दिया।
अब तो उन्होंने सोचा कि कहीं जाने से कोई प्रयोजन नहीं, लेकिन किसी ने कहा कि भारत में भी कारीगर होते हैं; बड़ा प्राचीन देश है, शायद कोई कारीगर हो, मौका एक देना चाहिए। तो वे भारत भी आए। और उल्हासनगर में सिंधी कारीगरों ने... और तो कोई कारीगर इस देश में है ही नहीं। सिंधी कारीगर हैं। उन्होंने एक चमत्कार और कर दिया। उन्होंने न दिखाई पड़ने वाले तार में किए गए न दिखाई पड़ने वाले छेद, न दिखाई पड़ने वाले छेद के चारों तरफ न दिखाई पड़ने वाले वर्तुल के चारों ओर अंग्रेजी में साफ-साफ लिख दियाः मेड इन यू.एस.ए.।
अमरीकियों की आंखें तो फटी की फटी रह गईं। उन्होंने कहा कि यह तो चमत्कार है ही, मगर तुम्हें यह कैसे पता चला कि यह यू.एस.ए. में बना? उन्होंने कहा, यू.एस.ए. क्या तुम्हारे बाप का है? अरे यू.एस.ए. का अर्थ होता है, उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन। किसी ने ठेका लिया है यू.एस.ए. का? मगर यह जो आदमी है, इसमें सिंधी भी छेद न कर सकेंगे। और सिंधी हार गया
तो सब हार गए!
बुल्लेशाह कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। सिंधियों को भलीभांति जानते रहे होंगे बुल्लेशाह, कि हे प्यारे, हे साईं, तू इतना तंग है, तू इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म है कि तुझमें कोई छिद्र नहीं किया जा सकता। तुझमें एक तिनका भी नहीं समा सकता है। तुझमें कभी कोई प्रविष्ट न हुआ है न हो सकेगा। लेकिन यूं अगर देखो तो सारी दुनिया तुममें प्रविष्ट हो गई है। तुम्हारे भीतर बाजार भरे हुए हैं। तुम्हारे भीतर दुकानें खुली हुई हैं। मंदिर हैं, मस्जिद हैं, काबा है, कैलाश है, गिरनार है। तुम्हारे भीतर क्या नहीं है! और यूं बुल्लेशाह कहते हैं कि एक तिनका भी न समा सके, तुम इतने सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो! फिर यह सारा संसार जो तुम्हारे भीतर बना हुआ है! कितने विचार कि गिनने चलो तो गिन न पाओ! और कितनी कल्पनाएं कि तौलना चाहो तो तौल न सको! और कितने सपने, कतारों पर कतार, कतार अंदर कतार! उघाड़ते चलो और कभी उघाड़ न पाओ। कितनी स्मृतियां, जैसे कोई प्याज के छिलकों को छीलता चले, छीलता चले! हर स्मृति के भीतर और स्मृति। और प्याज तो एक दिन चुक भी जाए, एक घड़ी ऐसी आए कि सारी पर्तें अलग हो जाएं और हाथ में खालीपन बचे, लेकिन स्मृतियों को उघाड़ते चलो, उघाड़ते चलो, कभी खाली न कर पाओगे। तुम्हारा स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि उसमें एक तिनका भी न समा सके। फिर यह सारी दुनिया कहां समा गई है?
बुल्लेशाह कहते हैंः यह दुनिया तुममें समाई नहीं है, सिर्फ तुम्हें ख्याल है। सिर्फ तुम्हें ख्याल है!
एक फकीर हुआ--नागार्जुन। बौद्ध फकीर था। इस पृथ्वी पर जो थोड़े-से अनूठे लोग हुए हैं, उन थोड़े-से लोगों में नागार्जुन भी एक है। उसके पास एक आदमी ने आकर कहा कि मुझसे संसार नहीं छूटता है, मैं क्या करूं?
नागार्जुन ने उसे गौर से देखा और कहा, तूने भी गजब की बात कही! मैं पकड़ना चाहता हूं और पकड़ नहीं पाता हूं और तू कहता है कि तू छोड़ना चाहता है और छूटता नहीं! हम तो बड़ी मुश्किल में पड़ गए। तूने भी कैसा सवाल उठा दिया! मैं लाख उपाय किया हूं पकड़ने का और पकड़ में नहीं आता और तू कहता है कि छूटता नहीं है। तू एक काम कर। यह सामने मेरे गुफा है, तू इसमें भीतर बैठ जा और तीन दिन तक तू एक ही बात की रट लगा... ।
बातचीत में नागार्जुन ने पता लगा लिया था कि वह काम क्या करता है। अहीर था। भैंसों का दूध बेचता था। तो नागार्जुन ने पूछा था, तुझे सबसे ज्यादा प्रेम किससे है? पत्नी से है, बच्चे से है? उसने कहा, मुझे किसी से नहीं है, मुझे अपनी भैंस से प्रेम है।
तो नागार्जुन ने कहा, तू एक काम कर। यह सामने की गुफा में अंदर चला जा, भीतर बैठ जा, तीन दिन तक खाना-पीना बंद, बस एक ही बात सोच कि मैं भैंस हूं, मैं भैंस हूं।
उसने कहा, इससे क्या होगा?

तीन दिन के बाद तय करेंगे। तीन दिन में तेरा कुछ बिगड़ा नहीं जा रहा है। जिंदगी यूं ही चली गई, तीन दिन और समझना मुझे दे दिए।
सीधा-सादा आदमी था। चला गया गुफा में। और सच में ही भैंस से उसे प्रेम था; वही उसकी जिंदगी थी, वही उसका संसार, वही उसकी धन-दौलत, वही उसकी प्रतिष्ठा। यूं भी भैंस से बिछड़ गया था तो बड़ी तकलीफ हो रही थी। इस बात से बहुत राहत भी मिली कि मैं भैंस हूं। दोहराता रहा, दोहराता रहा, तीन दिन सतत दोहराया। सीधा भोला-भाला आदमी।
तीन दिन बाद नागार्जुन उसके द्वार पर गया और कहा कि बाहर आ! उसने निकलने की कोशिश की, लेकिन निकल न सका। नागार्जुन ने कहा, क्या अड़चन है? निकलता क्यों नहीं?
उसने कहा, निकलूं कैसे? ये जो मेरे सींग हैं, गुफा का दरवाजा छोटा, सींग अटक-अटक जाते हैं।
न कहीं कोई सींग थे, न कुछ अटक रहा था। लेकिन वह आदमी अटका हुआ था। नागार्जुन भीतर गया, उसे खूब हिलाया, झकझोरा, कहा, आंख खोल! तीन दिन तक निरंतर दोहराने से कि मैं भैंस हूं, भ्रांति खड़ी हो गई। गौर से देख! यह आईना रहा, इसमें अपनी तस्वीर देख। कहां सींग हैं?
उस आदमी ने आईना देखा--न कोई सींग थे, न कोई भैंस थी। हंसने लगा। नागार्जुन के चरणों पर गिर पड़ा और कहा कि खतम हुआ। मैं सोचता था, संसार छूटता नहीं। आप ठीक कहते थे, पकड़ना भी चाहो तो कैसे पकड़ोगे? सींग हैं ही नहीं, सिर्फ ख्याल है, सिर्फ विचार हैं, सिर्फ कामनाएं हैं, सिर्फ वासनाएं हैं।
बुल्लेशाह कहते हैंः "ढूंढ कर देख कि इस जहान की ठौर कहां है, अनहोना नजर आ रहा है।"
आदमी को सींग ऊग गए हैं--भैंस के सींग! अनहोना नजर आ रहा है।
ढूंढ वेख जहां दी ठौर किथे।
जरा गौर से तो देख, इस सारे संसार का स्रोत कहां है? यह है भी या नहीं? इसकी जड़ें भी हैं कहीं या नहीं? या सिर्फ एक कल्पना का वृक्ष है, कल्पवृक्ष है, जो होता नहीं, सिर्फ मान लिया जाता है। और मान लो तो हो जाता है। हम मान्यता से एक संसार खड़ा कर लेते हैं।
ढूंढ वेख जहां दी ठौर किथे, अनहुंदड़ा नजरी आंवदा ए।
हुआ नहीं है और दिखाई पड़ रहा है। ढूंढ कर देख कि इस जहान का ठौर कहां है, अनहोना नजर आ रहा है।
यह वचन तो बड़ा प्यारा हैः अनहोना नजर आ रहा है! जो नहीं होना था, जो नहीं हुआ है, जो नहीं हो सकता है, वह लगता है कि हो गया है। किन-किन चीजों का मोह हमें पकड़ लेता है! कैसे-कैसे पागल मोह हमें पकड़ लेते हैं! हम ऐसी जंजीरों में बंधे हैं जो हैं ही नहीं। लोहे की तो छोड़ ही दो, फूलों की जंजीरें भी नहीं हैं।
जार्ज गुरजिएफ ने लिखा है कि वह बचपन में एक छोटे-से खानाबदोशों के कबीले में रहा। उस खानाबदोश कबीले की औरतें एक तरकीब जानती थीं। क्योंकि खानाबदोश कबीले, जैसे हमारे यहां बलूची आते थे। पाकिस्तान बन गया तो बलूची आने बंद हो गए। उनके न आने से एक रौनक चली गई। वे नहीं आते हैं तो कुछ कमी हो गई।
बलूची आवारागर्द थे, घुमक्कड़ थे। उनकी औरतें मजबूत थीं। घुमक्कड़ होना
हो तो औरतों को मजबूत होना ही पड़े। औरतें कमजोर हो गईं घरवाली हो कर। घर में बंद हो गईं, कमजोर हो गईं। बलूची की औरत तुम्हारे दो-चार मर्दों को पानी पिला दे। बलूची औरत किसी का हाथ पकड़ ले तो छुड़ाना मुश्किल हो जाए। मुझे याद है, जब मैं छोटा था, मेरे गांव में बलूची आते थे तो लोग डरते थे। अच्छी-अच्छी चीजें बेचने लाते थे, लेकिन उनसे खरीदना मुश्किल था। क्योंकि उनसे अगर खरीद-फरोख्त की... छोटे-से चक्कू के दस रुपए बताएंगे। अब कोई दस रुपए बताएगा दाम तो तुम बहुत भी हिम्मत करोगे तो कम से कम दो रुपए तो कहोगे। वह बलूची स्त्री राजी हो जाएगी कि ठीक है, दो रुपए सही। हाथ पकड़ लेगी। हाथ छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा। भीड़ इकट्ठी कर लेगी। दो रुपए निकलवा कर रख लेगी। चाकू मुश्किल से होगा आठ आने का, चार आने का।

बलूची स्त्रियां मजबूत थीं। सभी खानाबदोश कबीलों की औरतें मजबूत होती हैं। होना ही पड़ेगा। ऐसे हर कोई बलात्कार कर दे तो नहीं चलेगा। रोज चलना है, यात्रा करनी है। और दिन भर काम में लगे रहना है। इस तरह नहीं चलेगा, जैसा कि घूंघट मार कर बैठ गए।
गुरजिएफ ने लिखा हैः मैं एक कबीलों में रहा, जो खानाबदोश था।
खानाबदोश बड़ा प्यारा शब्द है। खानाबदोश का अर्थ होता है, जिसका मकान अपने कंधे पर है। खाना यानी मकान। इसलिए कहते हैं--शराबखाना, मयखाना, दवाखाना। खाना यानी मकान। और बदोश... दोश का अर्थ होता हैः कंधा। खानाबदोश का अर्थ होता है, जिसका मकान अपने कंधे पर; जो हमेशा चल रहा है; जो चलता ही रहता है; जो रुकता ही नहीं; जो कहीं मजबूत मकान नहीं बनाता, तंबू बांधता है। अभी बांधा और सांझ उखड़ जाएगा। सांझ बांधा और सुबह उखड़ जाएगा। सच पूछो तो हम भी सब खानाबदोश हैं संसार में। सुबह बांधा तंबू, सांझ उखड़ जाएगा। गुरजिएफ ने कहा है कि उस कबीले की औरतें एक तरकीब जानती थीं, जो मुझे बहुत हैरान करती थी। वह तरकीब यह थी कि वे अपने बच्चों को--दिन भर तो उन्हें काम करना है, बाजार में सामान बेचना है, तरह-तरह के धंधे करने हैं-- वे अपने बच्चों को क्या करें? अपने बच्चों को बिठा देतीं, खड़िया मिट्टी से उन बच्चों के चारों तरफ एक सफेद लकीर खींच देतीं और बच्चों से कह देतीं कि इस लकीर के बाहर तुम निकल न सकोगे; लाख उपाय करोगे और निकल न सकोगे। बचपन से ही बच्चों को यह बात सिखाई जाती।
और बच्चों की तो बात और, गुरजिएफ ने लिखा है कि खानाबदोश औरत अपने पति
के चारों तरफ लकीर खींच देती और कह देती कि बस इसके बाहर नहीं निकल सकोगे। गुरजिएफ तो बड़ा हैरान हुआ। बच्चा समझ लो कि बच्चा है, मान गया। लेकिन जिसने बीस-पच्चीस साल तक यह बात मानी हो, उसके भीतर गहरी बैठ गई। वह अब पति ही सही, मगर भीतर तो वही बच्चा है; और कहने वाली आज मां न सही, पत्नी है, मगर है तो वही औरत, है तो वही स्त्री। वही बल, वही धमकी--बाहर निकल न सकोगे! बाहर निकले कि मुसीबत में पड़ जाओगे, बीमार पड़ जाओगे, लंगड़े हो जाओगे, अंधे हो जाओगे। इस तरह की सारी धमकियां।
गुरजिएफ ने देखा कि जवान आदमी, बूढ़े आदमी के चारों तरफ लकीर खींच दें औरतें, वे बाहर न निकल सकें। निकलने की कोशिश करें तो यूं हो जैसे कि कोई अदृश्य दीवार, कांच की कोई पारदर्शी दीवार उन्हें रोक लेती है। बस वे लकीर तक आएं, हाथ से टटोलें, जैसे कोई चीज रोक रही है और वापस लौट जाएं। गुरजिएफ ने कहा है, वहां मुझे पहली बार समझ में आया कि आत्म-सम्मोहन क्या है। और वहीं मैंने समझा कि यह संसार का उपद्रव क्या है।
हम सब आत्म-सम्मोहित हैं। जिस चीज को हमें धन बता दिया गया, हमने धन मान लिया। और जिस चीज को हमें पद बता दिया गया, हमने पद मान लिया। जिस चीज को हमसे कहा गया बहुमूल्य है, हमने बहुमूल्य मान लिया। और कंकड़-पत्थरों को हीरों की तरह पूज रहे हैं। दो कौड़ी की चीजों के पीछे जिंदगी भर दौड़ रहे हैं।
पूछते हैं बुल्लेशाहः ढूंढ वेख--अरे, जरा ढूंढ के तो देख--जहां दी ठौर किथे।
यह तेरा सारा संसार, इसका स्रोत कहां है? इसका स्रोत आत्म-सम्मोहन में है।
अनहुंदड़ा नजरी आंवदा ए।
जो हुआ ही नहीं है, वह दिखाई पड़ रहा है। एक चमत्कार हो रहा है। जो नहीं
है वह दिखाई पड़ रहा है।
कैदे-औहाम से आजाद हुए फिक्रो-नजर
जल उठे तीरा-ओ-तारीक दिमागों में चिराग
भ्रमों की कैद से विचार और दृष्टि मुक्त हो जाएं तो अभी तुम्हारे भीतर का चिराग जल जाए।
कैदे-औहाम से आजाद हुए फिक्रो-नजर
जल उठे तीरा-ओ-तारीक दिमागों में चिराग
आखिरशः चांद-सितारों में भटकने वाले
पा गए खाक के जर्रों में ही मंजिल का सुराग

चांद-तारों में खोजने मत जाओ, कहीं दूर नहीं है सुराग। राज की बात यहीं है, तुम्हारे आस-पास है।
कैदे-औहाम से आजाद हुए फिक्रो-नजर
जरा अपने अंधविश्वासों को हटा कर रख दो। आंखों पर चढ़े हुए जालों को काट दो। ये मकड़ी के जाल जो तुमने अपने चारों तरफ खुद ही बुन लिए हैं, इनको जिस दिन चाहो तोड़ दे सकते हो।
कैदे-औहाम से आजाद हुए फिक्रो-नजर
जल उठे तीरा-ओ-तारीक दिमागों में चिराग
बस फिर अंधेरे से भरे हुए अंतर-कक्ष में चिराग जल उठते हैं।
आखिरशः चांद-सितारों में भटकने वाले
और दूर मत भटको, कहीं चांद-तारों पर रोशनी नहीं है। रोशनी का राज तुम्हारे भीतर है।
आखिरशः चांद-सितारों में भटकने वाले
पा गए खाक के जर्रों में ही मंजिल का सुराग
यहीं, अभी और यहीं मंजिल का रास्ता पाया जा सकता है। और अगर यहीं नहीं पाया जा सकता है तो फिर कहीं नहीं पाया जा सकता।
एक आदमी ने अपनी कार को रोका एक चौराहे पर। झाड़ के नीचे बैठे एक बूढ़े
से पूछा--जो कि तमाखू फांक रहा था--कि बाबा, स्टेशन की तरफ जाने वाला रास्ता कौन है? बूढ़ा तो तमाखू मलता ही रहा। और उसके ढंग से ऐसा लगा-- बामुश्किल उसने आंखें खोलीं--कि तमाखू ही नहीं, कुछ और भी चढ़ाए बैठा हो। अफीमची था, पीनक में था। उसने कहा, स्टेशन! स्टेशन यानी क्या?
कार का मालिक तो हैरान हुआ कि जिस आदमी को यही पता नहीं कि स्टेशन यानी क्या, वह क्या खाक रास्ता बताएगा! मगर कोई और दूसरा नजर भी न आता था, तो समझाना पड़ा कि स्टेशन वह जहां रेलगाड़ी में लोग बैठते हैं। उसने कहा, हां, ठीक। यहां से बाएं जाओ, मील भर के बाद दाएं मुड़ जाना। नहीं-नहीं, इस रास्ते से नहीं पहुंच सकते।
तो उस आदमी ने पूछा कि फिर वही रास्ता बताओ न जिससे पहुंच सकते हैं।
तो उसने कहा, यहां से दाएं तरफ जाओ। एक फर्लांग के बाद फिर एक चौराहा पड़ेगा, उसमें फिर दाएं तरफ मुड़ जाना। फिर एक चौराहा पड़ेगा। नहीं-नहीं, इससे भी नहीं जा सकते। यह तीसरा रास्ता चुनो। और बात फिर वहीं आई कि नहीं- नहीं, इससे भी नहीं जा सकते। चौथा रास्ता और भी लंबा था। काफी मोड़ आए और काफी मुड़ना पड़ा और आखिर में उसने कहा कि नहीं-नहीं। और चार ही रास्ते थे। आखिर घबड़ा गया वह गाड़ी का मालिक। उसने कहा, तो इसका क्या मतलब? स्टेशन पहुंच ही नहीं सकते? उसने कहा कि अगर तुम मुझसे पूछो तो यहां से तो स्टेशन जाने का कोई उपाय ही नहीं। नहीं तो मैं खुद ही न चला गया होता। चार ही रास्ते हैं और किसी से भी जाने का कोई उपाय नहीं।
अगर यहां से वहां जाने का कोई उपाय नहीं है तो फिर कहां से जाओगे? उपाय
तो यहीं से होना चाहिए--यहीं से है--पा गए खाक के जर्रों में ही मंजिल का सुराग।
सवादे-मर्ग में आखिर हयात ढूंढ ही ली
यह मृत्यु की नगरी है--सवादे-मर्ग!
सवादे-मर्ग में आखिर हयात ढूंढ ही ली
गुनाहगारों ने राहे-नजात ढूंढ ही ली
यह जीवन क्या है? एक मुर्दों की नगरी है। इसको बस्ती न कहो, इसे मरघट कहो। कोई आज मरा, कोई कल मरा, कोई परसों मरा, कोई पहले मर चुका, कोई पीछे मर चुका। कतार लगी है मरने वालों की। जिसका नंबर आया, चला। मुसाफिरखाना है। लेकिन इसी मुर्दों की नगरी में भी खोजने वालों ने, चाहे वे कितने ही गुनाहगार क्यों न रहे हों, अगर खोजने वाले थे तो उन्होंने मुक्ति का मार्ग खोज लिया है।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि पंडित भला चूक जाएं... चूकते हैं, क्योंकि पंडितों को यह भ्रम होता है कि हम तो जानते ही हैं, इसलिए खोजें ही क्यों? पापी अक्सर पहुंच जाते हैं, पंडित अक्सर चूक जाते हैं। क्योंकि पापी को तो यह पीड़ा होती है कि कैसे पाऊं, कैसे खोजूं, क्या करूं, क्या न

करूं! कब तक इस दुख में रहूं? कब तक इस दीनता में जीऊं? कब तक यह गुलामी और? कब तक यह अंधेरा और?
सवादे-मर्ग में आखिर हयात ढूंढ ही ली
गुनाहगारों ने राहे-नजात ढूंढ ही ली
यूं तो यह एक मुर्दों की बस्ती है। लेकिन यहां भी जिंदगी को खोजने वाले लोग हो गए। मुर्दों की इस बस्ती में भी जिंदगी खोज ली। कब्रों में भी, जिन्होंने खिलाने थे, उन्होंने गुलाब के फूल खिला लिए। और पापियों ने भी मुक्ति का मार्ग खोज लिया है। आखिर जिसने भी मुक्ति पाई है, वह कभी न कभी पापी तो था ही। बुद्ध बुद्ध नहीं हुए थे तब तक तो पापी थे ही। और महावीर जब तक महावीर न हुए थे तब तक तो पापी थे ही। पाप तो यूं है जैसे रात। और बुद्धत्व तो यूं है जैसे सुबह। हर रात की सुबह है और हर सुबह के पीछे रात है। इसलिए अपने पाप के बोझ से दब मत जाना।
इस दुनिया में अगर कोई चीज है जो रुकावट बन सकती है तो वह पांडित्य है--थोथा पांडित्य। लेकिन पाप नहीं। पाप में क्या है? तुम पाप भी क्या करोगे? तुम्हारी औकात और हैसियत कितनी? आदमी कर-कर के भी क्या पाप करेगा? इस चार दिन की जिंदगी में ये छोटे-से चार लमहे! क्या गुनाह कर लोगे? और अगर गुनाह करोगे भी तो उसका बुनियादी कारण सिर्फ इतना ही है कि तुम्हें अपना पता नहीं, इसलिए यहां-वहां भटक जाते हो। तुम कसूरवार नहीं हो।
एक आदमी ने, अकबर की सवारी निकलती थी, अपने छप्पर पर चढ़ कर अकबर को खूब गालियां दीं। कमबख्त से लेकर हरामजादे तक जो भी कह सकता था कहा। बीच में और बातें भी कहीं जो नहीं कही जा सकतीं। सम्राट अकबर की सवारी हाथी पर, शोभा-यात्रा, और यह आदमी अपने छप्पर पर चढ़ कर गालियां बकने लगा। तत्क्षण पकड़ लिया गया। दूसरे दिन अदालत में मौजूद किया गया। वह एकदम अकबर के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे माफ कर दें।
अकबर ने कहा कि यह मामला आसान नहीं। तुम्हारा अपराध संगीन है।
उस आदमी ने कहा, मेरा अपराध? क्या बातें करते हैं आप! क्या अपराध?
अकबर ने कहा, तुमने गालियां बकीं, बेहूदी गालियां बकीं, हजारों लोगों
के सामने बकीं।
वह आदमी कहने लगा, थोड़ा सोचें, मैं शराब पीए हुए था। मैं होश में न था।
अब बेहोश आदमी ने जो काम किया है, क्या होश में आए आदमी को उसकी सजा मिलेगी? गालियां दी होंगी शराब ने, मैं क्यों देने चला! मैंने नहीं दीं। अकबर ने सोचा और बात मान ली। अकबर ने कहा, यह बात तो ठीक है। तू तो दूसरा ही आदमी मालूम होता है--इतना विनम्र, इतना सदाशय, इतना भोला-भाला। वे गालियां जरूर शराब ने दी थीं।
मैं तुमसे कहता हूं कि तुमने अगर अपनी मूर्च्छा में कुछ गुनाह किए हैं तो तुमने थोड़े ही किए हैं, मूर्च्छा ने किए हैं। और जिस दिन जाग जाओगे, गुनाह समाप्त हो जाएंगे। तुमने न कभी किए थे और अचानक तुम पाओगे कि तुम अब करना भी चाहो तो नहीं कर सकते हो। सिर्फ जाग जाने की बात है।

बागे-आलम पे हुए कितने खिजां के मलगार
जिंदगानी पे कई मौत ने छापे मारे
कभी यूनां से कभी रोम से तूफान उठे
वादी-ए-नील से उबला कभी खूनी सैलाब
आग भड़की कभी आतिशकदा-ए-फारिस से
जिंदगी शोलों में तप-तप के निखरती ही गई
जितनी ताराज हुई और संवरती ही गई
घबड़ाओ न। यह तो इस जीवन के निखारने का उपाय है।
जिंदगी शोलों में तप-तप के निखरती ही गई
जितनी ताराज हुई और संवरती ही गई
भूल-चूकों से मत डरना। भूल-चूकों से ही आदमी सीखता है। पापों से मत घबड़ाना, क्योंकि पापों से ही प्रार्थनाएं उठती हैं। अगर डरना किसी चीज से तो थोथे पांडित्य से डरना, क्योंकि थोथा पांडित्य अहंकार उठाता है। और अहंकार ही दीवार बन जाती है। अहंकार से बड़ा आंख पर कोई परदा नहीं। गुनहगार पहुंच जाएंगे, मगर तुम्हारे पंडित और पुरोहित नहीं पहुंच सकते।

करना कुल इतना है कि अंधविश्वासों से, जो दूसरों ने तुम्हें दे दिए हैं सब उधार और बासे, उनसे अपनी आंखों को रिक्त कर लेना है, खाली कर लेना है।
ढूंढ वेख जहां दी ठौर किथे, अनहुंदड़ा नजरी आंवदा ए।
"जरा ढूंढ कर तो देख कि जहान का ठौर कहां है, अनहोना नजर आ रहा है।"
जो कभी हुआ ही नहीं, वह होता नजर आ रहा है। जो होना नहीं चाहिए था, होता नजर आ रहा है। जो हो ही नहीं सकता, होता नजर आ रहा है।
यह वचन बड़ा प्यारा हैः अनहुंदडा नजरी आंवदा ए!
जिवें ख्वाब दा ख्याल होवे सुत्तियां नूं
जैसे सोते समय सपने होते हैं।
तरहां तरहां दे रूप दिखांवदा ए।
और कितने तरह के रूप दिखाई नहीं पड़ते!
चीन का एक सम्राट, उसका इकलौता बेटा। बड़ा दुखी था, क्योंकि बेटा मर रहा था। और चिकित्सकों ने कह दिया था, बचने का कोई उपाय नहीं। आज की रात आखिरी रात है। सुबह नहीं होगी। बूढ़ा बाप उस रात सो न सका। अपने बेटे के पास ही बैठ कर रात भर उसे देखता रहा। फिर तो यह चेहरा देखने को मिलेगा भी नहीं। लड़का बेहोश पड़ा है--सुंदर प्यारा राजकुमार! फूलों पर पाला था उसे। सब तरह से सम्हाला था उसे। सम्राट की तो जैसे आंखों की रोशनी जा रही है। बेटा नहीं मर रहा है, सम्राट ही मर रहा है। रात भर बैठा रहा, लेकिन सुबह चार बजे होते-होते, बूढ़ा आदमी, आंखों से आंसू झरते रहे, रोते-रोते थक भी गया, झपकी खा गया। झपकी में उसने एक सपना देखा। सपना देखा कि उसके बारह राजकुमार हैं--एक से एक सुंदर, एक से एक बुद्धिमान, एक से एक बलशाली। और उसके बहुत-से स्वर्ण-महल हैं। और उसका साम्राज्य इतना बड़ा है कि उसे खुद भी अपनी सीमाओं का कुछ पता नहीं। यात्रा इतनी लंबी है कि कौन उन सीमाओं तक जाए!
और तभी उसकी पत्नी छाती पीट कर रोई, क्योंकि लड़के ने सांस तोड़ दी। सम्राट ने आंख खोली। भौचक्का-सा बैठा रहा। फिर हंसने लगा। पत्नी समझी कि पागल हो गया। बेटा मरे और कोई हंसे! इकलौता बेटा मरे और कोई हंसे! जिस पर सारी नजरें थीं जिंदगी भर। क्योंकि वही तो मालिक होने वाला था साम्राज्य का। बाप तो बूढ़ा हो गया, अब मरा, तब मरा। बेटे पर ही सारी आकांक्षाएं टिकी थीं। उसकी मृत्यु पर बाप हंसे! पत्नी ने कहा, तुम्हें क्या हो गया है? हिलाया-डुलाया--होश में हो कि पागल हो गए हो?
सम्राट ने कहा, नहीं, पागल नहीं हुआ। अब मैं यह सोच रहा हूं कि अभी-अभी मैं जो सपना देख रहा था, बारह सुंदर राजकुमार थे मेरे, न मालूम कितने सोने के महल थे! उन महलों की सीढ़ियों पर हीरे-जवाहरात जड़े थे। उन महलों में अंबार लगे थे धन के। मेरा राज्य इतना बड़ा था कि उसकी सीमाओं का मुझे भी कोई पता नहीं था। और आंख खुली, सारा राज्य खो गया, बारह ही राजकुमार मर गए, सोने के महल कहां खो गए, पता नहीं। वह बड़ा विराट साम्राज्य यूं पलक मारते विदा हो गया। मैं किसके लिए रोऊं? उन बारह राजकुमारों के लिए रोऊं या इस एक राजकुमार के लिए रोऊं? क्योंकि जब मेरी आंख बंद थी, यह मुझे भूल गया था। और अब जब मेरी आंख खुल गई है तो वे मुझे भूल गए हैं। कौन सच है? किसके लिए रोऊं? इसलिए हंस रहा हूं कि वह एक आंख बंद किए हुए का सपना था, यह आंख खुले हुए का सपना है, लेकिन दोनों सपने हैं। सत्य यहां कुछ भी नहीं है।
"जिस प्रकार सोए हुओं को ख्वाब के ख्याल होते हैं, ऐसे ही तरह-तरह के रूप दिख रहे हैं।"
तुमने अपने सपने संजो रखे हैं। तुम अपने सपनों को ही देख रहे हो। ये तुम्हारे प्रक्षेपण हैं।

भूले तो जैसे रब्त कोई दर्मियां न था
इतने बदल भी सकते हो तुम, ये गुमां न था
इस अंजुमन से उठ के भी हम अंजुमन में थे
खलवत वो कौन-सी थी तमाशा जहां न था
तुम क्या बदल गए कि जमाना बदल गया
तुम सर-गिरां न थे तो कोई सर-गिरां न था हम और शिकवा संजीए अहले जफा कि

दिलकमबख्त बेमजा था अगर खूं-चकां न था
"ताबां" खुलूस अहले-हरम में भी था मगर
उस अंजुमन में अपना कोई राजदां न था
यह भरा-पूरा संसार है, लेकिन यहां राजदां को पाना भी बहुत मुश्किल है-- कोई जो तुम्हारी जिंदगी के राज को समझ सके, जिसके पास बैठ कर तुम जिंदगी के राज की दो बातें कर सको। जहां ऐसा राजदां मिल जाए, समझना कि वहीं सदगुरु मिला, वहीं सत्संग मिला, जिसके पास बैठ कर सत्य की कुछ बात हो सके। नहीं तो सब झूठ का फैलाव है।
तुम्हारी शिक्षा तुम्हें झूठ सिखा रही है, क्योंकि तुम्हारी शिक्षा तुम्हें सिर्फ एक रोग देती है--महत्वाकांक्षा का रोग। और महत्वाकांक्षा जड़ है इस संसार की, इस सारे तमाशे का आधार है। वही ताबीज है, जिससे यह सारा उपद्रव चलता है। महत्वाकांक्षा का अर्थ हैः आगे होना। लेकिन क्यों? किसलिए? सबसे आगे होना है, लेकिन क्यों? क्या प्रयोजन? इस चार दिन की जिंदगी को आगे होने में ही बिता देना है? और आगे कौन कब हो पाता है? करीब-करीब लोग वर्तुल में खड़े हैं। जहां भी रहोगे किसी को आगे पाओगे। नेपोलियन के पास सब कुछ था, लेकिन उसकी ऊंचाई कम थी। और जब भी वह लंबे आदमी को देखता, उसके प्राणों में जैसे बिजली कौंध जाए। जैसे कोई छुरी भोंक दे। नेपोलियन के पास सब था, बड़ा साम्राज्य था। लेकिन वह शरीर की ऊंचाई उसके खुद के सिपाहियों से भी कम थी। उससे उसे बड़ी अड़चन होती थी। वह अड़चन उसे जिंदगी भर रही, मिटी ही नहीं।
लेनिन ने रूस के विराट साम्राज्य पर कब्जा कर लिया। लेकिन उसके पैर छोटे थे, ऊपर का हिस्सा शरीर का बड़ा था। वह अपने पैरों को छिपाए रखता था। वह कुर्सियां बड़ी बनवाता था--इतनी बड़ी कि लोगों को यह ख्याल रहे कि उसके पैर छोटे नहीं हैं। कुर्सियां इतनी बड़ी होती थीं, उसके पैर जमीन तक पहुंचते ही नहीं थे। और लोगों को पता था। वह अपनी टेबलों पर इतने बड़े कपड़े लटकाता था कि किसी को उसके लटकते हुए पैर दिखाई न पड़ जाएं। वह जहां भी जाता उसे एक ही बेचैनी बनी रहती कि उसके पैर छोटे हैं।
क्या करोगे? कुछ न कुछ कमी रहेगी, कोई न कोई आगे रहेगा। किसी के पास धन होगा तो पद न होगा। और किसी के पास पद होगा तो धन न होगा। और किसी के पास पद होगा, धन होगा, सौंदर्य न होगा। और किसी के पास पद भी हो, धन भी हो, सौंदर्य भी हो, बुद्धिमत्ता न हो। और किसी के पास बुद्धिमत्ता हो, लेकिन सौंदर्य न हो।
हमें अष्टावक्र की कथा तो मालूम ही है। कौन इससे ज्यादा बुद्धिमान आदमी कभी हुआ होगा? लेकिन शरीर आठ जगह से इरछा-तिरछा था, इसलिए नाम अष्टावक्र। आठ जगह से इरछा-तिरछा शरीर, जरा सोचो, आदमी नहीं जैसे ऊंट हुआ! अष्टावक्र के पिता गए थे जनक के दरबार में। देर हो गई थी आने में। तो अष्टावक्र को उसकी मां ने कहा कि जा अपने पिता को भोजन के लिए बुला ला, भोजन ठंडा हुआ जा रहा है।
अष्टावक्र दरबार में पहुंचा। वहां सारे लोग देख कर उसे हंसने लगे, क्योंकि वह एक तरफ पैर रखे, दूसरी तरफ दूसरा पैर पड़े; एक तरफ देखे, दूसरी तरफ दिखाई पड़े; एक हाथ इधर जाए, दूसरा हाथ उधर जाए। ऐसा आदमी ही लोगों ने नहीं देखा था। वे सब हंसने लगे।
उनको हंसता देख कर अष्टावक्र और जोर से खिलखिलाया। जनक चकित हुए। जनक
ने कहा कि वे क्यों हंस रहे हैं वह मुझे मालूम है। लेकिन तू क्यों हंसता है?
उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि मैंने सोचा था कि जनक के दरबार में
तो कुछ समझदार लोग होंगे, लेकिन यहां सब चमार इकट्ठे हैं। इनको सिर्फ चमड़ी का ही पता है। हड्डियों का ही ये हिसाब लगा रहे हैं, ये चमार हैं। इन चमारों को यहां किसलिए घुसने दिया? अरे, ब्राह्मणों को निमंत्रित करो जो ब्रह्म को जानते हों। और ब्रह्म कहीं तिरछा-इरछा होता है? यह तो मेरा शरीर है जो तिरछा-इरछा है। इससे क्या फर्क पड़ता है! और ये दरबारी तुम्हारे, जिनको तुम कहते हो तुम्हारे रत्न हैं, इनको भी शरीर ही दिखाई पड़ता है। अष्टावक्र बुद्धिमान तो था बड़ा। अष्टावक्र-गीता का कोई मुकाबला नहीं। कृष्ण की गीता भी फीकी पड़ जाती है। मैंने तो अष्टावक्र की गीता को

महागीता कहा है। हजार गीताएं उससे निकल सकती हैं, उसका एक-एक सूत्र इतना बहुमूल्य है! लेकिन बेचारा था तो कुरूप।
महत्वाकांक्षा तुम्हें इस तरह के उपद्रव सिखा देती है कि तुम्हें आगे होना है। सब चीजों में तुम आगे हो न सकोगे। एक में भी हो जाओ, यह भी आसान नहीं, सब में होना तो असंभव है। लेकिन शिक्षा यही जहर तुम्हारे भीतर डालती है। मां-बाप भी तुम्हें इसी दौड़ में लगाए रखते हैं--कुल की लाज रखना। रघुकुल रीत सदा चली आई! अपने वंशजों का, अपने पूर्वजों का सिलसिला जारी रखना। हम प्रतिष्ठित हैं, प्रतिष्ठा को बचाना! अहंकार सिखाया जा रहा है। और अहंकार के बीच से ही संसार पैदा होता है। फिर न मालूम कितने सपने--धन के, पद के, प्रतिष्ठा के! और इन्हीं सपनों में हम सब कुछ गंवा बैठते हैं।
बुल्लेशाह कहते हैंः "तुझसे कुछ भी बाहर नहीं है, किंतु तेरा भरम ही तुझे भरमा रहा है।"
कुछ भी बाहर नहीं है, तेरा भरम ही तुझे भरमा रहा है। सब तेरे भीतर है। बाहर खोज ही मत। भीतर जा, आंख बंद कर। अपने में देख।

वो ख्वाब हूं जिसे ताबीरे-ख्वाब भी समझो
मुझे सवाल भी जानो, जवाब भी समझो
मैं जी रहा हूं किसी मौजे-तहनशीं की तरह
मिरे सुकून को तुम इज्तिराब भी समझो
गमे-हयात की यूं तो हजार ताबीलें
किसी का लुत्फ भी जानो, इताब भी समझो
मिरे खुलूस को मेरी शिकस्त भी जानो
मिरी वफा को मिरा एहतिसाब भी समझो
तरब का दौर भी कुछ बावकार हो जाए
छलकते जाम को चश्मे-पुरआब भी समझो
मुसाफिरों से भी नाजुक हैं रास्तों के मिजाज
वो पेचो-खम ही सही, पेचो-ताब भी समझो
मैं कौन हूं, मुझे खुद भी पता नहीं "ताबां"
मिरे वुजूद को मेरा निकाब भी समझो
मेरा अस्तित्व ही मुझे छुपाए है। वही मेरा नकाब है, वही मेरा घूंघट है।
घूंघट के भीतर जाओ। मीरा कहती हैः घूंघट के पट खोल! बाहर-बाहर मत भटको, अगर कुछ पाना है तो भीतर आओ। और भीतर तुम वह पा लोगे जिसे पाकर सब पा लिया जाता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो,
कैसे रहूं चुप कि मैंने पी ही क्या है
होश अभी तक है बाकी
और जरा-सी दे दे साकी
और जरा-सी, और...

कृष्णतीर्थ भारती, और की दौड़ का नाम ही संसार है। और जरा-सी, और... । इस छोटे-से सूत्र में सारा संसार, संसार का सारा गणित आ जाता है। धन हो तो थोड़ा और। पद हो तो थोड़ा और। ज्ञान हो तो थोड़ा और। त्याग हो तो थोड़ा और। तपश्चर्या हो तो थोड़ी और। ध्यान हो तो थोड़ा और। और वही। विषय बदलते हैं, लेकिन और तो वही।
अब तुम कहते होः
कैसे रहूं चुप कि मैंने पी ही क्या है
होश अभी तक है बाकी
और जरा-सी दे दे साकी
और जरा-सी, और... ।
यह और की दौड़ तो कभी खतम होगी नहीं, होती ही नहीं। जितना मिलेगा उतना
ही और की मांग बढ़ती चली जाएगी।

अमरीका का अरबपति एंड्रू कारनेगी मरा। दस अरब रुपए छोड़ कर मरा। पैदा
तो गरीब हुआ था। खुद अपनी ही मेहनत से दस अरब रुपए कमाए। शायद ही किसी आदमी ने अपनी ही मेहनत से इतने रुपए कमाए। लेकिन मरते वक्त उदास था। उसकी जीवन-कथा के लेखक ने उससे दो दिन पहले पूछा--मरने के दो दिन पहले--कि आप उदास क्यों हैं? आपको तो आनंदित मरना चाहिए! आप एक सफलतम व्यक्ति हैं। मनुष्य-जाति के इतिहास में इतने सफल लोग कम ही हुए। दस अरब रुपए आप अकेले अपने हाथों से कमा कर जा रहे हैं।
एंड्रू कारनेगी ने आंखें खोलीं और क्रोध से अपने कथा-लेखक को देखा और कहा, बकवास बंद कर! मैं सौ अरब रुपए कमा कर मरना चाहता था। सिर्फ दस अरब! मुझ जैसा पराजित, हारा हुआ आदमी और कौन होगा? बुरी मात खाई।
लेकिन क्या तुम सोचते हो, एंड्रू कारनेगी सौ अरब रुपए कमा लेता तो प्रसन्न मरता? नहीं, तब तक और की मांग और आगे बढ़ जाती। यह और तो यूं समझो जैसे जमीन को छूता हुआ क्षितिज। तुम जितने आगे बढ़ते हो, क्षितिज भी आगे बढ़ जाता है। यह और तो एक मृग-मरीचिका है।
कृष्णतीर्थ, इस और को छोड़ दो, और तृप्ति अभी और यहीं। प्यास तो बुझे अभी और यहीं। लेकिन इस और को छोड़ दो।
खलिश भी आज तो कुछ कम है दर्द भी कम है
चिराग तेज करो हाय रोशनी कम है
उदास-उदास है महफिल, तही हैं पैमाने
शराब कम है अजीजो कि तश्नगी कम है
क्या कम है? शराब कम है या प्यास कम है? इसे ठीक से पूछ लेना चाहिए। क्योंकि शराब बाहर है, प्यास भीतर है। जो सोचेगा शराब कम है, वह भटकेगा संसार में। और जो सोचेगा प्यास कम है, उसकी बाहर की दौड़ बंद हुई। अब वह भीतर डूबेगा। वह अपनी ही प्यास में डुबकी मारेगा। और मैं तुमसे एक उलटबांसी कहूंः शराब पीकर किसी की प्यास नहीं बुझी; लेकिन जिसने अपनी प्यास में डुबकी मारी उसकी प्यास सदा को बुझ गई।
खलिश भी आज तो कुछ कम है दर्द भी कम है
चिराग तेज करो हाय रोशनी कम है
उदास-उदास है महफिल, तही हैं पैमाने
शराब कम है अजीजो कि तश्नगी कम है
हमारे साथ चलें आज कू-ए-कातिल तकवो बुल
हवस जो समझते हैं जिंदगी कम है
अभी तो दोश तक आई है जुल्फे-आवारा
अभी जहाने-तमन्ना में बरहमी कम है चिरागे-गुल न जले कोई आशियां ही जले
जुनूं की राहगुजारों में रोशनी कम है
बस और क्या कहें अहबाबे-तंजफर्मा को
शऊर कम है, नजर कम है, आग ही कम है
रहे है मह्व, सनम को खुदा बनाए हुए
सुना है इन दिनों "ताबां" की गुमरही कम है
शराब तो कितनी ही पीओ, बात बनेगी नहीं। सागर भी मिल जाएं शराब के, तो
भी बात बनेगी नहीं। सागर भी छोटे पड़ जाएंगे। लेकिन अगर तुम अपने भीतर की प्यास में डुबकी मार लो--और उसी को मैं ध्यान कहता हूं--तुम अगर उसकी खोज में निकल जाओ जो खोजने वाला है; तुम अगर उसको पकड़ लो जो सारी चीजों को पकड़ने निकलता है; तुम मंजिल की फिक्र छोड़ दो और यात्री के अंतरतम में बैठ जाओ; गंतव्य नहीं, यह गंता कौन है; मंजिल नहीं, राह नहीं, यह राही कौन है, मैं कौन हूं--तो जरूर तृप्ति का आकाश अभी टूट पड़े।
लेकिन हम असली सवाल नहीं पूछते। हम नकली सवाल पूछते हैं। फिर नकली सवालों के नकली जवाब हैं। नकली सवालों के असली जवाब नहीं हो सकते। और फिर नकली जवाबों को तुम इकट्ठे करते रहते हो। उससे पांडित्य बन जाता है। उससे होशियारी और चालाकियां पैदा हो जाती हैं। लेकिन तुम्हारी जिंदगी जैसी थी, अंधी, अंधेरी, बस वैसी की वैसी। सुबह नहीं होती, सूरज नहीं निकलता। सूरज तो दूर, चांद-तारों का भी कोई पता नहीं चलता। चांद-तारे भी बहुत दूर, जुगनू भी नहीं चमकते।

अश्क वही जो तारा बन कर पलकों पर थर्राता है दर्द वही जो मीठे-मीठे गीतों में ढल जाता है रंगे-हया में डूबे आरिज पर यूं जुल्फें बिखरी हैं शाम की गहरी छांव में जैसे कोई कंवल जल जाता है कितनी मुद्दत गुजरी उनसे रब्ते-तमन्ना टूट चुका सामने अब भी आते हैं जब, धक से जी हो जाता है
मैं तो इक आवारा शायर होशो-खिरद से बेगाना
कोई अहले-होशो-खिरद फिर मेरे मुंह क्यों आता है खूने-अंजुम में जब शामिल खूने-तमन्ना होता है
सुबह का रंगीं दामन जैसे रंगींतर हो जाता है
इक वो लम्हा जिसने "ताबां" जीस्त का धारा मोड़ दिया
मीठे-मीठे सपने बन कर नजरों में लहराता है
कौन-सी चीज है जो जीवन की धार को मोड़ देती है?
इक वो लम्हा जिसने "ताबां" जीस्त का धारा मोड़ दिया
वह क्षण कौन-सा है, जब जीवन की सरिता एक नया मोड़ लेती है--अतृप्ति से तृप्ति की ओर, दुख से आनंद की ओर, नरक से स्वर्ग की ओर! वह लम्हा वही लम्हा है, वह क्षण वही क्षण है, जब तुम बाहर की तरफ देखना बंद करके भीतर की तरफ देखना शुरू करते हो।
सत्य तो तुम्हारे भीतर है। और उसको ही पीओगे तो तृप्ति है। बाहर तो सब झूठ है, बाहर तो सब दौड़ है, आपा-धापी है, चिंता-विषाद है। लेकिन आनंद वहां नहीं है।
तो मैं तुमसे कृष्णतीर्थ भारती, यही कहूंगा, अपने में चलो। वहीं तुम पाओगे सोना। बाहर तो मिट्टी के ढेर लगा लोगे। वहीं तुम पाओगे चिन्मय ज्योति। बाहर अगर इकट्ठे भी किए तो बुझे हुए मिट्टी के दीए ही इकट्ठे कर पाओगे। वही शास्त्रों में मिलेंगे--मिट्टी के दीए, जिनकी रोशनी न मालूम कब की बुझ गई। लेकिन अगर तुम्हें उस रोशनी को पाना है, जो जलती है भीतर--बिन बाती बिन तेल--तो फिर मांगो मत। मांग छोड़ो, कामना न करो, वासना न करो। मत कहो--और! और! कहो--बस! ठहरो, विराम में आओ! पूर्णविराम लगा दो दौड़ पर। आंख बंद भीतर करो। भीतर डूबो--और तुम पा लोगे सब राजों का राज!
कंचन कंचन ही सदा, कांच कांच सो कांच।
दरिया झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच।।
आज इतना ही।